विषय सूची

१. अर्थशास्त्र क्या है?
२. अर्थशास्त्र के क्षेत्र
३. भारतीय अर्थव्यवस्था की आधारभूत विशेषताएं
४. आयोजन प्रक्रिया एवं पंचवर्षीय योजना
५. विकास तथा संवृद्धि
६. दसवीं पंचवर्षीय योजना
७. बाजार
८. मांग का सिद्धांत
९. उपभोक्ता व्यवहार
१०. पूर्ति
११. उदारीकरण और वैश्वीकरण

लेखिका :
एस. आई. एम. शैली में परिवर्तन :

बीए मास कम्यूनिकेशन – द्वितीय वर्ष *बीएमसी –१०७* **अर्थशास्त्र**
खंड–डी इकाई – एक अध्याय – एक

अर्थशास्त्र : एक परिचय

लेखक : डा. वीना शर्मा
एस. आई. एम. शैली में परिवर्तन :

अध्याय संरचना :

इस अध्याय में अर्थशास्त्र से परिचित होंगे। इस अध्याय में अर्थशास्त्र की परिभाषाओं की चर्चा करेंगे। इस अध्याय में विशेष रूप से हम विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गई कल्याण, दुर्लभता, धन एवं विकास संबंधी परिभाषाओं से भी परिचित होंगे।

अध्याय की संरचना इस प्रकार होगी :

१.० उद्देश्य
१.१ परिचय
१.२ विषय वस्तु की प्रस्तुति
१.२.१ अर्थशास्त्र का अर्थ
१.२.२ अर्थशास्त्र की धन संबंधी परिभाषाएं
१.२.३ अर्थशास्त्र की कल्याण संबंधी परिभाषाएं
१.२.४ अर्थशास्त्र की दुर्लभता संबंधी परिभाषाएं
१.२.५ अर्थशास्त्र की विकास संबंधी परिभाषाएं
१.३ सारांश
१.४ सूचक शब्द
१.५ स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
१.६ संदर्भित पुस्तकें

१.० उद्देश्य :

इस अध्याय के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

अर्थशास्त्र का अर्थ का पता करना
अर्थशास्त्र की धन संबंधी परिभाषाओं का पता करना
अर्थशास्त्र की कल्याण संबंधी परिभाषाओं का पता करना
अर्थशास्त्र की दुर्लभता संबंधी परिभाषाओं का पता करना
अर्थशास्त्र की विकास संबंधी परिभाषाओं का पता करना

१.१ परिचय :

मनुष्य अपना अधिकतर समय आर्थिक गतिविधियों में बिताता है। आर्थिक गतिविधियों में पैसा कमाने के लिए किए जाने वाले कार्य, पैसा बचाने के लिए किए जाने वाले कार्य तथा पैसा खर्च करने के लिए किए जाने वाले काम शामिल हैं। इन आर्थिक गतिविधियों के अध्ययन का शास्त्र अर्थशास्त्र कहलाता है। अर्थशास्त्र को कला एवं विज्ञान दोनों की संज्ञा दी जाती है, क्योंकि इनमें जिन गतिविधियों का अध्ययन किया जाता है उन्हें मनुष्य समाज में रहते हुए विशेष तरीके से करता है। इनका अध्ययन वैज्ञानिक तरीके से करने के कारण इसे विज्ञान माना जाता है। लेकिन यह अध्ययन करने से पहले कुछ शर्ते रखी जाती है। जिन्हें अर्थशास्त्र की भाषा में मान्यताएं कहा जाता है। इन मान्यताओं के आधार पर ही अर्थशास्त्र के नियम लागू होते हैं।

१.२ विषय वस्तु की प्रस्तुति :

इस अध्याय में हम अर्थशास्त्र की परिभाषाओं की चर्चा करेंगे। अध्याय में विषय वस्तु की प्रस्तुति निम्न प्रकार से होगी :

अर्थशास्त्र का अर्थ
अर्थशास्त्र की धन संबंधी परिभाषाएं
अर्थशास्त्र की कल्याण संबंधी परिभाषाएं
अर्थशास्त्र की दुर्लभता संबंधी परिभाषाएं
अर्थशास्त्र की विकास संबंधी परिभाषाएं

१.२.१ अर्थशास्त्र का अर्थ :

अर्थशास्त्र एक मानवीय विज्ञान है। इसका मूल उद्देश्य मनुष्य का विकास करना है, मनुष्य के जीवन स्तर को ऊंचा उठाना और मनुष्य के कल्याण में वृद्धि करना है। मनुष्य दिन में नाना प्रकार की क्रियाएं करता है, जैसे–धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक इत्यादि। किन्तु मनुष्य अपने जीवन का अधिकतम भाग आर्थिक क्रियाओं पर व्यतीत करता है। अर्थशास्त्र एक ऐसा विषय है जो मनुष्य की केवल आर्थिक क्रियाओं का ही अध्ययन करता है।

यदि हम अपने चारों तरफ दृष्टि डालें तो हमें प्रत्येक मनुष्य कुछ न कुछ कार्य करता हुआ दिखाई देता है, जैसे – किसान खेत में, दुकानदार दुकान पर, अध्यापक स्कूल में, डाक्टर अस्पताल में, वकील कचहरी में। ये सब अपने–अपने कार्य कर रहे होते हैं। इन कार्यों के लिए जाने का कारण स्पष्ट है कि मनुष्य को रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, दवा आदि की अनेक आवश्यकताएं होती हैं। इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मनुष्य प्रयत्न करता है। अत: अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जिसमें मानवीय आवश्यकताओं और संतुष्टि का अध्ययन किया जाता है। अन्य शब्दों में अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जिसमें आवश्यकताएं–प्रयत्न–धन–संतुष्टि का अध्ययन किया जाता है।

मानवीय आवश्यकताएं अनन्त होती हैं जबकि उन्हें पूरा करने के साधन सीमित होते हैं। यदि प्रकृति ने इन असंख्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सभी साधन हवा, पानी, धूप की भंति प्रचूर मात्रा में दिए होते या फिर हममें से प्रत्येक के पास अलादीन का चिराग होता जिसके केवल रगड़ने मात्र से ही हम सभी इच्छाएं तृप्त कर लेते तो शायद कोई आर्थिक समस्या उत्पन्न न होती। लेकिन वास्तविकता तो यह है कि मनुष्य की आवश्यकताएं अनगिनत हैं और साधन दुर्लभ। अर्थशास्त्र एक ऐसा विषय है जिसमें मनुष्य के ऐसे प्रयासों का अध्ययन किया जाता

है जिनके द्वारा वह दुर्लभ साधनों से अपनी अन्नत आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

अर्थशास्त्र की परिभाषा

अर्थशास्त्र एक विकासशील विषय है। भिन्न-भिन्न समय के अर्थशास्त्रियों ने इसकी भिन्न-भिन्न परिभाषाएं दी हैं। यही कारण है कि आज तक इसकी कोई एक सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकी। इस संबंध में जे. एन. केञ्ज ने कहा है कि 'अर्थशास्त्र ने अपने गले में परिभाषाओं का फंदा डाल रखा है।' इसी प्रकार श्रीमती बारबरा ब्रूटन ने कहा है कि 'जब कभी छह अर्थशास्त्री एकत्र होते हैं, तो वहां सात मत पाए जाते हैं।' इस मतभेद के कारण कॉमटे मॉरिस डॉब और गुन्नार मिर्डल जैसे अर्थशास्त्रियों ने कहा है कि अर्थशास्त्रकी कोई परिभाषा नहीं दी जानी चाहिए। परन्तु विषय के स्वरूप एवं महत्ता को जानने के लिए कुछ प्रमुख परिभाषाओं का अध्ययन करना अनिवार्य है। एरिक रोल के मतानुसार, 'किसी भी विषय का क्रमबद्ध अध्ययन करने के लिए उसकी परिभाषा देना जरूरी है।'

सरलता की दृष्टि से अर्थशास्त्र की विभिन्न परिभाषाओं का अध्ययन निम्न चार भागों में किया जा सकता है –

1. धन संबंधी परिभाषा
2. कल्याण संबंधी परिभाषा
3. दुर्लभता संबंधी परिभाषा
4. विकास संबंधी परिभाषा

१.२.२ धन संबंधी परिभाषा :

सर्वप्रथम 1776 में एडम स्थिम ने, जिन्हें अर्थशास्त्र का जनक कहा जाता है, अपनी प्रसिद्ध पुस्तक, जिसका छोटा नाम 'वैल्थ ऑफ नेशंस' है, में अर्थशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार दी – 'अर्थशास्त्र राष्ट्रों के धन के स्वरूप और कारणों की खोज है' अर्थात् एडम स्मिथ ने अर्थशास्त्र को धन का विज्ञान माना है। उनके अनुसार अर्थशास्त्र में निम्न बातों का अध्ययन किया जाता है :-

क. राष्ट्रों का धन क्या है?

ख. राष्ट्रों का धन कौन-कौन से तत्वों पर निर्भर करता है?

ग. धन का वितरण कैसे होता है?

संक्षेप में, एडम स्मिथ के अनुसार, अर्थशास्त्र का संबंध धन के उपयोग, उत्पादन, विनिमय तथा वितरण से है।

कुछ समय पश्चात एडम स्मिथ की धन संबंधी परिभाषा का अनेक अर्थशास्त्रियों, जैसे जे.बी. से, वाकर, मिल और सीनियर आदि ने समर्थन किया। इन अर्थशास्त्रियों ने भी अर्थशास्त्र को धन का विज्ञान माना। जैसे – जे. बी. से के अनुसार, अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो धन का विवेचन करता है।

वाकर के शब्दों में, 'अर्थशास्त्र ज्ञान की वह शाखा है जो धन से संबंधित है।'

सीनियर के शब्दों में, 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री सुख नहीं अपितु धन है।'

मुख्य विशेषताएं :

धन संबंधी परिभाषा की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

1. धन का अध्ययन : धन संबंधी परिभाषा के अनुसार अर्थशास्त्र में केवल धन का अध्ययन किया जाता है। इसका प्रमुख उद्देश्य इस बात की जानकारी देना है कि राष्ट्रों के धन में किस प्रकार वृद्धि की जाए।

2. धन का अर्थ : इस परिभाषा के अनुसार केवल कीमती भौतिक पदार्थों, जैसे रूपया-पैसा, सोना-चांदी, हीरे-जवाहरात, मुद्रा आदि को ही धन माना गया है।

3. सुख का साधन : मानव-जीवन में सभी सुखों का एकमात्र साधन धन ही है। जितना धन अधिक होगा, उतनी ही सुख-समृद्धि अधिक होगी।

4. आर्थिक मनुष्य : इस परिभाषा में एक ऐसे आर्थिक मनुष्य की कल्पना की गई है जो केवल स्वहित से प्रेरित होकर आर्थिक क्रियाएं करता है।

5. धन का कारण : व्यक्तिगत समृद्धि से ही राष्ट्रीय धन में वृद्धि होती है।

आलोचना :

अर्थशास्त्र की धन संबंधी परिभाषाओं से प्रेरित होकर मानव ने मानव का शोषण शुरू कर दिया। पूंजीपति अपने लाभ में वृद्धि करने के लिए श्रमिकों से अधिक काम लेने लगे। मजदूरों के काम करने के घंटे बढ़ा दिए गए। स्त्रियों और बच्चों से गलत काम करवाए जाने लगे। परिणामस्वरूप यह विज्ञान विद्वानों की दृष्टि में गिरने लगा। उस समय के समाज सुधारकों कार्लाइल, रस्किन और डिकन्स आदि ने अर्थशास्त्र को 'घृणित विज्ञान' 'दाल-रोटी का विज्ञान' 'कुबेर का ग्रंथ' 'अधम विज्ञन और 'धनी बनने का विज्ञान' आदि कहकर आलोचित किया। उनके अनुसार एडम स्मिथ की परिभाषा ने मनुष्य को कंजूस ही नहीं, बल्कि स्वार्थी, लोभी और धन का पुजारी बना दिया। इंग्लैंड के ईसाई धर्म में तो यहां तक कहा गया है कि 'एक ऊंट तो सूई के छेद में से निकल सकता है, लेकिन एक धनवान स्वर्ग में कदापि नहीं जा सकता।''

अत: धन संबंधी विज्ञन की मुख्य आलोचनाएं निम्नलिखित हैं :

1. धन को अत्याधिक महत्व : एडम स्मिथ की परिभाष में धन को आवश्यकात से अधिक महत्व दिया गया है। इसमें धन को प्रथम स्थन और मनुष्य को गौण स्थान दिया गया है। मनुष्य को धन अर्जित करने का साधन माना गया है। वास्तव में धन मनुष्य के लिए होता है, न कि मनुष्य धन के लिए। मनुष्य की उपेक्षा इस परिभाषा की महान त्रुटि है।

2. धन का संकुचित अर्थ : धन संबंधी परिभाषा में केवल कीमती भौतिक वस्तुओं जैसे रूपया-पैसा, सोना-चांदी, मुद्रा, आभूषण, हीरे-जवाहरात की सेवाओं को भी धन में शमिल करते हैं। धन के संकुचित अर्थ के कारण इस परिभाषा ने अर्थशास्त्र के क्षेत्र को व्यर्थ में सीमित कर दिया है।

3. आर्थिक मनुष्य की गलत धारणा : धन संबंधी परिभाषा में जिस आर्थक मनुष्य की कल्पना की गई है, वह वास्तविक नहीं है। व्यवहार में मनुष्य धन कमाने के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रेरणाओं जैसे दया, धर्म, राजनीति, देश-प्रेम आदि से भी प्रभावित होता है।

4. धन वृद्धि के तरीकों की उपेक्षा : इस परिभाषा में देश में धन वृद्धि पर तो जोर दिया गया है, लेकिन धन को किन-किन तरीकों से बढ़ाया जाए, इस संबंध में कुछ भी स्पष्ट नहीं है। इसमें यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि धन उचित कार्यों से कमाया जाएगा या अनुचित। वास्तव में अर्थशास्त्र में मनुष्य के केवल उचित, कानूनी व न्यायपूर्ण कार्यों का अध्ययन किया जाता है।

5. धन व प्रसन्नता में कोई संबंध नहीं : धन संबंधी परिभष में केवल धन को प्रसन्नता का एकमात्र साधन माना जाता है जबकि धन व प्रसन्नता में कोई सीधा-संबंध नहीं होता। प्रसन्नता तो एक मानसिक स्थिति है।

6. मानव कल्याण की उपेक्षा : इस परिभाष में मानव-कल्याण की उपेक्षा करके धन संग्रह पर अनुचित बल दिया

जाता है। आलोचकों के अनुसार अर्थशास्त्रका उद्देश्य केवल धन की प्राप्ति ही नहीं, बल्कि इसका उद्देश्य तो धन के उचित प्रयोग द्वारा मानव-कल्याण में वृद्धि करना है।

7. दुर्लभता सिद्धान्त की उपेक्षा - आर्थिक समस्याएं दुर्लभता के कारण उत्पन्न होती हैं। दुर्लभता अर्थशास्त्र के अध्ययन का मूल आधार है। परन्तु धन संबंधी परिभाष में इस सिद्धान्त की पूर्ण अवहेलना की गई है, जो इस परिभाषा की मुख्य त्रुटि है।

संक्षेप में, अर्थशास्त्र की धन संबधी परिभाष अपूर्ण, अवैज्ञानिक व दोषपूर्ण है। इसने अर्थशास्त्र के क्षेत्र को व्यर्थ में संकुचित कर दिया है।

१.२.३ कल्याण संबंधी परिभाषा :

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डा. अल्फ्रेड मार्शल ने 19वीं शताब्दी के अंत में धन संबंधी परिभाषा की आलोचना की प्रतिक्रिया के रूप में अर्थशास्त्रकी एक पूर्णतया नई तथा कल्याण संबंधी परिभाष देकर अर्थशास्त्रको नवजीवन प्रदान किया। डा. मार्शल ने 'धन' की अपेक्षा 'मानव कल्याण' पर अधिक बल दिया। उन्होंने स्पष्ट किया कि धन मनुष्य के लिए होता है न कि मनुष्य धन के लिए। उनका कहना था कि मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का उद्देश्य मेवल धन एकत्रित करना ही नहीं, बल्कि धन के उचित प्रयोग द्वारा मानव-कल्याण में वृद्धि करना है।

डा. मार्शल ने अपनी प्रथम पुस्तक में अर्थशास्त्रकी परिभाषा इस प्रकार दी है - 'राजनीतिक अर्थशास्त्र अथवा अर्थशास्त्रसाधारण जीवन के व्यवसाय में मनुष्य की क्रियाओं का अध्ययन है। यह इस बात का पता लगाता है कि वह किस प्रकार आय प्राप्त करता है और दूसरी ओर जो अधिक महत्वपूर्ण है, वह मनुष्य के अध्ययन का एक भाग है।' मार्शल की इस परिभाष से स्पष्ट है कि अर्थशास्त्रकेवल धन की ही नहीं, बल्कि मानवीय व्यवहार का भी अध्ययन करता है।

डा. मार्शल ने अपनी विचारधारा को अधिक स्पष्ट करने के लिए 189 में अपनी दूसरी पुस्तक में अर्थशास्त्र की एक अन्य संशोधित परिभाषा इस प्रकार दी है - 'अर्थशास्त्र जीवन के साधरण व्यवसाय में मानव-जाति का अध्ययन है। जिसका घनिष्ट संबंध कल्याण प्रदान करने वाले भौतिक पदार्थों की प्राप्ति तथा उनका उपभोग करने से है।'

मुख्य विशेषताएं :

मार्शल की कल्याण संबंधी परिभाषा की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

1. अर्थशास्त्र का उचित नाम : मार्शल से पहले अर्थशास्त्र को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता था। परन्तु 189 में मार्शल ने पहली बार राजनीतिक अर्थव्यवस्था को अर्थशास्त्र का नाम दिया। उस समय से आज तक अर्थशास्त्र नाम ही प्रचलित है।

2. मानव जाति का अध्ययन : मार्शल की परिभाषा के अनुसार अर्थशास्त्र में समस्त मानव जाति का अध्ययन किया जाता है। इसमें किसी व्यक्ति विशेष का अध्यन नहीं किया जाता।

3. जीवन की साधरण क्रियाओं का अध्ययन : मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र में केवल जीवन की साधारण क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। जीवन की साधारण क्रियाएं होती हैं जिन पर मनुष्य अपने जीवन का अधिकांश समय व्यतीत करता है। मनुष्य अपने जीवन का अधिकांश समय आर्थिक क्रियाओं में व्यतीत करता है। अत: मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्रमें इन्हीं आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। मनुष्य की अनार्थिक

क्रियाओं जैसे धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक इत्यादि का अध्ययन अर्थशास्त्रमें नहीं किया जाता है।

4. मनुष्य को अधिक महत्व : डा. मार्शल ने धन की अपेक्षा मनुष्य को अधिक महत्व दिया है। मार्शल ने मनुष्य को प्रमुख और धन को गौण स्थान दिया है। उनके मतानुसार धन मनुष्य के लिए होता है न कि मनुष्य धन के लिए। उन्होंने धन को साधन और मानव-कल्याण को साध्य माना है।

5. सामाजिक मनुष्य का अध्यय : मार्शल ने अर्थशास्त्र को एक सामाजिक विज्ञान माना है। अर्थशास्त्रमें केवल उन्हीं मनुष्यों का अध्ययन किया जाता है जो समाज में रहते हैं। जो व्यक्ति साधु, संत, संन्यासी बनकर जंगल की गुफाओं या पहाड़ों में रहते हैं, ऐसे व्यक्तियों का अध्ययन अर्थशास्त्रमें नहीं किया जाता।

6. वास्तविक मनुष्य का अध्ययन : मार्शल की परिभाषा के अनुसार अर्थशास्त्र में एडम स्मिथ के काल्पनिक आर्थिक मनुष्य की अपेक्षा वास्तविक मनुष्य का अध्ययन किया जाता है। वास्तविक मनुष्य वह होता है जो स्वहित के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रेरणाओं जैस दया-धर्म, राजनीति, देश-प्रेम आदि से प्रभावित होकर क्रियाएं करता है।

7. सामान्य मनुष्य क्का अध्ययन : मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्रमें सामान्य मनुष्य का अध्ययन किया जाता है।

8. भौतिक परदार्थों का अध्ययन : डा. मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र में केवल भौतिक वस्तुएं का ही अध्ययन किया जाता है। भौतिक वस्तुएं वे होती हैं जिनका रंग-रूप, आकार होता है तथा जिन्हें देखा व छुआ जा सकता है। जैसे भोजन, कपड़ा, मकान, फर्नीचर, पैन, कार आदि।

9. कल्याण का अध्ययन : मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र में मात्र ऐसी भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति और उपभोग से संबंधित कार्यों का अध्ययन किया जाता है जिनसे मनुष्य के कल्याण में वृद्धि होती है। अकल्याणकारी भौतिक वस्तुएं जैसे शराब, अफीम, चरस, भांग, स्मैक आदि हानिकारक वस्तुओं का अध्ययन अर्थशास्त्र में नहीं किया जाता।

1. आदर्श विज्ञान : मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र एक आदर्श विज्ञान है। इसमें उन नियमों और उपायों की खोज की जाती है जिनसे मानव कल्याण में वृद्धि हो। अर्थशास्त्र के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि हमें क्या करना चाहिए ताकि मानव कल्याण में कोई कमी न आए।

आलोचना :

प्रो. रोबिन्स तथा कई अन्य अर्थशास्त्रियों ने मार्शल की कल्याण संबंधी परिभाषा की कटु आलोचना की है।

1. जीवन की साधरण क्रियाएं अस्पष्ट हैं - जीवन की साधरण क्रियाओं की व्याख्या करना कठिन है। हमें यह पता नहीं चलता कि कौन सी क्रियाएं असाधारण हैं। अर्थात् यह निर्णय करना कठिन होता है कि किन क्रियाओं का अध्ययन अर्थशास्त्र में करें और किन का न करें। कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार युद्ध जैसी असाधारण क्रियाओं का अध्ययन भी अर्थशास्त्र में किया जाना चाहिए।

2. अर्थशास्त्र केवल सामाजिक विज्ञान नहीं है - रोबिन्स के अनुसार मार्शल का यह विचार है कि अर्थशास्त्र केवल समाज में रहने वाले मनुष्यों की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन करता है। इसमें सभी मनुष्यों के सीमित साधनों से संबंधित कार्यों का अध्ययन किया जाता है चाहे वे व्यक्ति समाज के सदस्य हों या न हों।

3. अभौतिक वस्तुओं का अध्ययन - आलोचकों के अनुसार अर्थशास्त्र में केवल भौतिक वस्तुओं की नहीं, अपितु अभौतिक वस्तुओं अर्थात सेवाओं जैसे अध्यापक, डाक्टर, वकील, नर्स, घरेलू नौकर आदि की सेवाओं का अध्ययन भी किया जाना चाहिए, क्योंकि इनका संबंध भी धन कमाने से है। इनसे भी मनुष्य के कल्याण में वृद्धि होती है और ये दुलर्भ भी होती हैं।

4. कल्याण की अनिश्चित धारणा : रोबिन्स के अनुसार कल्याण की धारणा अस्पष्ट, अनिश्चित तथा अस्थाई है। यह निर्णय करना भी कठिन है कि कौन सी वस्तु कल्याणकारी है और कौन सी अकल्याणकारी। इसके अतिरिक्त, बहुत-सी क्रियाएं, जैसे शराब का उत्पादन तथा बिक्री मानव-कल्याण के लिए हितकर नहीं है। फिर भी इसका अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है।

5. श्रेणी विभाजक : मार्शल की परिभाषा का मुख्य दोष यह है कि यह परिभाषा श्रेणी विभाजक है। इसमें अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री को साधारण-असाधारण, सामाजिक-असामाजिक, भौतिक-अभौतिक, कल्याणकारी-अकल्याणकारी श्रेणियों में बांट दिया गया है। वह बंटवारा अवैज्ञानिक है।

6. अवैज्ञानिक : रोबिन्स के अनुसार मार्शल की परिभाषा अवैज्ञानिक है। इसमें कल्याण को उद्देश्य मानकर वैज्ञानिक आधार का उल्लंघन किया गया है। कल्याण एक अनिश्चित धारणा है और इसे मापा नहीं जा सकता। इसके अतिरिक्त बहुत-सी आर्थिक क्रियाएं हैं जो कल्याणकारी नहीं-जैसे शराब और अफीम बनाना तथ बेचना। ये आर्थिक क्रियाएं हैं। लेकिन इनसे कल्याण नहीं होता। अत: यह एक अवैज्ञानिक परिभाषा है।

7. संकुचित क्षेत्र : इस परिभाषा ने अर्थशास्त्र का क्षेत्र उन क्रियाओं तक सीमित कर दिया है जिनका संबंध भौतिक तथा कल्याणकारी पदार्थों से है। इस परिभाषा के अनुसार सभी प्रकार की अभौतिक वस्तुएं अर्थात सेवाएं का अर्थशास्त्र में अध्ययन नहीं होना चाहिए। किन्तु यह ठीक नहीं है। इन क्रियाओं को अर्थशास्त्र के क्षेत्र से बाहर नहीं निकाला जा सकता।

8. अर्थशास्त्रएक वास्तविक विज्ञान है : परिभाष के अनुसार अर्थशास्त्रआदर्शात्मक विज्ञान है, जिसमें आर्थिक कार्यों की अच्छाई- बुराई पर बल दिया जाता है। किन्तु रोबिन्स के अनुसार, इसका अच्छाई-बुराई से संबंध नहीं है। अत: अर्थशास्त्र तो एक वास्तविक विज्ञान है जो कि जैसी स्थित है, उसका वैसा ही अध्ययन करता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मार्शल की कल्याण संबंधी परिभाषा व्यावहारिक तो है, लेकिन वैज्ञानिक एवं दोषरहित नहीं है।

१.२.४ दुलर्भता संबंधी परिभाषा :

सन् 1932 में लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स के प्रसिद्ध विद्वान लॉर्ड लॉयनल रोबिन्स ने अर्थशास्त्र की एक नई एवं वैज्ञानिक परिभाषा दी थी। इसके अनुसार अर्थशास्त्र एक विज्ञान है, जो मनुष्य के उस व्यवहार का अध्ययन करता है, जिसका संबंध अनेक प्रयोगों वाले सीमित साधनों तथा असीमित लक्ष्यों के साथ होता है।

मुख्य विशेषताएं :

प्रो. रोबिन्स की परिभाषा की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

1. अर्थशास्त्र एक विज्ञान है : रोबिन्स की परिभाषा से यह स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र एक विज्ञान है। इसमें मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का क्रमगत अध्ययन किया जाता है। उनके मतानुसार अर्थशास्त्र विज्ञान के रूप में केवल वास्तविक स्थिति का ही अध्ययन किया जाता है, इनका आर्थिक तत्वों की अच्छाई-बुराई से कोई संबंध नहीं है।

2. मानवीय व्यवहार का अध्ययन - रोबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्रकेवल सामाजिक मनुष्य के व्यवहार का अध्ययन ही नहीं है, बल्कि यह प्रत्येक मानव के व्यवहार का अध्यन है, चाहे वह समाज में रहता है या नहीं। अत: अर्थशास्त्र एक मानवीय विज्ञान है।

3. असीमित आवश्यकताएं - रोबिन्स के अनुसार मानवीय आवश्यकताएं असीमित होती हैं। जब एक

आवश्यकता तृप्त होती है तो दूसरी पैदा हो जाती है। आवश्यकताओं का यह क्रम कभी समाप्त नहीं होता। सभी आवश्यकताएं एक साथ कभी संतुष्ट नहीं की जा सकती।

4. सीमित साधन – अनन्त मानवीय आवश्यकताओं को पूरी करने के साधन सीमित होते हैं। साधनों की सीमितता का अर्थ है कि इनकी मांग पूर्ति से अधिक होती है। साधनों की सीमिततता के कारण मनुष्य की बहुत सी आवश्यकताएं असंतुष्ट रह जाती हैं।

5. वैकल्पिक प्रयोग – रोबिन्स के अनुसार उपलब्ध साधन केवल सीमित ही नहीं, बल्कि उनके विविध वैकल्पिक प्रयोग भी होते हैं। जैसे दूध एक साधन है। इसका प्रयोग मक्खन बनाने, दही या पनीर बनाने के लिए किया जा सकता है। अत: हमारे पास जो साधन होते हैं उनसे हम एक समय में केवल कुछ आवश्यकताओं की संतुष्टि कर सकते हैं।

6. चुनाव की समस्या – चूंकि आवश्यकताएं अनन्त और तीव्रता में भिन्नता वाली हैं और साधन सीमित तथा वैकल्पिक प्रयोगों वाले होते हैं, अत: या तो मनुष्य की आवश्यकताएं आदि मानव की भांति थोड़ी होती या फिर इन्हें पूरा करने के साधन हवा, पानी, धूप की भांति प्रचूर मात्रा में उपलब्ध होते या फिर इनमें से हरके के पास एक–एक अलादीन का चिराग या पारसमणि होती जिनसे कामना करते ही हम अपनी समस्त इच्छाएं पूरी कर सकते तो कोई आर्थिक समस्या उत्पन्न न होती और अर्थशास्त्र के अध्ययन की जरूरत ही न होती। किन्तु वास्तिविकता कुछ और है। न हमारे पास कोई चिराग है, न कोई मणि, हमारी तो आवश्यकताएं अनन्त हैं और साधन दुर्लभ। अत: हमें चुनाव करना पड़ता है कि हम किस तीव्र आवश्यकता को पूरा करें और किस का त्याग करें। रोबिन्स के अनुसार यही चयन की समस्या या निर्णय लेने की समस्या ही अर्थशास्त्रका अध्ययन है।

7. विस्तृत क्षेत्र – राबिन्स ने अर्थशास्त्र के अध्ययन में सभी मनुष्यों और सभी भौतिक तथा अभौतिक वस्तुओं जिनका संबंध दुर्लभता से है, का अध्ययन अर्थशास्त्र में सम्मिलित कर अर्थशास्त्र का क्षेत्र विस्तृत कर दिया है।

8. विश्लेषणात्मक – रोबिन्स की परिभाष वर्गीकृत न होकर विश्लेषणात्मक है। इसमें मनुष्य के चुनाव संबंधी पहलू का अध्यन किया जाता है जो अधिक उचित है।

9. सर्वव्यापी परभिाष – रोबिन्स की परिभाषा सर्वव्यापी है, क्योंकि चुनाव की समस्या सभी प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं की समस्या है। प्रत्येक देश में साधनों की कमी के कारण यह निर्णय लेने होते हैं कि साधन को किस आवश्यकता की संतुष्टि के लिए प्रयुक्त किया जाए।

आलोचना :

यद्यपि रोबिन्स की परिभाषा वैज्ञानिक तथा यथार्थ है, फिर भी यह दोषरहित नहीं है। डरबिन, फ्रेजर, बूटन तथा बैवरिज आदि अर्थशास्त्रियों ने इस परिभाषा की निम्नलिखित आलोचनाएं की हैं :

1. अव्यावहारिक एवं जटिल : यह परिभाषा अव्यावहारिक एवं जटिल है, जो साधारण लोगों की समझ से बाहर है। इसमें इस बात को स्पष्ट नहीं किया गया है कि सीमित साधनों का विभिन्न कार्यों में किस प्रकार प्रयोग किया जाए ताकि उनसे अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो सके।

2. कल्याण की उपेक्षा : रोबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र का मानव कल्याण के साथ कोई संबंध नहीं है। उनके अनुसार अर्थशास्त्र किसी उद्देश्य की अच्छाई या बुराई के बारे में तटस्थ है। यदि ऐसा मान लिया जाए तो अर्थशास्त्र का व्यावहारिक महत्व और उसकी उपयोगिता समाप्त हो जाती है तथा यह विषय आकर्षक नहीं रहता। एक सामाजिक विज्ञान होने के नाते अर्थशस्त्र को कल्याण से अलग नहीं किया जा सकता।

3. कल्याण का निहित प्रचार : आलोचकों के अनुसार कल्याण का विचार रोबिन्स की परिभाषा में ही निहित है। जब अर्थशास्त्री इस बात का अध्ययन करता है कि अधिकतम संतुष्टि की प्राप्ति का भाव भी कल्याण ही है। इस प्रकार रोबिन्स की परिभाषा में कल्याण की भावना चोर-दरवाजे से प्रवेश हो जाती है।

4. विपरीत परिस्थितियां : यह परिभाषा धनी समाज पर लागू नहीं होती क्योंकि वहां पर समस्याएं दुर्बलता के कारण नहीं, बल्कि अधिकता के कारण उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिए अमेरिका में बाजार का संतुलन बनाए रखने के लिए उत्पादन को कई बार घटाना अथवा कभी-कभी जान-बूझकर नष्ट भी करना पड़ता है। स्पष्ट है कि दुर्लभता का अर्थशास्त्र वहां लागू नहीं हो सकता।

5. बाहुल्य की समस्या : आजकल अमेरिका जैसे विकसित देशों में दुर्लभता की समस्या न होकर 'बाहुल्य की समस्या' है। इन देशों में अनेक ऐसी समस्याएं हैं। जैसे 'छुट्टी का सदुपयोग कैसे करें' 'दीर्घायु कैसे प्राप्त करें?' 'दिमागी परेशानी से मुक्ति कैसे प्राप्त करें?' 'विलासपूर्ण जीवन से कैसे बचें?' 'शांति कैसे प्राप्त करें?' आदि की समस्याएं आधिक्य के कारण बनी हुई हैं जबकि इन देशों ने सीमितता और गरीबी पर विजय पा ली है।

6. अल्प विकसित देशों पर लागू नहीं होती : रोबिन्स की परिभाषा सीमित साधनों पर आधारित है, किन्तु अल्प विकसित देशों की समस्या अप्रयुक्त व अल्पप्रयुक्त साधनों की है। वहां साधन तो होते हैं किन्तु उनका प्रयोग नहीं हो रहा होता। अत: उनकी समस्या विकास की समस्या होती है। इस प्रकार अल्प-विकसित देशों की दृष्टि से अर्थशास्त्र विकास का विज्ञान होना चाहिए, सीमित साधनों का विज्ञान नहीं।

7. अनावश्यक विस्तृत क्षेत्र : प्रो. रोबिन्स ने अर्थशास्त्र के अंतर्गत सब प्रकार के मनुष्यों की सब प्रकार की क्रियाओं का शामिल करके अर्थशास्त्र के क्षेत्र का व्यर्थ ही विस्तार कर दिया है। उदाहरण के लिए कार्य तथा आराम में समय को बांटना आर्थिक क्रिया हो सकती है। परन्तु समय बिताने की विभिन्न क्रियाओं जैसे सैर करना, धार्मिक प्रवचन सुनना, सिनेमा देखना आदि का अर्थशास्त्र के साथ कोई संबंध नहीं होता। चूंकि इनमें भी चुनाव की समस्या है इसलिए रोबिन्स के अनुसार ये भी आर्थिक क्रियाएं हैं। ऐसा मान लेने पर अर्थशास्त्र का क्षेत्र इतना विस्तृत हो जाएगा कि इसका अन्य विज्ञानों से अंतर कठिन हो जाएगा।

8. स्थैतिक परिभाषा : रोबिन्स की परिभाषा इस धारणा पर आधारित है कि साधन तथा उद्देश्य स्थिर रहते हैं। किन्तु ऐसा सोचना उचित नहीं, क्योंकि साधनों का विस्तार होता रहता है और उद्देश्य भी बदलते रहते हैं। रोबिन्स की परिभाषा में इस तथ्य की अवहेलना की गई है।

9. अर्थशास्त्र केवल मूल्य सिद्धान्त नहीं : रोबिन्स ने असीमित आवश्यकताओं और सीमित साधनों का प्रयोग करके अर्थशास्त्र को केवल मूल्य सिद्धान्त बना दिया है और इसके क्षेत्र को संकुचित कर दिया है। परन्तु अर्थशास्त्र का क्षेत्र साधनों के बंटवारे और मूल्य निर्धारण तक ही सीमित नहीं है। वर्तमान में आर्थिक विकास का महत्व बहुत बढ़ गया है जिसमें यह अध्ययन किया जाता है कि राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि किन-किन तत्वों पर निर्भर करती है। रोबिन्स की परिभाषा में आर्थिक विकास जैसे विषय शामिल न करना बहुत बड़ी त्रुटि है।

संक्षेप में रोबिन्स की परिभाषा वैज्ञानिक एवं तर्कपूर्ण है और इससे अर्थशास्त्र को वास्तविक विज्ञान का दर्जा मिला है। किन्तु यह उद्देश्यों के प्रति तटस्थ और कल्याण के प्रति उदासीन होने के कारण अव्यावहारिक है।

१.२.५ विकास संबंधी परिभाषा :

आधुनिक अर्थशास्त्रियों विशेषकर सेम्यूलसन, बेनहम, फर्गुसन और केञ्ज आदि ने अर्थशस्त्र की विकास

संबंधी परिभाषाएं दी हैं। इन अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र को 'विकास का शास्त्र' कहकर परिभाषित किया है। ये परिभाषाएं एडम स्मिथ, मार्शल तथा रोबिन्स की परिभाषाअें के गुणों का मिश्रण है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, 'अर्थशास्त्र का संबंध दुर्लभ साधनों के उचित बंटवारे तथा उपयोग द्वारा आर्थिक विकास की गति को आगे बढ़ाने तथा सामाजिक कल्याण में अत्यधिक वृद्धि करने से है।'

१.३ सारांश :

अर्थशास्त्र एक मानवीय विज्ञान है। इसका मूल उद्देश्य मनुष्य का विकास करना है, मनुष्य के जीवन स्तर को ऊंचा उठाना और मनुष्य के कल्याण में वृद्धि करना है। मनुष्य दिन में नाना प्रकार की क्रियाएं करता है, जैसे-धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक इत्यादि। किन्तु मनुष्य अपने जीवन का अधिकतम भाग आर्थिक क्रियाओं पर व्यतीत करता है।

सरलता की दृष्टि से अर्थशास्त्र की विभिन्न परिभाषाओं का अध्ययन निम्न चार भागों में किया जा सकता है - धन संबंधी परिभाष, कल्याण संबंधी परिभाषा, दुर्लभता संबंधी परिभाषा व विकास संबंधी परिभाषा।

एडम स्मिथ के अनुसार, अर्थशास्त्र का संबंध धन के उपयोग, उत्पादन, विनिमय तथा वितरण से है।

कुछ समय पश्चात एडम स्मिथ की धन संबंधी परिभाषा का अनेक अर्थशास्त्रियों, जैसे जे.बी. से, वाकर, मिल और सीनियर आदि ने समर्थन किया। इन अर्थशास्त्रियों ने भी अर्थशास्त्र को धन का विज्ञान माना। जैसे - जे. बी. से के अनुसार, अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो धन का विवेचन करता है।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डा. अल्फ्रेड मार्शल ने 19वीं शताब्दी के अंत में धन संबंधी परिभाषा की आलोचना की प्रतिक्रिया के रूप में अर्थशास्त्रकी एक पूर्णतया नई तथा कल्याण संबंधी परिभाष देकर अर्थशास्त्रको नवजीवन प्रदान किया। डा. मार्शल ने 'धन' की अपेक्षा 'मानव कल्याण' पर अधिक बल दिया। उन्होंने स्पष्ट किया कि धन मनुष्य के लिए होता है न कि मनुष्य धन के लिए। उनका कहना था कि मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का उद्देश्य मेवल धन एकत्रित करना ही नहीं, बल्कि धन के उचित प्रयोग द्वारा मानव-कल्याण में वृद्धि करना है।

लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स के प्रसिद्ध विद्वान लॉर्ड लॉयनल रोबिन्स ने अर्थशास्त्र की एक नई एवं वैज्ञानिक परिभाषा दी थी। इसके अनुसार अर्थशास्त्र एक विज्ञान है, जो मनुष्य के उस व्यवहार का अध्ययन करता है, जिसका संबंध अनेक प्रयोगों वाले सीमित साधनों तथा असीमित लक्ष्यों के साथ होता है।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों विशेषकर सेम्यूलसन, बेनहम, फर्गुसन और केञ्ज आदि ने अर्थशस्त्र की विकास संबंधी परिभाषाएं दी हैं। इन अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र को 'विकास का शास्त्र' कहकर परिभाषित किया है। ये परिभाषाएं एडम स्मिथ, मार्शल तथा रोबिन्स की परिभाषाअें के गुणों का मिश्रण है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, 'अर्थशास्त्र का संबंध दुर्लभ साधनों के उचित बंटवारे तथा उपयोग द्वारा आर्थिक विकास की गति को आगे बढ़ाने तथा सामाजिक कल्याण में अत्यधिक वृद्धि करने से है।'

एडम स्मिथ की धन संबंधी परिभाषा अधूरी, अपूर्ण और अवैज्ञानिक है। इसमें मनुष्य की अपेक्षा धन को अनावश्यक महत्व दिया गया है। मार्शल की कल्याण संबंधी परिभाषा स्मिथ की परिभाषा की तुलना में अधिक विस्तृत एवं व्यावहारिक है, परन्तु यह परिभाषा वैज्ञानिक नहीं है क्योंकि इस परिभाषा से मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं के संबंध में उचित जानकारी प्राप्त नहीं होती। प्रो. रोबिन्स की दुर्लभता संबंधी परिभाषा तर्कपूर्ण तथा वैज्ञानिक है, लेकिन व्यावहारिक नहीं है, क्योंकि यह मानवीय कल्याण की ओर कोई ध्यान नहीं देती। जहां तक

विकास केंद्रित परिभाषा का संबंध है, इसके विषय में अर्थशास्त्रियों में अधिक मतभेद नहीं है।

१.४ सूचक शब्द :

अर्थशास्त्र का अर्थ : अर्थशास्त्र एक मानवीय विज्ञान है। इसका मूल उद्देश्य मनुष्य का विकास करना है, मनुष्य के जीवन स्तर को ऊंचा उठाना और मनुष्य के कल्याण में वृद्धि करना है। मनुष्य दिन में नाना प्रकार की क्रियाएं करता है, जैसे-धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक इत्यादि। किन्तु मनुष्य अपने जीवन का अधिकतम भाग आर्थिक क्रियाओं पर व्यतीत करता है।

धन संबंधी परिभाषा : एडम स्मिथ के अनुसार, अर्थशास्त्र का संबंध धन के उपयोग, उत्पादन, विनिमय तथा वितरण से है। कुछ समय पश्चात एडम स्मिथ की धन संबंधी परिभाषा का अनेक अर्थशास्त्रियों, जैसे जे.बी. से, वाकर, मिल और सीनियर आदि ने समर्थन किया। इन अर्थशास्त्रियों ने भी अर्थशास्त्र को धन का विज्ञान माना। जैसे - जे. बी. से के अनुसार, अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो धन का विवेचन करता है।

कल्याण संबंधी परिभाषा : प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डा. अल्फ्रेड मार्शल ने 19वीं शताब्दी के अंत में धन संबंधी परिभाषा की आलोचना की प्रतिक्रिया के रूप में अर्थशास्त्रकी एक पूर्णतया नई तथा कल्याण संबंधी परिभाष देकर अर्थशास्त्रको नवजीवन प्रदान किया। डा. मार्शल ने 'धन' की अपेक्षा 'मानव कल्याण' पर अधिक बल दिया। उन्होंने स्पष्ट किया कि धन मनुष्य के लिए होता है न कि मनुष्य धन के लिए। उनका कहना था कि मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का उद्देश्य मेवल धन एकत्रित करना ही नहीं, बल्कि धन के उचित प्रयोग द्वारा मानव-कल्याण में वृद्धि करना है।

दुलर्भता संबंधी परिभाषा : सन् 1932 में लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स के प्रसिद्ध विद्वान लॉर्ड लॉयनल रोबिन्स ने अर्थशास्त्र की एक नई एवं वैज्ञानिक परिभाषा दी थी। इसके अनुसार अर्थशास्त्र एक विज्ञान है, जो मनुष्य के उस व्यवहार का अध्ययन करता है, जिसका संबंध अनेक प्रयोगों वाले सीमित साधनों तथा असीमित लक्ष्यों के साथ होता है।

विकास संबंधी परिभाषा : आधुनिक अर्थशास्त्रियों विशेषकर सेम्यूलसन, बेनहम, फर्गुसन और केञ्ज आदि ने अर्थशस्त्र की विकास संबंधी परिभाषाएं दी हैं। इन अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र को 'विकास का शास्त्र' कहकर परिभाषित किया है। ये परिभाषाएं एडम स्मिथ, मार्शल तथा रोबिन्स की परिभाषाओं के गुणों का मिश्रण है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, 'अर्थशास्त्र का संबंध दुर्लभ साधनों के उचित बंटवारे तथा उपयोग द्वारा आर्थिक विकास की गति को आगे बढ़ाने तथा सामाजिक कल्याण में अत्यधिक वृद्धि करने से है।'

१.५ स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न :

-अर्थशास्त्र क्या है? इस पर विस्तार से टिप्पणी करें।
-अर्थशास्त्र की धन व कल्याण संबंधी परिभाषाओं का वर्णन करें।
-दुर्लभता व विकास संबंधी परिभाषाओं पर टिप्पणी करें।
-अर्थशास्त्र की विभिन्न परिभाषाओं की आलोचना के मुख्य बिन्दु बताएं।
- अर्थशास्त्र की विभिन्न परिभाषाओं में आप किसे श्रेष्ठ मानेंगे और क्यों?

१.६ संदर्भित पुस्तकें :

बिजनेस इकॉनोमिक्स : आर. के. लेखी, एस.एल. अग्रवाल।
दी इंडियन इकॉनोमी : रे।
प्लानिंग ग्रोथ एंड दी इकॉनोमी : रे।
आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था : डा. एससी गुप्ता।
अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र : आर. डी. शर्मा।
अंतरराष्ट्रीय व्यापार : दालचंद्र बागडी।
आर्थिक अवधारणाएं व पद्धतियां : एम. सी. गुप्ता।
भारतीय राजनीतिक अर्थशास्त्र : गिरीश नंदन शर्मा।

बीए मास कम्यूनिकेशन – द्वितीय वर्ष *बीएमसी –१०७* **अर्थशास्त्र**
खंड–डी इकाई – एक अध्याय – दो

अर्थशास्त्र : स्वरूप व सीमाएं

लेखक : डा. वीना शर्मा
एस. आई. एम. शैली में परिवर्तन :

अध्याय संरचना :

इस अध्याय में अर्थशास्त्र के स्वरूप व सीमाओं से परिचित होंगे। इस अध्याय में अर्थशास्त्र के क्षेत्र या विषय सामग्री तथा अर्थशास्त्र की प्रकृति की चर्चा करेंगे। अध्याय की संरचना इस प्रकार होगी :

२.० उद्देश्य
२.१ परिचय
२.२ विषय वस्तु की प्रस्तुति
२.२.१ अर्थशास्त्र की विषय सामग्री
२.२.२ अर्थशास्त्र की प्रकृति
२.३ सारांश
२.४ सूचक शब्द
२.५ स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
२.६ संदर्भित पुस्तकें

२.० उद्देश्य :

इस अध्याय के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

अर्थशास्त्र की विषय सामग्री से परिचित होना
अर्थशास्त्र की प्रकृति का अध्ययन

२.१ परिचय :

अर्थशास्त्र का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इसके अंतर्गत एक व्यक्ति विशेष की आर्थिक क्रियाओं से लेकर समूचे राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के अध्ययन तक को शामिल किया जाता है। अर्थशास्त्र के अध्ययन को दो भागों में बांटकर इसका अध्ययन किया जाता है – माइक्रो व मैक्रो अर्थशास्त्र। माइक्रो अर्थशास्त्र में बाजार की सूक्ष्मतम इकाइयों का अध्ययन किया जाता है। इसमें एक उपभोक्ता, एक वस्तु, एक फर्म आदि को शामिल किया जाता है। दूसरी ओर मैक्रो अर्थशास्त्र का दायरा बहुत फैला हुआ है। इसमें समूचे राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को सम्मिलित कर उसका अध्ययन किया जाता है।

इस अध्याय में अर्थशास्त्र के स्वरूप व सीमाओं से परिचित होंगे।

२.२ विषय वस्तु की प्रस्तुति :

इस अध्याय में अर्थशास्त्र के स्वरूप व सीमाओं से परिचित होंगे। अध्याय में विषय वस्तु की प्रस्तुति निम्न प्रकार से होगी :

अर्थशास्त्र की विषय सामग्री

अर्थशास्त्र की प्रकृति

२.२.१ अर्थशास्त्र की विषय सामग्री :

अर्थशास्त्र की विषय सामग्री का अर्थ यह है कि हम अर्थशास्त्र में किन-किन बातों का अध्ययन करते हैं। अर्थशास्त्र की विषय सामग्री का संकेत इसकी परिभाषा से मिलता है। परिभाषाओं में भिन्नता के कारण अर्थशास्त्र की विषय सामग्री में भी मतभेद पाए जाते हैं। श्रीमती वूटन का यह कथन कि 'जहां छह अर्थशास्त्री एकत्र होते हैं, वहां सात मत होते हैं।' अर्थशास्त्र की विषय सामग्री पर भी पूरी तरह लागू होता है। इस संबंध में मुख्यत: निम्न दृष्टिकोण हैं :

1. क्लासिकल अर्थशास्त्रियों का दृष्टिकोण।
2. कल्याणवादी अर्थशास्त्रियों का दृष्टिकोण।
3. रोबिन्स का दृष्टिकोण।
4. आधुनिक अर्थशास्त्रियों का दृष्टिकोण।

1. एडम स्मिथ तथा अन्य क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र धन का विज्ञान है। अर्थशास्त्र में धन से संबंधित क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। अर्थशास्त्र की विषय सामग्री धन के उपभोग, उत्पादन, विनिमय और वितरण संबंधी क्रियाओं तक सीमित है।

2. मार्शल तथा अन्य कल्याणवादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशस्त्र में सामाजिक व्यक्ति की उन क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। जिनका संबंध भौतिक कल्याण के लिए धन की प्राप्ति और उचित उपभोग से है।

3. रोबिन्स ने अर्थशास्त्र को दुर्लभता का विज्ञान माना है। इस संबंध में उनका विचार है कि मानवीय आवश्यकताएं असीमित होती हैं और उनको संतुष्ट करने के साधन सीमित हैं तथा वैकल्पिक प्रयोगों वाले हैं। साधनों की दुर्लभता के साथ-साथ चुनाव की समस्या उत्पन्न होती है। दुर्लभ साधनों में सभी आवश्यकताओं को पूरा करना असंभव होता है, इसलिए चुनाव करना पड़ता है। अधिक तीव्र आवश्यकताओं को पहले पूरा किया जाता है, उसके बाद कम महत्वपूर्ण आवश्यकताओं को। चुनाव करने के लिए मूल्यांकन करना पड़ता है। मूल्यांकन से उपभोक्ता को ज्ञन होता है कि साधनों का प्रयोग किस प्रकार सबसे उत्तम रूप में किया जाए। अतएव दुर्लभ साधनों का प्रयोग, चुनाव तथा कीमत-निर्धारण ही अर्थशास्त्र की विषय सामग्री के प्रमुख अंग हैं।

4. आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार मनुष्य अपनी असीमित आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रयत्न करता है। प्रयत्न करने पर मनुष्य धन कमाता है, जिससे वस्तुएं प्राप्त करके दूसरी आवश्यकताओं की संतुष्टि करता है। परन्तु एक आवश्यकता पूरी होते ही तुरंत दूसरी आवश्यकता महसूस होने लगती है और आवश्यकताओं को संतुष्ट करने की समस्या निरंतर बनी रहती है। आर्थिक चक्र के अंतर्गत मनुष्य जो क्रियाएं करता है, वही अर्थशास्त्र की वास्तविक विषय-सामग्री है।

अर्थशास्त्र के क्षेत्र :

अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री के अध्ययन को निम्नलिखित पांच भागों में बांटा जा सकता है :

1. उपभोग : अर्थशास्त्र के इस विभाग में मानवीय आवश्यकताओं की प्रकृति, उनकी संतुष्टि, उपभोग, उपभोग के नियमों, वस्तु की मांग, मांग का नियम, मांग की लोच, उपभोक्ता के संतुलन आदि का अध्ययन किया जाता है।

2. उत्पादन : इस विभाग में उत्पादन के साधनों और उनकी समस्याओं, उत्पादन के नियमों, उत्पादन के पैमाने, उत्पादन की लागत व पूर्ति का अध्ययन किया जाता है।

3. विनिमय : इस विभाग के अंतर्गत वस्तुओं का आदान-प्रदान, वस्तुओं की कीमत का निर्धारण, बाजार, बैंक तथा मुद्रा इत्यादि का अध्ययन किया जाता है।

4. वितरण : अर्थशास्त्र के इस विभाग का संबंध उत्पादन के साधनों द्वारा उत्पादित आय का उनके बीच लगान, मजदूरी, ब्याज तथा लाभ के रूप में बंटवारे से है।

5. राजस्व : इसमें सरकार की आय तथा व्यय, ऋण नीति, कर नीति तथा उससे संबंधित समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।

कुछ आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री को निम्न दो भागों में बांटा जाता है:

क. माइक्रो अर्थशास्त्र : इसमें व्यक्तिगत इकाइयों की क्रियाओं तथा उनके व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। जैसे कि एक वस्तु की कीमत का निर्धारण, एक उपभोक्ता या एक फर्म का संतुलन तथा एक विशेष बाजार आदि का अध्ययन किया जाता है। इस भाग के अंतर्गत पदार्थ कीमत-निर्धारण, साधन कीमत निर्धारण, मांग तथा पूर्ति, उत्पादन व लागत सिद्धांत तथा आर्थिक कल्याण की विवेचना की जाती है।

ख. मैक्रो अर्थशास्त्र : इसमें समूची अर्थव्यवस्था का अध्ययन सामूहिक रूप में किया जाता है। जैसे कुल रोजगार, कुल राष्ट्रीय आय, सामान्य कीमत स्तर, अंतरराष्ट्रीय व्यापार, राजस्व, आर्थिक विकास, व्यापार चक्र आदि।

कुछ आधुनिक अर्थशास्त्री विषय-सामग्री में आर्थिक प्रणालियां जैसे-पूंजीवाद, समाजवाद, मिश्रित अर्थव्यवस्था तथा आर्थिक नीतियां, जैसे - मौद्रिक नीति, राजकोषिय नीति, आर्थिक आयोजन आदि का अध्ययन शामिल करते हैं।

२.२.२ अर्थशास्त्र की प्रकृति :

अर्थशास्त्र की प्रकृति के संबंध में हमें निम्न बातों का अध्ययन करना है :

क. क्या अर्थशास्त्र एक विज्ञान है?

ख. अर्थशास्त्र वास्तविक विज्ञान है या आदर्शात्मक विज्ञान?

ग. क्या यह एक कला है?

क. क्या अर्थशास्त्र एक विज्ञान है? - अर्थशास्त्र विज्ञान है या नहीं, यह जानने के लिए हमें सर्वप्रथम विज्ञान का अर्थ समझ लेना चाहिए।

विज्ञान का अर्थ - 'विज्ञान किसी भी विषय के क्रमबद्ध अध्ययन को कहते हैं, जिसमें किसी भी तथ्य विशेष के संबंध में कारण एवं परिणाम के संबंध को व्यक्त किया जाता है।'

विज्ञान की उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर विज्ञान में निम्न विशेषताएं पाई जाती हैं :

1. विज्ञान एक क्रमबद्ध अध्ययन होता है।

2. विज्ञान के अपने नियम होते हैं।

3. विज्ञान के नियम कारण और परिणाम में संबंध व्यक्त करते हैं।

4. विज्ञान के नियम सार्वभौमिक सत्यता के होते हैं।

अर्थशास्त्र एक विज्ञान है, क्योंकि इसमें विज्ञान की उपर्युक्त सभी विशेषताएं पाई जाती हैं। जैसे कि :

1. क्रमबद्ध अध्ययन : अर्थशास्त्र में सभी आर्थिक क्रियाओं का क्रमबद्ध विश्लेषण किया जाता है। आवश्यकताएं – प्रयत्न – धन – संतुष्टि तथा उपभोग, उत्पादन, विनिमय, वितरण का अध्ययन क्रमबद्ध अध्ययन ही होता है।

2. आर्थिक नियम : अन्य विज्ञानों की भांति अर्थशास्त्र के भी अपने कुछ नियम हैं। जैसे कि मांग व पूर्ति का नियम, उपभोग के नियम, उत्पादन के नियम आदि।

3. कारण और परिणाम में संबंध : अर्थशास्त्र के नियम कारण और परिणाम में आपसी संबंध व्यक्त करते हैं, जैसे कि मांग के नियम में कीमत के कम होने से मांग बढ़ती है। इसमें कीमत का कम होना कारण है और मांग का बढ़ना परिणाम है।

4. सार्वभौमिक सत्यता : कुछ आर्थिक नियम सार्वभौमिक सत्यता के हैं, अर्थात वे प्रत्येक मानव तथा स्थान पर समान रूप से लागू होते हैं। जैसे घटते सीमांत तुष्टिगुण का नियम, घटते प्रतिफल का नियम आदि।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र विज्ञान है। क्योंकि इसमें विज्ञान की सभी विशेषताएं पाई जाती हैं। लेकिन फिर भी कुछ अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र को विज्ञान नहीं मानते। उनके विचार में :

क. अर्थशास्त्रियों में मतभेद पाया जाता है, जहां छह अर्थशास्त्री होते हैं, वहां सात विचार पेश किए जाते हैं। विचारों में भिन्नता के कारण अर्थशास्त्र में अनिश्चितता आ जाती है जबकि वैज्ञानिक नियम तो सदैव निश्चित होते हैं।

ख. अर्थशास्त्र में भौतिक विज्ञानों की भांति प्रयोग संभव नहीं होते।

ग. अर्थशास्त्र में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। इसका कारण यह है कि अर्थशास्त्र मानव व्यवहार का अध्ययन करता है और मानव व्यवहार विभिन्न परिस्थितियों में बदलता रहता है।

घ. जिन आंकड़ों के आधार पर अर्थशास्त्र के निष्कर्ष निकाले जाते हैं वे निश्चित एवं स्थिर नहीं होते, अपितु उनमें परिवर्तन होते रहते हैं।

ङ. अर्थशास्त्र में आर्थिक क्रियाओं का मुद्रा रूपी मापदंड – कोई विश्वसनीय मापक नहीं है, क्योंकि इसके अपने मूल्य में ही परिवर्तन होता रहता है।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन से प्रतीत होता है कि अर्थशास्त्र को विान के रूप में स्वीकृत नहीं किया जा सकता। परन्तु यह सत्य है नहीं है। अर्थशास्त्र के विज्ञान होने के विरुद्ध ऊपर उठाई गई आपत्तियां इतनी वास्तविक नहीं हैं, क्योंकि अर्थशास्त्र विज्ञान के कई गुणों को पूरा करता है। अभी अर्थशास्त्र का विकास हो रहा है, अत: मतभेद होना स्वाभाविक है। यह कहना कि अर्थशास्त्र में प्रयोग संभव नहीं, उचित जान नहीं पड़ता। वास्तव में अर्थशास्त्र में भी प्रयोग होते रहते हैं। अवमूल्यन करना, परिवार नियोजन लागू करना, समाजवाद, पूंजीवाद आदि आर्थिक प्रयोग ही तो हैं। वास्तव में समस्त संसार अर्थशास्त्र की प्रयोगशाला है और सभी मानव–प्राणी इस प्रयोगशाला के यंत्र हैं। मापदंड एक बड़ी बात है क्योंकि यह किसी न किसी सीमा तक आर्थिक क्रियाओं को माप सकता है।

अत: अर्थशास्त्र के विज्ञान न होने के विरुद्ध दिए गए तर्क ठीक नहीं हैं। वास्तव में अर्थशास्त्र एक विज्ञान हे।

ख. अर्थशास्त्र वास्तविक विज्ञान है या आदर्शात्मक विज्ञान :

यह जान लेने के पश्चात कि अर्थशास्त्र एक विज्ञान है, एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि अर्थशास्त्र किस प्रकार का विज्ञान है? विज्ञान दो प्रकार का होता है :

1. वास्तविक विज्ञान,

2. आदर्शात्मक विज्ञान।

अत: यह जानना जरूरी है कि अर्थशास्त्र वास्तविक विज्ञान है या आदर्शात्मक विज्ञान। इसी प्रश्न को इस रूप में भी कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र उद्देश्य के प्रति तटस्थ है अथवा नहीं?

अर्थशास्त्रियों में इस संबंध में भी मतभेद हैं। कुछ अर्थशास्त्री इसे केवल एक वास्तविक विज्ञान मानते हैं अर्थात उनके विचार में अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति तटस्थ है। जबकि कुछ अन्य अर्थशास्त्री इसे वास्तविक तथा आदर्शात्मक दोनों मानते हैं अर्थात उनके विचार में अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति तटस्थ नहीं है। अब हम इन दोनों तरह की विचारधाराओं का अध्ययन करेंगे।

1. अर्थशास्त्र एक वास्तविक विज्ञान के रूप में :

वास्तविक विज्ञान किसी विषय का ऐसा क्रमबद्ध अध्ययन होता है जिसका संबंध 'क्या है' से होता है। इसमें हम क्या हैं, क्यों हैं आदि प्रश्नों का उत्तर देते हैं। वास्तविक विज्ञान का संबंध 'क्या होना चाहिए' से नहीं होता। इसमें हम वास्तविक स्थिति का अध्ययन करते हैं। वास्तविक विज्ञान किसी घटना के कारण तथा परिणामों का अध्ययन करता है। यह तथ्य कि अच्छाई-बुराई के पचड़े में नहीं पड़ता।

रोबिन्स, सीनियर, वालरस आदि अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र केवल एक वास्तविक विज्ञान है। रोबिन्स के अनुसार 'अर्थशास्त्र के उद्देश्यों के प्रति तटस्थ है।' उनके विचार में अर्थशास्त्र का नीतिशास्त्र से कोई संबंध नहीं। इसमें उचित-अनुचित का कोई प्रश्न नहीं उठता। उनके विचार में चाहे साधुओं का समाज हो या दुरात्माओं का, दोनों के विश्लेषण में कोई अंतर नहीं आता। इसी संबंध में सीनियर का कहना है कि 'अर्थशास्त्री सलाह का एक भी शब्द नहीं जोड़ सकता।' रोबिन्स ने इसे और स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'अर्थशस्त्री का कार्य खोज करना तथा व्याख्या करना है, उसका कार्य समर्थन या आलोचना करना नहीं।'

इन अर्थशास्त्रियों के विचार में आय व धन के वितरण में कितना अंतर होना चाहिए? मजदूरी की दर क्या निर्धारित होनी चाहिए? अवमूल्यन करना चाहिए या नहीं? ऐसे प्रश्नों के विषय में निर्णय लेने का कार्य अर्थशास्त्रियों का नहीं, वरन राजनीतिज्ञों का होता है। राजनीतिज्ञों द्वारा निर्धारित उद्देश्यों के अनुसार योजना बनाने, नीति निर्धारण करने और वितरण करने का काम ही अर्थशास्त्री का है। अर्थशास्त्री तो देश में आय वितरण की वर्तमान अवस्था का अध्ययन प्रस्तुत करेंगे। इसे बदला जाना चाहिए या नहीं, इस संदर्भ में सलाह देने का कार्य अर्थशास्त्री का नहीं। इस प्रकार इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र वास्तविक विज्ञान होने के नाते उद्देश्यों के प्रति तटस्थ है।

2. अर्थशास्त्र एक आदर्शात्मक विज्ञान के रूप में :

अनेक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री, जैसे मार्शल, पींगू, हाट्रे इत्यादि, अर्थशास्त्र को आदर्शात्मक विज्ञान मानते हैं। उनके विचार में, अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति तटस्थ नहीं है।

आदर्शात्मक विज्ञान किसी विषय का ऐसा क्रमबद्ध अध्ययन होता है जिसका संबंध 'क्या होना चाहिए' से होता है। आदर्श विज्ञान 'क्या है' के साथ-साथ 'क्या होना चाहिए' की भी व्याख्या करता है। यह अच्छे-बुरे की परख

करता है। उचित-अनुचित में अंतर बतलाता है, लक्ष्य निर्धारित करता है और उन्हें प्राप्त करने का सुझाव देता है।

इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र केवल वास्तविक स्थिति का ही अध्ययन नहीं करता, अपितु आदर्श भी स्थापित करता है। हाट्रे के अनुसार, 'अर्थशास्त्र को नीतिशास्त्र से जुदा नहीं किया जा सकता। अर्थशास्त्री को वास्तविक जगत की समस्याओं के संबंध में अपना मत देना ही होगा। उसे यह बताना ही होगा कि उचित मजदूरी दर क्या होनी चाहिए। देश में से गरीबी दूर होनी चाहिए, पूर्ण रोजगार का उद्देश्य रखना चाहिए।' आज विभिन्न आर्थिक समस्याअें के संबंध में अर्थशास्त्री अपनी अंतिम राय भी देता है। एक अर्थशास्त्री चाह कर भी अपने आपको आदर्शात्मक पक्ष से अलग नहीं कर सकता। आखिर अर्थशास्त्री भी तो हाड़-मांस का बना हुआ मनुष्य ही है, उसके भी अपने विचार होते हैं। वह अवश्य चाहेगा कि ऐसे समाज का निर्माण हो जिसमें अधिक से अधिक लोग अधिकतम आनंद व सुख का जीवन व्यतीत कर सकें। अत: स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति तटस्थ नहीं है, उसे समाज के सामने आदर्श स्थापित करने ही होंगे।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र एक वास्तविक तथा आदर्शात्मक विज्ञान है।

ग. क्या अर्थशास्त्र एक कला है ?

क्या अर्थशास्त्र एक कला है? इस प्रश्न के संबंध में भी अर्थशास्त्रियों में मतभेद हैं। रोबिन्स, सीनियर, वालरस, शुम्पीटर आदि अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र कला नहीं है। इसके विपरीत, मार्शल, पीगू, मिल आदि के अनुसार अर्थशास्त्र कला भी है। इस संबंध में कोई निर्णय लेने से पहले यह जानना आवश्यक हो जाता है कि कला किसे कहते हैं।

कला- कला शब्द आते ही हमारे समक्ष कई कलाएं घूमने लगती हैं। जैसे चित्र-कला, संगीत कला, नृत्य कला आदि। चित्र बनाने को चित्रकला, संगीत देने को संगीत कला तथा नृत्य करने को नृत्यकला कहा जाता है। अर्थात 'किसी निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ज्ञान का व्यावहारिक प्रयोग कला कहलाता है।' केञ्ज के अनुसार, 'निश्चित उद्देश्यों की प्राप्त करने की विधि ही कला है।' बहुत से अर्थशास्त्री कला को 'व्यावहारिक विज्ञान' मानते हैं। उनके विचार में विज्ञान हमें 'ज्ञान' देता है और कला हमें 'करना' सिखाती है। कला हमारी समस्याओं का समाधान करती है। अर्थात कला का संबंध किसी कार्य को करने के सर्वोत्तम ढंग से होता है।

जो अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र को कला नहीं मानते, उनका कहना है कि अर्थशास्त्र एक विज्ञान है और इसे विज्ञान ही रहना चाहिए। परन्तु जो अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र को कला मानते हैं, उनके विचार में बहुत सी समस्याएं विशुद्ध आर्थिक समस्याएं होती हैं। अत: एक अर्थशास्त्री ही उनका समाधान बता सकता है। अर्थशास्त्री एक कला के रूप में बतला देता है कि लगान, मजदूरी व ब्याज की उचित तथा आदर्श दर निर्धारित करने के लिए किन-साधनों व उपायों का प्रयोग करना चाहिए। देश की निर्धनता को दूर करने के लिए क्या काम करना चाहिए? देश में समान आय का बंटवारा कैसे किया जा सकता है। लोगों का जीवन स्तर कैसे ऊंचा उठाया जाए? वस्तुओं की कीमतों को स्थिर रखने के लिए किन-किन तरीकों को अपनाया जाना चाहिए? अर्थशास्त्र यह भी मार्गदर्शन करता है कि देश में योजना कैसे बननी चाहिए और सरकार को अपनी आय कैसे खर्च करनी चाहिए। इस प्रकार अर्थशास्त्र हमारी व्यावहारिक समस्याओं को सुलझाने में सहायता करता है। पीगू के अनुसार, 'हम अर्थशस्त्र का अध्ययन एक दार्शनिक दृष्टिकोण से केवल ज्ञान प्राप्त करने के लिए ही नहीं, बल्कि एक डॉक्टर के दृष्टिकोण से करते हैं जो डॉक्टरी इसलिए पढ़ता है ताकि वह अपने ज्ञान से रोगियों को लाभ पहुंचा सके।'

२.३ सारांश :

अर्थशास्त्र की विषय सामग्री का अर्थ यह है कि हम अर्थशास्त्र में किन-किन बातों का अध्ययन करते हैं। अर्थशास्त्र की विषय सामग्री का संकेत इसकी परिभाषा से मिलता है। परिभाषाओं में भिन्नता के कारण अर्थशास्त्र की विषय सामग्री में भी मतभेद पाए जाते हैं। श्रीमती वूटन का यह कथन कि 'जहां छह अर्थशास्त्री एकत्र होते हैं, वहां सात मत होते हैं।'

अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री के अध्ययन को निम्नलिखित पांच भागों में बांटा जा सकता है : उपभोग , उत्पादन, विनिमय, वितरण और राजस्व।

माइक्रो अर्थशास्त्र में व्यक्तिगत इकाइयों की क्रियाओं तथा उनके व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। जैसे कि एक वस्तु की कीमत का निर्धारण, एक उपभोक्ता या एक फर्म का संतुलन तथा एक विशेष बाजार आदि का अध्ययन किया जाता है। इस भाग के अंतर्गत पदार्थ कीमत-निर्धारण, साधन कीमत निर्धारण, मांग तथा पूर्ति, उत्पादन व लागत सिद्धांत तथा आर्थिक कल्याण की विवेचना की जाती है।

मैक्रो अर्थशास्त्र में समूची अर्थव्यवस्था का अध्ययन सामूहिक रूप में किया जाता है। जैसे कुल रोजगार, कुल राष्ट्रीय आय, सामान्य कीमत स्तर, अंतरराष्ट्रीय व्यापार, राजस्व, आर्थिक विकास, व्यापार चक्र आदि। कुछ आधुनिक अर्थशास्त्री विषय-सामग्री में आर्थिक प्रणालियां जैसे-पूंजीवाद, समाजवाद, मिश्रित अर्थव्यवस्था तथा आर्थिक नीतियां, जैसे - मौद्रिक नीति, राजकोषिय नीति, आर्थिक आयोजन आदि का अध्ययन शामिल करते हैं।

अर्थशास्त्र एक विज्ञान है, एक वास्तविक विज्ञान, एक आदर्शात्मक विज्ञान और एक कला भी है। पीगू के अनुसार, 'अर्थशास्त्र ज्ञानदासक भी है और फलदायक भी।'

२.४ सूचक शब्द :

अर्थशास्त्र की विषय सामग्री : अर्थशास्त्र की विषय सामग्री का अर्थ यह है कि हम अर्थशास्त्र में किन-किन बातों का अध्ययन करते हैं। अर्थशास्त्र की विषय सामग्री का संकेत इसकी परिभाषा से मिलता है। परिभाषाओं में भिन्नता के कारण अर्थशास्त्र की विषय सामग्री में भी मतभेद पाए जाते हैं। श्रीमती वूटन का यह कथन कि 'जहां छह अर्थशास्त्री एकत्र होते हैं, वहां सात मत होते हैं।'

माइक्रो अर्थशास्त्र : इसमें व्यक्तिगत इकाइयों की क्रियाओं तथा उनके व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। जैसे कि एक वस्तु की कीमत का निर्धारण, एक उपभोक्ता या एक फर्म का संतुलन तथा एक विशेष बाजार आदि का अध्ययन किया जाता है। इस भाग के अंतर्गत पदार्थ कीमत-निर्धारण, साधन कीमत निर्धारण, मांग तथा पूर्ति, उत्पादन व लागत सिद्धांत तथा आर्थिक कल्याण की विवेचना की जाती है।

मैक्रो अर्थशास्त्र : इसमें समूची अर्थव्यवस्था का अध्ययन सामूहिक रूप में किया जाता है। जैसे कुल रोजगार, कुल राष्ट्रीय आय, सामान्य कीमत स्तर, अंतरराष्ट्रीय व्यापार, राजस्व, आर्थिक विकास, व्यापार चक्र आदि। कुछ आधुनिक अर्थशास्त्री विषय-सामग्री में आर्थिक प्रणालियां जैसे-पूंजीवाद, समाजवाद, मिश्रित अर्थव्यवस्था तथा आर्थिक नीतियां, जैसे - मौद्रिक नीति, राजकोषिय नीति, आर्थिक आयोजन आदि का अध्ययन शामिल करते हैं।

विज्ञान का अर्थ : 'विज्ञान किसी भी विषय के क्रमबद्ध अध्ययन को कहते हैं, जिसमें किसी भी तथ्य विशेष के संबंध में कारण एवं परिणाम के संबंध को व्यक्त किया जाता है।'

कला : कला शब्द आते ही हमारे समक्ष कई कलाएं घूमने लगती हैं। जैसे चित्र-कला, संगीत कला, नृत्य कला

आदि। चित्र बनाने को चित्रकला, संगीत देने को संगीत कला तथा नृत्य करने को नृत्यकला कहा जाता है। अर्थात 'किसी निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ज्ञान का व्यावहारिक प्रयोग कला कहलाता है।' केञ्ज के अनुसार, 'निश्चित उद्देश्यों की प्राप्त करने की विधि ही कला है।' बहुत से अर्थशास्त्री कला को 'व्यावहारिक विज्ञान' मानते हैं। उनके विचार में विज्ञान हमें 'ज्ञान' देता है और कला हमें 'करना' सिखाती है। कला हमारी समस्याओं का समाधान करती है।

२.५ स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नः

- अर्थशास्त्र के क्षेत्र से आप क्या समझते हैं? विस्तार से लिखें।
- अर्थशास्त्र की विषय सामग्री पर विस्तृत टिप्पणी करें।
- अर्थशास्त्र की प्रकृति का वर्णन करें।
- अर्थशास्त्र की सीमाओं से क्या अभिप्राय है?

२.६ संदर्भित पुस्तकें :

बिजनेस इकॉनोमिक्स : आर. के. लेखी, एस.एल. अग्रवाल।
दी इंडियन इकॉनोमी : रे।
प्लानिंग ग्रोथ एंड दी इकॉनोमी : रे।
आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था : डा. एससी गुप्ता।
अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र : आर. डी. शर्मा।
अंतरराष्ट्रीय व्यापार : दालचंद्र बागडी।
आर्थिक अवधारणाएं व पद्धतियां : एम. सी. गुप्ता।
भारतीय राजनीतिक अर्थशास्त्र : गिरीश नंदन शर्मा।

बीए मास कम्यूनिकेशन – द्वितीय वर्ष *बीएमसी –१०७* **अर्थशास्त्र**
खंड–डी इकाई – दो अध्याय – तीन

भारतीय अर्थव्यवस्था की आधारभूत विशेषताएं

लेखक : डा. वीना शर्मा
एस. आई. एम. शैली में परिवर्तन :

अध्याय संरचना :

इस अध्याय में भारतीय अर्थव्यवस्था से परिचित होंगे। इस अध्याय में भारतीय अर्थव्यवस्था की अल्पविकसित, मिश्रित व विकासशील अर्थव्यवस्था के रूप में चर्चा करेंगे। अध्याय की संरचना इस प्रकार होगी :

३.० उद्देश्य
३.१ परिचय
३.२ विषय वस्तु की प्रस्तुति
३.२.१ भारतीय अर्थव्यवस्था से परिचय
३.२.२ भारतीय अर्थव्यवस्था : अल्पविकसित अर्थव्यवस्था
३.२.३ भारतीय अर्थव्यवस्था : मिश्रित अर्थव्यवस्था
३.२.४ भारतीय अर्थव्यवस्था : विकासशील अर्थव्यवस्था
३.३ सारांश
३.४ सूचक शब्द
३.५ स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
३.६ संदर्भित पुस्तकें

३.० उद्देश्य :

इस अध्याय के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

भारतीय अर्थव्यवस्था से परिचय प्राप्त करना
भारतीय अर्थव्यवस्था का अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के रूप में अध्ययन करना
भारतीय अर्थव्यवस्था का मिश्रित अर्थव्यवस्था के रूप में अध्ययन करना
भारतीय अर्थव्यवस्था का विकासशील अर्थव्यवस्था के रूप में अध्ययन करना

३.१ परिचय :

किसी भी अर्थव्यवस्था के मुख्य तत्व होते हैं – राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय, ऋण एवं संचय, सार्वजनिक क्षेत्र–निजी क्षेत्र, धन एवं सुविधाओं का वितरण, कर प्रणाली, आयात–निर्यात संबंधी नीतियां, जनसंख्या बढने की दर और रोजगार की स्थिति। भारतीय अर्थव्यवस्था में आजादी के बाद बनी पंचवर्षीय योजनाओं से काफी सुधार आया है। इस कारण इन्हें भी मुख्य तत्व माना जाता है। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में अपनाई उदारीकरण एवं

वैश्वीकरण की नीति के बाद सार्वजनिक क्षेत्र की बजाय निजी क्षेत्र को अधिक महत्व दिया गया। कर्ज में डूबे भारत की अर्थव्यवस्था में धीरे-धीरे सुधार हो रहा है, लेकिन विदेशी सहायता पर निर्भरता समाप्त करना अभी दूर की बात है।

३.२ विषय वस्तु की प्रस्तुति :

इस अध्याय में हम अर्थशास्त्र की परिभाषाओं की चर्चा करेंगे। अध्याय में विषय वस्तु की प्रस्तुति निम्न प्रकार से होगी :

भारतीय अर्थव्यवस्था से परिचय
भारतीय अर्थव्यवस्था : अल्पविकसित अर्थव्यवस्था
भारतीय अर्थव्यवस्था : मिश्रित अर्थव्यवस्था
भारतीय अर्थव्यवस्था : विकासशील अर्थव्यवस्था

३.२.१ भारतीय अर्थव्यवस्था से परिचय :

भारतीय अर्थव्यवस्था शब्द दो शब्दों, भारतीय व अर्थव्यवस्था से मिलकर बना है। भारतीय शब्द से यहां अभिप्राय है भारत से संबंधित समस्याएं। अर्थव्यवस्था शब्द से तात्पर्य उन समस्त क्रियाओं तथा प्रबंधों से है जिसे किसी देश के नागरिक अलग-अलग अथवा सामूहिक रूप से अपनी आर्थिक आवश्यकताओं जैसे - भोजन, कपड़े, टेलीविजन, फ्रिज आदि की आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए करते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था भारत की आर्थिक जीवन से संबंधित आंकड़ों तथा तथ्यों का ही अध्ययन नहीं है वरन इसके अंतर्गत आर्थिक जीवन से संबंधित समस्याओं के कारण तथा उनके प्रभाव का भी विश्लेषण किया जाता है। इस विश्लेषण में आंकड़ों तथा तथ्यों की मदद तो ली जाती है, लेकिन उनका उपयोग केवल आर्थिक सिद्धान्तों के परीक्षण के लिए किया जाता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप निम्नलिखित विशेषताओं से स्पष्ट हो जाता है :

1. भारतीय अर्थव्यवस्था एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था है।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था एक मिश्रित अर्थव्यवस्था है।
3. भारतीय अर्थव्यवस्था योजनात्मक विकासशील अर्थव्यवस्था है।

भारतीय अर्थव्यवस्था की उपरोक्त तीनों विशेषताओं का विस्तृत अध्ययन करना हमारे लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

३.२.२ भारतीय अर्थव्यवस्था एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था :

संसार के कुछ देशों जैसे - अमेरिका, इंग्लैंड, जापान आदि की प्रति व्यक्ति आय कुछ दूसरे देशों जैसे भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, बांग्लादेश आदि की तुलना में बहुत अधिक है। इन देशों की अर्थव्यवस्था को विकसित अर्थव्यवस्था कहा जाता है। इसके विपरीत भारत, बांग्लादेश, पाकिस्तान आदि अधिकतर ऐसे देश हैं जिनकी प्रति व्यक्ति आय विकसित देशों की तुलना में बहुत कम है। इन देशों की अर्थव्यवस्थाओं को अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाएं कहा जाता है।

नोबेल पुरस्कार विजेता प्रसिद्ध अर्थशास्त्री सैम्युअलसन के अनुसार, 'एक अल्पविकसित देश वह देश है जिसमें

प्रति व्यक्ति वास्तविक आय कनाडा, अमेरिका, ब्रिटेन तथा सामान्यत: पश्चिमी यूरोप के दशों की वर्तमान प्रति व्यक्ति आय की तुलना में कम है। आशावादी रूप में यह समझा जाता है कि अल्पविकसित देश में अपनी आय के स्तर में पर्याप्त सुधार कर सकने की क्षमता विद्यमान है।'

1.2 अल्पविकसितता का सिद्धान्त : एक अल्पविकसित देश अपने आर्थिक विकास में क्यों सफल नहीं हो पाता, इस संबंध में मुख्य दो सिद्धांत हैं :

1. निर्धनता का दुष्चक्र : प्रो. नर्कसे के अनुसार, 'अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं का मुख्य कारण इन अर्थव्यवस्थाओं में पाया जाने वाला निर्धनता का दुष्चक्र है।'

इनका अभिप्राय यह है कि इन अर्थव्यस्थाओं में कम आय, कम पूंजी, कम उत्पादकता तथा कम बचत में एक चक्रीय संबंध पाया जाता है। निर्धनता के दुष्चक्र के सिद्धान्त से यह ज्ञात होता है कि अल्पविकसित देशों को इस दुष्चक्र को तोड़ने के लिए बचत तथा पूंजी निर्माण में वृद्धि करनी होगी।

2. कम आय स्तर संतुलन सिद्धान्त : प्रो. हार्वे लेबिन्स्टाइन ने अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास में पड़ने वाली रुकावटों के संबंध में कम आय स्तर संतुलन सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। इस सिद्धान्त के तीन मुख्य निष्कर्ष हैं :

क. अल्पविकसित अर्थव्यवस्था एक ऐसी संतुलित व्यवस्था मानी जानी चाहिए जिनका संतुलन स्थिर नहीं होता।

ख. अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में जब परिवर्तन किया जाता है तो जिन शक्तियों के कारण प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होने की आवृत्ति पाई जाती है वे ही शक्तियां प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ऐसे कारण उत्पन्न कर देती हैं जिनके फलस्वरूप प्रति व्यक्ति आय में कमी होने लगती है।

ग. असन्तुलित अवस्था में अल्पविकसित अर्थव्यवस्था की विकास की प्रारंभिक अवस्था में आय को कम करने वाले तत्त्व अधिक शक्तिशाली होते हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था के अल्पविकसितता के संबंध में नर्कसे तथा लेबिन्स्टाइन दोनों का सिद्धान्त लागू होता है। स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था की विकास दर लगभग शून्य थी। यद्यपि रेलवे, सड़कों, कपड़ा उद्योग, इस्पात उद्योग, खानों तथा कारखानों में काफी निवेश किया गया था। इस निवेश के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि तो हुई परन्तु जैसा कि लेबिन्स्टाइन के सिद्धान्त से सिद्ध होता है, यह राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि कायम नहीं रह सकी। पंचवर्षीय परियोजनाओं में भी जो अरबों रुपयों का निवेश किया गया है उसके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में कुछ प्रगति हुई है, परन्तु इस प्रगति की दर को कम करने वाली कई विरोधी शक्तियां भी साथ-साथ काम करती रही हैं। इनमें से तीन विरोधी शक्तियां मुख्य हैं :

1. जनसंख्या विस्फोट
2. कम पूंजी निर्माण
3. लोगों की आशाओं में वृद्धि, जिसके फलस्वरूप वस्तुओं तथा सेवाओं की मांग में वृद्धि हो जाती है तथा मुद्रा स्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

1.3 भारतीय अर्थव्यवस्था की एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के रूप में विशेषताएं :

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के रूप में मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

(1) प्रति व्यक्ति आय में स्थिरता : स्वतंत्रता से पूर्व लगभग 5 साल की अवधि (191-1951) में प्रति व्यक्ति आय में एक प्रतिशत प्रति वर्ष से भी कम वृद्धि हुई। स्वतंत्रता के बाद यद्यपि अर्थव्यवस्था को योजनाओं

के कारण गति मिली है, परन्तु प्रति व्यक्ति की वृद्धि दर असंतोषजनक रही है। सन् 195-51 से 21 की अवधि में वार्षिक वृद्धि 1.9 प्रतिशत होने का अनुमान है। प्रति व्यक्ति आय की स्थिरता से ज्ञात होता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था अल्पविकसित अर्थव्यवस्था है।

(2) प्रति व्यक्ति आय का निम्न स्तर : प्रो. कुरीहारा के अनुसार, 'प्रति व्यक्ति निम्न वास्तविक आय अल्पविकसित अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषता है।' भारत की प्रति व्यक्ति आय संसार के लगभग सभी देशों से कम है। सन् 2-1 में प्रचलित कीमतों पर प्रति व्यक्ति आय का अनुमान 16,487 रुपये लगाया गया। भारत में एक व्यक्ति की प्रतिदिन की औसत आय 44 रुपये की लगभग है। संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रति व्यक्ति आय 68 गुणा, इंग्लैंड की प्रति व्यक्ति आय 4 गुणा तथा जापान की प्रति व्यक्ति आय 6 गुणा अधिक है। निम्न प्रति व्यक्ति आय तथा निम्न वृद्धि दर अल्पविकसित अर्थव्यवस्था की निशानी है।

(3) निम्न जीवन स्तर : भारत में प्रति व्यक्ति आय कम होने के कारण आवश्यकताओं की वस्तुओं जैसे भोजन, कपड़े, मकान आदि के उपभेग का स्तर नीचा है। भरत में प्रतिदिन एक व्यक्ति औसतन केवल इतना भोजन करता है जिससे 2415 कैलोरी तथा 59 ग्राम प्रोटीन प्राप्त होती है। जबकि विकसित देशों में प्रति व्यक्ति को प्रतिदिन औसतन 3,15 कैलोरी तथा 97 ग्राम प्रोटीन प्राप्त होती है। इस प्रकार भारत में लोगों का जीवन स्तर नीचा होने के कारण उनकी कार्यकुशलता कम हो जाती है। कार्यकुशलता कम होने के कारण प्रति व्यक्ति उत्पादकता कम होती है। इसके फलस्वरूप आय कम होती है। आय कम होने के कारण निर्धन देश निर्धन ही बने रहते हैं।

(4) धन व आय के वितरण में असमानता : भारत में एक ओर तो प्रति व्यक्ति आय कम है तथा दूसरी ओर धन तथा संपत्ति के वितरण में भारी असमानता पाई जाती है। वर्ल्ड डेवलपमेंट रिपोर्ट 21 के अनुसार, भारत में जनसंख्या के सबसे अधिक निर्धन 1 प्रतिशत लोगों को राष्ट्रीय आय का केवल 3.5 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है जबकि सबसे अधिक धनी 1 प्रतिशत लोगों को राष्ट्रीय आय का 33.5 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि संसार के कई देशों जैसे जापान, अमेरिका, इंग्लैंड आदि में आय तथा धन के असमान वितरण के फलस्वरूप धनी व्यक्तियों ने अपनी आय के अधिकांश भाग को बचाकर पूंजी निर्माण में लगाया था। इसके स्थान पर भारत में शन-शौकत या विलासिता पर खर्च किया गया।

(5) कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में पिछड़ी हुई कृषि : भारत में भी 64 प्रतिशत जनसंख्या के रोजगार एवं आय का मूल आधार कृषि ही है। यद्यपि नियोजन काल में भारत के कृषि क्षेत्र में व्याप्त दीर्घकालीन गतिहीनता समाप्त हुई है और कृषि विकास की नवीन व्यूह रचना हरित क्रांति के बल पर हमारा देश खाद्यान्न की पूर्ति में आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ रहा है, लेकिन आज भी भारतीय कृषि का स्वरूप पिछड़ा हुआ है। आज की 64 प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या के कृषि कार्यों में संलग्न होने के उपरान्त भी कृषि से कुल राष्ट्रीय आय का केवल 27 प्रतिशत भाग ही प्राप्त होता है जबकि गैर कृषि क्षेत्र में कार्यरत 36 प्रतिशत जनसंख्या से कुल राष्ट्रीय आय का 73 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट है कि भारतीय कृषि की उत्पादकता बहुत कम है। भारत में गेहूं, चावल, गन्ना, कपास, दालों-तिलहन आदि फसलों की प्रति हेक्टेयर उपज विकसित राष्ट्रों की औसत उपज के एक तिहाई से भी कम है। इसके अतिरिक्त कृषि की मानसून पर निर्भरता, पुरानी उत्पादन विधियां, उत्पादन में खाद्यान्न फसलों की प्रधानता, किसानों की निर्धनता आदि तथ्य भारतीय कृषि के पिछड़ेपन के प्रतीक है।

(6) उचित औद्योगीकरण का अभाव : भारत में उद्योगों के विकास की गति काफी धीमी रही है। देश में कई महत्वपूर्ण उद्योगों का अभाव है। यद्यपि स्वतंत्रता के पश्चात कई उपभोग वस्तु उद्योग जैसे कपड़ा, चीनी, दवाइयां

आदि का पर्याप्त विकास हो सका है। परंतु आधारभूत तथा पूंजीगत वस्तुओं के उद्योगों जैसे मशीन उद्योग, रसायन उद्योग, खाद उद्योग आदि का विकास संतोषजनक ढंग से नहीं हो सका है। यद्यपि बड़े उद्योगों को आरंभ किए हुए लगभग सौ वर्ष हो चुके हैं लेकिन अभी तक बड़े उद्योगों से केवल 75 लाख लोगों को रोजगार प्राप्त होता है। यह कुल रोजगार का केवल 4 प्रतिशत है। सन 2~1 में उद्योगों, बिजली, निर्माण कार्यों आदि में राष्ट्रीय आय का केवल 24.6 प्रतिशत भाग प्राप्त हुआ है, जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका को उद्योगों से कुल आय का 27 प्रतिशत, जर्मनी को 36 प्रतिशत तथा यूके को 31 प्रतिशत भाग प्राप्त हुआ है।

(7) उचित बैंकिंग व्यवस्था का अभाव : भारत के अल्पविकसित होने का एक कारण यह भी है कि यहां बैंकिंग तथा साख संबंधी सुविधाओं का विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्र में विकास नहीं हो सका है। भारत की अधिकतर जनसंख्या कृषि तथा लघु उद्योगों पर निर्भर रहती है। परन्तु निर्धन किसानों तथा छोटे किसानों तथा छोटे उद्यमियों की आय का बड़ा भाग कर्ज तथा ब्याज चुकता करने में ही खत्म हो जाता है। उनमें बचत करने की शक्ति नहीं रह जाती है। बचत के अभाव में वे निवेश नहीं कर पाते। इसके फलस्वरूप कृषि या उद्योगों का विकास नहीं हो पाता। अतएव बैंकिंग सुविधाओं के अपर्याप्त होने के कारण देश के अधिकतर उद्यमी अपनी आर्थिक व्यवस्था को सुधारने में असमर्थ रहते हैं।

(8) यातायात के साधनों का कम विकास : भारत जैसे विशाल देश के लिए यातायात के साधनों जैसे रेल, सड़क, जल तथा वायु यातायात की वर्तमान स्थिति को पर्यापत नहीं कहा जा सकता। इन साधनों के आवश्यकता से कम होने का देश के लोगों तथा वस्तुओं की गतिशीलता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। निर्धन किसानों के लिए अपने खेतों की पैदावार को मंडियों तक ले जाना बहुत कठिन तथा खर्चीला सिद्ध होता है। उन्हें गांवों में ही कम कीमत पर अपनी पैदावार बेचने के लिए मजबूर होना पड़ता है। यातायात की कमी के कारण उद्योगों को भी कच्चे माल, कोयले आदि की प्राप्ति में कठिनाई महसूस होती है। इसके कारण औद्योगिक उत्पादन की मात्रा कम होती है तथा उनकी लागत बढ जाती है। भारत में एक लाख जनसंख्या के लिए केवल 24 किलोमीटर रेलवे लाइनें हैं जबकि कनाडा में प्रति एक लाख जनसंख्या के लिए 1163 किलोमीटर लंबी रेल लाइनें हैं। भारत में प्रति एक लाख जनसंख्या के लिए 271 किलोमीटर लंबी सड़कें हैं, जबकि अमेरिका में प्रति एक लाख व्यक्तियों के लिए 3141 किलोमीटर लंबी सड़कें हैं। इससे सिद्ध होता है कि विकसित देशों की तुलना में भारत में रेलवे लाइनें लगभग 5 और सड़कें 1 गुणा कम हैं।

(9) जनसंख्या का दबाव : भारत में संसार की लगभग 16 प्रतिशत जनसंख्या रहती है, जबकि भारत का क्षेत्रफल संसार के क्षेत्रफल का केवल 2.4 प्रतिशत ही हे। अत: भारत में प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धि केवल 1.9 हेक्टेयर है। भारत में एक ओर तो प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता बहुत कम है और दूसरी ओर कृषि पर आधारित जनसंख्या का दबाव बहुत अधिक है। इसलिए भारत में खेतों का औसतन क्षेत्रफल 2 हेक्टेयर है जबकि अमेरिका में 122 हेक्टेयर है। खेतों के छोटे होने के कारण छोटे तथा सीमांत किसानों की आय का अधिकतर भाग अपने बढ़ते हुए परिवार के पालन-पोषण पर ही खर्च हो जाती है। उनकी बचत करने की क्षमता तथा उनके द्वारा किए गए निवेश की मात्रा शून्य होती है। वे अपनी आर्थिक अवस्था में सुधार नहीं कर पाते। भारत में जनसंख्या अधिक ही नहीं वरन जनसंख्या की वृद्धि दर भी बहुत अधिक अर्थत 1.8 प्रतिशत है। जनसंख्या की वृद्धि दर अधिक होने से देश में खाद्यान्न, बेरोजगारी आदि की समस्याएं उत्पन्न होती रहती हैं। जनसंख्या का यह दबाव विकास के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा है।

(10) बेरोजगारी तथा अर्द्ध बेरोजगारी : भारत में बहुत अधिक बेरोजगारी तथा अर्द्ध बेरोजगारी पाई जाती है। यह अनुमान लगाया जाता है कि देश में 15 प्रतिशत श्रमिक बेरोजगार हैं। बेरोजगारी के कारण श्रम शक्ति का अपव्यय होता है, उत्पादन की पूर्ति कम होती है तथा प्रति व्यक्ति आय और निवेश कम होता है, निवेश कम होने के फलस्वरूप उत्पादन तथा रोजगार कम होता है।

(11) पूंजी की कमी : किसी देश के आर्थिक विकास के लिए पूंजी निर्माण का बहुत अधिक महत्व है। कुजनेट्स के अनुसार, 'पूंजी निर्माण के नीचे अनुपात के कारण राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि दर नीची होती है।' भारत में 195-51 में कुल आय का लगभग दस प्रतिशत भाग बचाया गया था। निवेश का स्तर भी लगभग यही था। इसलिए यह प्रश्न उठता है कि भारत में बचत का स्तर इतना नीचे क्यों था? इसके कई कारण थे जैसे - भारत के धनी वर्ग का विलासिता की वस्तुओं पर खर्च, भारत में बैंकिंग व्यवस्था का अभाव तथा निवेश की सुविधाओं का अभाव। इस समय निवेश का स्तर बढ़ाकर क्रमश: 23.3 प्रतिशत हो गया है जबकि जापान में यह 29 प्रतिशत, स्वीडन में 26 प्रतिशत तथा श्रीलंका में 24 प्रतिशत है।

(12) अल्पविकसित प्राकृतिक साधन : यह ध्यान देने योग्य बात है कि यद्यपि भारत में प्राकृतिक साधन काफी मात्रा में पाए जाते हैं, लेकिन भारत के प्राकृतिक साधनों जैसे जल, भूमि, खनिज, तथा वन संपत्ति का उचित उपयोग नहीं किया जा सका है। देश में केवल 14 प्रतिशत जल संसाधनों का प्रयोग किया जा रहा है। इसके फलस्वरूप एक ओर तो देश में उद्योगों तथा कृषि के उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ता है और दूसरी ओर बाढ़ों के प्रकोप का सामना करना पड़ता है। भारत अपनी खनिज संपत्ति जैसे लोहा, कोयला, पेट्रोल, अभ्रक आदि का भी उचित उपयोग नहीं कर सका है। सिंचाई की कमी के कारण कृषि भूमि का उचित उपयोग नहीं किया जा सका है। कृषि भूमि की उत्पादकता भी कम है, वनों का भी उचित उपयोग नहीं किया जा सका है। प्राकृतिक साधनों के पूर्ण उपयोग का अभाव देश के अल्पविकसित होने का मुख्य कारण है।

(13) योग्य तथा निपुण उद्यमियों का अभाव : प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. शुम्पीटर के अनुसार आर्थिक विकास के लिए योग्य तथा निपुण उद्यमियों की बहुत अधिक आवश्यकता है। परन्तु भारत में इस प्रकार क उद्यमियों की बहुत अधिक कमी है। यहां के उद्यमी सट्टेबाजी के द्वारा तुरंत लाभ प्राप्त करना चाहते हैं। वे जोखिम उठाकर नए-नए उद्योगों की स्थापना करने में रूचि नहीं लेते हैं। यही कारण है कि भारतवर्ष में उद्योगों का विकास उचित ढंग से नहीं हो पा रहा है।

(14) पिछड़ी हुई सामाजिक संस्थाएं : भारत में मुख्य सामाजिक संस्थाएं जैसे जाति प्रथा, संयुक्त परिवार प्रथा, उत्तराधिकार के नियम, रीति-रिवाज, धार्मिक प्रथाएं आदि आर्थिक विकास के लिए बाधक हैं। इनके प्रभाव के कारण लोग कार्य करने के पुराने ढंग को छोड़ना पसंद नहीं करते, वे वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित नई कार्यप्रणाली को अपनाने का विरोध करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि देश में आधुनिक तकनीकों को आसानी से नहीं अपनाया जाता तथा देश के साधनों का अपव्यय होता है।

(15) घटिया मानव पूंजी : आधुनिक अर्थशास्त्री श्रमिकों को भी पूंजी का ही एक रूप मानते हैं। वे इसे मानव पूंजी के नाम से पुकारते हैं। भारतीय अर्थव्यस्था का अल्पविकसित होना देश की मानव पूंजी के घटिया होने के कारण भी है तथा परिणाम भ्झी है। जब किसी देश के श्रमिकों का जीवन स्तर नीचा होता है, वे अशिक्षित होते हैं, उनका स्वास्थ्य खराब होता है तो उनकी कार्यकुशलता कम होती है। कार्यकुशलता कम होनक के कारण उत्पादन की लागत अधिक होती है परंतु क्वालिटी कम होती है। इस कारण श्रमिकों की आय कम होती है। इस

प्रकार वे निर्धनता के चक्र में फंसे रहते हैं।

(16) तकनीक का विस्तार : भारत के अधिकतर उद्योगों तथा कृषि के बहुत बड़े क्षेत्र में निम्नस्तर की पुरानी तकनीकों का ही प्रयोग किया जा रहा है। देश के कई उद्योगों जैसे कपड़ा, चीनी आदि में पुरानी तथा घटिया किस्म की मशीनें हैं। इनके द्वारा उत्पादन करने से उत्पादन लागत अधिक होती है तथा घटिया किस्म का उत्पादन होता है। यही कारण है जिसके कारण हमारे देश के उद्योगों के उत्पादन विदेशी व्यापार में दूसरे देशों के उत्पादन से प्रतियोगिता नहीं कर पाते। इसका हमारे निर्यातों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। कृषि के क्षेत्र में भी आधुनिक यंत्रों, उ नत बीजों, रासायनिक खादों आदि का प्रयोग बहुत कम किया जा रहा है। निम्न स्तर की तकनीक के कारण उत्पादकता कम होती है तथा साधनों का उचित प्रयोग नहीं होने पाता।

उपरोक्त विवरण से सिद्ध हो जाता है कि प्रो. रेडावे ने ठीक ही कहा है कि 'भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषता निर्धनता है। भारत के अल्पविकसित होने का यह प्रमुख चिह्न है।'

३.२.३ भारतीय अर्थव्यवस्था एक मिश्रित अर्थव्यवस्था :

लार्ड केन्ज के अनुसार, मिश्रित अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जिसमें पूंजीवाद व समाजवाद दोनों के ही गुण पाए जाते हैं। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र दोनों ही देश के आर्थिक विकास में सक्रिय भाग लेते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था एक मिश्रित अर्थव्यवस्था है। स्वतंत्रता के तुरंत बाद बनाई गई 1948 की औद्योगि नीति तथा प्रथम पंचवर्षीय योजना के बाद बनाई गई 1956 की औद्योगिक नीति, सन् 1977 तथा 1991 की औद्योगिक नीतियों का मुख्य लक्ष्य देश का मिश्रित अर्थव्यवस्था के आधार पर आर्थिक विकास करना है। भारत की मिश्रित अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएं निम्न हैं :

(1) सार्वजनिक क्षेत्र : सन 1991 की औद्योगिक नीति के अनुसार देश के औद्योगिक विकास, जनकल्याण तथा सुरक्षा के लिए आवश्यक 4 वस्तुओं जैसे परमाणु, रेलवे, युद्ध सामग्री आदि का उत्पादन केवल सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित कर दिया गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि इन उद्योगों के नए कारखाने केवल सरकार द्वारा ही स्थापित किए जाएंगे।

(2) लाइसेंस क्षेत्र : देश के औद्योगिक तथा कृषि विकास के लिए आवश्यक 18 वस्तुओं जैसे शराब, सिगरेट, औद्योगिक विस्फोटक, दवाइयों आदि का उत्पादन करने के लिए निजी क्षेत्र को सरकार से लाइसेंस लेना पड़ेगा।

(3) निजी क्षेत्र : देश के आर्थिक विकास तथा सुरक्षा के लिए ऊपर बताए गए आवश्यक 6 उद्योगों को छोड़कर बाकी सब उद्योगों, कृषि, लघु उद्योगों आदि के विकास करने की स्वतंत्रता निजी क्षेत्र को दी गई। परंतु देश के उचित आर्थिक विकास तथा निर्धन और मध्यम वर्ग के कल्याण में वृद्धि करने के उद्देश्य से सरकार ने निजी क्षेत्र को नियंत्रित करने के लिए मुख्य रूप से तीन उपाय किए हैं :

(क) औद्योगिक नियमन कानून : इस कानून के अनुसार सरकार निजी क्षेत्र के उद्योगों को इस प्रकार नियमित करती है जिससे वे अपने स्वार्थ के लिए जनता तथा श्रमिकों का शोषण न कर सकें।

(ख) सहकारी क्षेत्र का विकास : निर्धन तथा मध्यम वर्ग के लोगों के आर्थिक विकास के लिए सहकारी क्षेत्र की स्थापना की गई है।

(ग) लघु उद्योगों के लिए सुरक्षित उत्पादन : देश में बेरोजगारी तथा आय और धन के वितरण की असमानता दूर करने के लिए लघु तथा कुटीर उद्योगों के विकास को विशेष प्रोत्साहन दिया जा रहा है। सन 1991 की नई

औद्योगिक नीति में लगभग 836 से अधिक वस्तुओं का उत्पादन इस क्षेत्र के लिए सुरक्षित कर दिया गया है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था की नीति के फलस्वरूप देश के आर्थिक विकास के लिए अधिकांश उद्योगों जैसे इस्पात, मशीनें, रसायन आदि की स्थपना में सार्वजनिक क्षेत्र ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। सन 1951 में सार्वजनिक क्षेत्र में केवल 2 करोड़ रुपये की पूंजी लगी हुई थी जबकि सन 21 में यह बढ़कर 3,3,4 करोड़ हो गई है। भारतीय अर्थव्यस्था में सार्वजनिक क्षेत्र का महत्व निजी क्षेत्र की तुलना में कम है। 1991 के बाद लागू की गई उदारवादी आर्थिक नीति के कारण निजी क्षेत्र का महत्व और अधिक बढ़ गया है। इसके लक्षण अभी तक एक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था से अधिक मिलते हैं। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डा. केएन राज के शब्दों में, 'यद्यपि भारतीय अर्थव्यवस्था मिश्रित बनी हुई है, परन्तु मिश्रण के तत्व इसे पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के समान बनाए हुए है न कि समाजवादी अर्थव्यवस्था के समान।'

३.२.४ भारतीय अर्थव्यस्था एक योजनात्मक विकासशील अर्थव्यवस्था : स्वर्गीय प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में भारत सरकार ने देश के आर्थिक विकास के लक्ष्य को तीव्र गति से प्राप्त करने के लिए आर्थिक योजनाओं का मार्ग अपनाया। भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना 1951 में, दूसरी पंचवर्षीय योजना 1956 में, तीसरी पंचवर्षीय योजना 1961 में, तीन एकवर्षीय योजना 1966 में, चौथी पंचवर्षीय योजना 1969 में, पांचवीं पंचवर्षीय योजना 1974 में, छठी पंचवर्षीय योजना 198 में, सातवीं पंचवर्षीय योजना 1985 में, आठवीं पंचवर्षीय योजना 1992, नौवीं पंचवर्षीय योजना 1997 तथा दसवीं पंचवर्षीय योजना 22 में लागू की गई।

पंचवर्षीय योजना के फलस्वरूप भारत की अर्थव्यवस्था में पहले की तुलना में सुधार हुआ है। इसलिए भारत की अर्थव्यवस्था को विकासशील अर्थव्यवस्था कहा जाता है। भारतीय अर्थव्यवस्था की एक विाकसशील अर्थव्यवस्था के रूप में मुख्य विशेषताएं निम्न हैं:

(1) राष्ट्रीय आय : भारत की राष्ट्रीय आय धीरे-धीरे बढ़ती रही है। चालू कीमतों पर 195-51 में राष्ट्रीय आय 8524 करोड़ रुपये थी। 2-1 में बढ़कर यह 16,79,982 करोड़ रुपये हो गई। इस प्रकार चालू कीमतों पर राष्ट्रीय आय में 26 गुणा वृद्धि हुई। प्रति व्यक्ति आय चालू कीमतों पर 195-51 में 246 रुपये से बढ़कर 2-1 में बढ़कर 16,487 रुपये हो गई है। इस प्रकार चालू कीमतों पर प्रति व्यक्ति आय में 21 गुणा वृद्धि हुई है। योजनाओं की अवधि में वास्तविक राष्ट्रीय आय में चार गुणा वृद्धि हुई है।

(2) प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि : स्वतंत्रता से पहले प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि दर लगभग शून्य थी। परन्तु योजनाओं की अवधि में प्रति व्यक्ति आय में 1.7 प्रतिशत वृद्धि हुई है। तीसरी योजना के अतिरिक्त लगभग सभी योजनाओं में प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई है। पहली योजना में यह वृद्धि दर 1.7 प्रतिशत थी, दूसरी में यह बढ़कर 2 प्रतिशत हो गई। तीसरी योजना में यह कम होकर.1 प्रतिशत हो गई। परन्तु तीन एकवर्षीय योजनाओं में प्रति व्यक्ति आय की दर बढ़कर 1.4 प्रतिशत हो गई। चौथी योजना में यह कम होकर.9 प्रतिश हो गई परंतु पांचवी योजना में यह बढ़कर 6 प्रतिशत हो गई। छठी, सातवीं तथा आठवीं योजना में इसमें क्रमश: 3, 2 तथा 3.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। वर्ष 2-1 में बढ़कर यह 4.8 प्रतिशत हो गई।

(3) पूंजी निर्माण की दर में वृद्धि : प्रत्येक देश के आर्थिक विकास में पूंजी निर्माण का बहुत अधिक महत्व है। पंचवर्षीय योजना की अवधि में पूंजी निर्माण की दर में बहुत वृद्धि हुई है। पूंजी निर्माण की दर बचत तथा निवेश की दर पर निर्भर करती है। पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में बचत तथा निवेश की दर में काफी वृद्धि हुई है।

195–51 में बचत की दर सकल घरेलू आय का 1.4 प्रतिशत थी जो कदम दर कदम बढ़कर आठवीं पंचवर्षीय परियोजना में 25 प्रतिशत हो गई। लेकिन नौवीं पंचवर्षीय परियोजना 2–1 में यह 23.4 प्रतिशत रह गई।

(4) कृषि में संस्थागत सुधार तथा हरित क्रांति : कृषि के विकास में योजनाओं का योगदान दो प्रकार का है, एक तो कृषि में भूमि सुधार किए गए हैं। यद्यपि ये भूमि सुधार पूर्ण रूप से लागू नहीं किए जा सके हैं। परन्तु इस बात को स्वीकार करना होगा कि सीमित भूमि सुधारों ने भी उन्नत खेती के लिए वातावरण तैयार किया है। सामुदायिक विकास का भी इस दृष्टि से कम महत्व नहीं है। दूसरे सन् 1966 से कृषि के तकनीकी विकास पर जोर दिया गया है। इसके फलस्वरूप हरित क्रांति हो सकी है। योजनाओं की अवधि में खाद्यान्न का उत्पादन तिगुना बढ़ गया है। योजनाओं की अवधि में कृषि क्षेत्र में काफी विकास हुआ है। 1951–52 में अनाज का उत्पादन 55 लाख टन हुआ था। 2–1 में अनाज का उत्पादन बढ़कर 196 लाख टन हुआ है। गन्ने का उत्पादन 195–51 में 69 लाख टन से बढ़कर 2–1 में 2992 लाख टन हो गया। इसी प्रकार कपास तथा पटसन का उत्पादन 195–51 में 5 लाख गांठें तथा 25 लाख गांठें क्रमशः था। 2–21 में इनका उत्पादन बढ़कर 97 लाख गांठें और 15 लाख गांठें हो गया। योजनाओं के काल में कृषि के उत्पादन में काफी वृद्‌धि हुई है। रासायनिक खाद, उत्तम बीज तथा खेती के उन्नत ढंग के फलस्वरूप प्रति हैक्टेयर उत्पादन कई गुणा अधिक बढ़ गया था। योजनाओं की अवधि में कृषि उत्पादन के विकास की दर औसतन 2.9 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही है। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि हरित क्रांति केवल कुछ विशेष क्षेत्रों जैसे पंजाब, हरियाणा, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र तक तथा मुख्य रूप से गेहूं के उत्पादन तक ही सीमित रही है। अब भी भारत की कृषि एक पिछड़ी हुई खेती मानी जाती है।

(5) उद्योगों का विकास : योजनाओं के फलस्वरूप औद्योगिक क्षेत्र में भी काफी सफलता मिली है। देश में आधारभूत तथा पूंजीगत उद्योगों जैसे लोहा, इस्पात, मशीनरी, खाद, रसायन आदि उद्योगों का काफी विकास हुआ है। सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार किया गया है। उपभोग उद्योगों के संबंध में देश लगभग आत्मनिर्भर हो चुका है। उद्योग का विविधीकरण तथा आधुनिकीकरण किया गया है। औद्योगिक उत्पादन की क्षमता में काफी वृद्धि हुई है। औद्योगिक उत्पादन की विकास दर लगभ्र 6.9 प्रतिशत रही है। योजनाओं के फलस्वरूप भारत में औद्योगिक क्षेत्र में बहुत अधिक विकास हुआ है। पहली पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक उत्पादन से 7.5 प्रतिशत वृद्‌धि हुई है। वास्तव में दूसरी योजना औद्योगिक योजना था। इसमें औद्योगिक उत्पादन में 6.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। चौथी योजना में प्रतिवर्ष औसत वृद्धि दर 4.5 प्रतिशत थी। सातवीं योजना में औसत वृद्धि दर 8.5 प्रतिशत जबकि आठवीं योजना में 6.8 प्रतिशत रही। कपड़ा, चीनी तथा सीमेंट का उत्पादन 2–1 में 324 लाख टन हो गया। देश में खनिज पदार्थों का बहुत अधिक विकास हुआ है। संक्षेप में, योजना के काल में औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि हुई है।

(6) बुनियादी ढांचे का विकास : बुनियादी आर्थिक ढांचे में मुख्य रूप से यातायात, संचार के साधन, सिंचाई की सुविधाएं तथा बिजली की उत्पादन क्षमता आदि शामिल किए जाते हैं। योजनाओं की अवधि में बुनियादी आर्थिक ढांचे का काफी विकास हो सका है। इस अवधि में 9 हजार किलोमीटर लंबी लाइन का निर्माण तथा 8 हजार किलोमीटर लंबी रेलवे लाइन का विद्युतीकरण किया गया है। पहली और नौवीं परियोजना की बात करें तो सड़कों की लंबाई 1 लाख 57 हजार किलोमीटर से बढ़कर 15.3 लाख किलोमीटर हो गई है। रेलों द्वारा ले जाए जाने वाले कच्चे माल की मात्रा 9.3 करोड़ से बढ़कर 48 करोड़ टन हो गई है। जहाजरानी 3.1 लाख जीआरटी से बढ़कर 69 लाख जीआरटी हो गई। बिजली उत्पादन की क्षमता 23 मेगावाट थी, यह 11,63 मैगावाट हो गई। सिंचाई की क्षमता 26 लाख हैक्टेयर से बढ़कर 947 लाख हैक्टेयर हो गई।

(7) सामाजिक सुविधाएं : योजनाओं की अवधि में देश की सामाजिक सुविधाओं जैसे शिक्षा, चिकित्सा, स्वास्थ्य, परिवार नियोजन आदि का काफी विकास हुआ है। 1951 से 21 तक कई सकारात्मक परिवर्तन हुए हैं। मृत्यु दर 27 प्रति हजार से घटकर 8 प्रति हजार, औसत आयु 32 वर्ष से बढ़कर 64 वर्ष हो गई है। मलेरिया जैसी कई भयंकर बीमारियों को अब प्राय: समाप्त कर दिया गया है। राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं और अनुसंधान केंद्रों की शृंखला स्थापित की गई है। स्कूली छात्रों की संख्या तीन गुणा बढ चुकी है। कालेज में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या पांच गुणा हो चुकी है। इंजीनियरिंग में वार्षिक दाखिलों की क्षमता 71 से बढ़कर 1,45 हो गई है। विश्वविद्यालय 27 से बढ़कर 237 हो गए हैं। अस्पताल और डिस्पैंसरियों की संख्या 44 हजार हो गई है और अब 2 व्यक्तियों के पीछे एक डाक्टर है।

(8) रोजगार : योजनाओं की अवधि में रोजगार के अवसर बढ़ाने के काफी प्रयास किए गए हैं। प्रथम योजना में 7 लाख, दूसरी में 1 लाख, तीसरी में 145 लाख व्यक्तियों को रोजगार प्रदान किया गया। सातवीं परियोजना में 41 लाख बेरोजगारों को रोजगार दिया गया है। यह मानना होगा कि योजनाएं बेरोजगारी को समाप्त करने में सफल नहीं हो सकी हैं। देश में बेरोजगारी प्रत्येक योजना के साथ-साथ बढ़ती गई है तथा 21 के अन्त तक पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करने का लक्ष्य है।

(9) आधुनिकीकरण : योजनाओं की अवधि में अर्थव्यवस्था में कुछ संरचनात्मक तथा संस्थागत परिवर्तन हुए हैं। वे इस बात के प्रतीक हैं कि अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण हुआ है। संरचनात्मक परिवर्तनों से राष्ट्रीय आय की बनावट में उद्योगों का योगदान बढ़ा है। आधुनिक तकनीकी प्रयोग करने वाले उद्योगों की संख्या में वृद्धि, कृषि क्षेत्र में नई तकनीकों का प्रयोग। योजनाओं की अवधि में होने वाले संस्थागत परिवर्तनों का भी बहत अधिक महत्व है। संस्थागत परिवर्तनों में सार्वजनिक क्षेत्र का विकास, लघु तथा मध्यम क्षेत्र का विकास, लघु तथा मध्यम क्षेत्र के लिए नियंत्रण तथा समर्थन प्रणाली का विकास, एकाधिकारी व्यवहार पर प्रतिबंध तथा मानवीय पूंजी का निर्माण आदि शामिल हैं।

(10) आत्म निर्भरता : योजनाओं के दौरान आत्मनिर्भरता के संबंध में निश्चित रूप से सफलता मिली है। यह निम्न तीन बातों से स्पष्ट हो जाता है :

1. चौथी योजना के आरंभ से योजनाओं की वित्त व्यवस्था में विदेशी सहायता का प्रतिशत योगदान कम होता जा रहा है। उदाहरण के लिए विदेशी सहायता का अनुपात जो तीसरी योजना में 12.8 प्रतिशत था, वह छठी तथा सातवीं योजना में 1 प्रतिशत तथा आठवीं योजना में यह 6.6 प्रतिशत रह गया।

2. आयात की प्रतिशत वृद्धि में कमी हुई है। यह अनुपात जो दूसरी योजना में 27 प्रतिशत तथा तीसरी योजना में 38 प्रतिशत था, छठी योजना में 14 प्रतिशत तथा सातवीं परियोजना में 16 प्रतिशत हो गया। कई महत्वपूर्ण वस्तुओं जैसे लोहा, इस्पात, मशीनरी, उवर्रक आदि का बड़े पैमाने पर आयात प्रतिस्थापन हुआ है।

3. निर्यात में भी बहुत अधिक प्रगति हुई। दूसरी योजना में निर्यात की वृद्धि दर 2.2 प्रतिशत थी। पांचवीं योजना में 18 प्रतिशत, छठी परियोजना में 13 प्रतिशत तथा सातवीं परियोजना में 2 प्रतिशत तथा आठवीं परियोजना में 17.2 प्रतिशत हो गई। योजनाएं देश की अर्थव्यवस्था को धीरे-धीरे आत्मनिर्भरता की ओर ले जाने में सफल हो रही हैं।

संक्षेप में, योजना के इन वर्षो में भारत ने नि:संदेह काफी आर्थिक प्रगति की है। देश में उद्योगों, बिजली, बहुमुखी योजनाओं तथा कृषि उत्पादन में विकास की ओर एक ऐसी नींव स्थापित करने में सफलता मिली है जिस पर निर्धन

जनता के सुख और समृद्धि का भवन अधिक सरलता से निर्मित किया जा सकता है।

३.३ सारांशः

भारतीय अर्थव्यवस्था शब्द दो शब्दों, भारतीय व अर्थव्यवस्था से मिलकर बना है। भारतीय शब्द से यहां अभिप्राय है भारत से संबंधित समस्याएं। अर्थव्यवस्था शब्द से तात्पर्य उन समस्त क्रियाओं तथा प्रबंधों से है जिसे किसी देश के नागरिक अलग-अलग अथवा सामूहिक रूप से अपनी आर्थिक आवश्यकताओं जैसे - भोजन, कपड़े, टेलीविजन, फ्रिज आदि की आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए करते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था भारत की आर्थिक जीवन से संबंधित आंकड़ों तथा तथ्यों का ही अध्ययन नहीं है वरन इसके अंतर्गत आर्थिक जीवन से संबंधित समस्याओं के कारण तथा उनके प्रभाव का भी विश्लेषण किया जाता है। इस विश्लेषण में आंकड़ों तथा तथ्यों की मदद तो ली जाती है, लेकिन उनका उपयोग केवल आर्थिक सिद्धान्तों के परीक्षण के लिए किया जाता है।

संसार के कुछ देशों जैसे - अमेरिका, इंग्लैंड, जापान आदि की प्रति व्यक्ति आय कुछ दूसरे देशों जैसे भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, बांग्लादेश आदि की तुलना में बहुत अधिक है। इन देशों की अर्थव्यवस्था को विकसित अर्थव्यवस्था कहा जाता है। इसके विपरीत भारत, बांग्लादेश, पाकिस्तान आदि अधिकतर ऐसे देश हैं जिनकी प्रति व्यक्ति आय विकसित देशों की तुलना में बहुत कम है। इन देशों की अर्थव्यवस्थाओं को अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाएं कहा जाता है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जिसमें पूंजीवाद व समाजवाद दोनों के ही गुण पाए जाते हैं। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र दोनों ही देश के आर्थिक विकास में सक्रिय भाग लेते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था एक मिश्रित अर्थव्यवस्था है। स्वतंत्रता के तुरंत बाद बनाई गई 1948 की औद्योगि नीति तथा प्रथम पंचवर्षीय योजना के बाद बनाई गई 1956 की औद्योगिक नीति, सन् 1977 तथा 1991 की औद्योगिक नीतियों का मुख्य लक्ष्य देश का मिश्रित अर्थव्यवस्था के आधार पर आर्थिक विकास करना है।

भारत सरकार ने देश के आर्थिक विकास के लक्ष्य को तीव्र गति से प्राप्त करने के लिए आर्थिक योजनाओं का मार्ग अपनाया। भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना 1951 में, दूसरी पंचवर्षीय योजना 1956 में, तीसरी पंचवर्षीय योजना 1961 में, तीन एकवर्षीय योजना 1966 में, चौथी पंचवर्षीय योजना 1969 में, पांचवीं पंचवर्षीय योजना 1974 में, छठी पंचवर्षीय योजना 198 में, सातवीं पंचवर्षीय योजना 1985 में, आठवीं पंचवर्षीय योजना 1992, नौवीं पंचवर्षीय योजना 1997 तथा दसवीं पंचवर्षीय योजना 22 में लागू की गई। पंचवर्षीय योजना के फलस्वरूप भारत की अर्थव्यवस्था में पहले की तुलना में सुधार हुआ है। इसलिए भारत की अर्थव्यवस्था को विकासशील अर्थव्यवस्था कहा जाता है।

३.४ सूचक शब्दः

भारतीय अर्थव्यवस्था : भारतीय अर्थव्यवस्था शब्द दो शब्दों, भारतीय व अर्थव्यवस्था से मिलकर बना है। भारतीय शब्द से यहां अभिप्राय है भारत से संबंधित समस्याएं। अर्थव्यवस्था शब्द से तात्पर्य उन समस्त क्रियाओं तथा प्रबंधों से है जिसे किसी देश के नागरिक अलग-अलग अथवा सामूहिक रूप से अपनी आर्थिक आवश्यकताओं जैसे - भोजन, कपड़े, टेलीविजन, फ्रिज आदि की आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए करते हैं।

अल्पविकसित अर्थव्यवस्था : संसार के कुछ देशों जैसे – अमेरिका, इंग्लैंड, जापान आदि की प्रति व्यक्ति आय कुछ दूसरे देशों जैसे भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, बांग्लादेश आदि की तुलना में बहुत अधिक है। इन देशों की अर्थव्यवस्था को विकसित अर्थव्यवस्था कहा जाता है। इसके विपरीत भारत, बांग्लादेश, पाकिस्तान आदि अधिकतर ऐसे देश हैं जिनकी प्रति व्यक्ति आय विकसित देशों की तुलना में बहुत कम है। इन देशों की अर्थव्यवस्थाओं को अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाएं कहा जाता है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था : लार्ड केन्ज के अनुसार, मिश्रित अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जिसमें पूंजीवाद व समाजवाद दोनों के ही गुण पाए जाते हैं। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र दोनों ही देश के आर्थिक विकास में सक्रिय भाग लेते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था एक मिश्रित अर्थव्यवस्था है। स्वतंत्रता के तुरंत बाद बनाई गई 1948 की औद्योगि नीति तथा प्रथम पंचवर्षीय योजना के बाद बनाई गई 1956 की औद्योगिक नीति, सन् 1977 तथा 1991 की औद्योगिक नीतियों का मुख्य लक्ष्य देश का मिश्रित अर्थव्यवस्था के आधार पर आर्थिक विकास करना है।

विकासशील अर्थव्यवस्था : स्वर्गीय प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में भारत सरकार ने देश के आर्थिक विकास के लक्ष्य को तीव्र गति से प्राप्त करने के लिए आर्थिक योजनाओं का मार्ग अपनाया। पंचवर्षीय योजना के फलस्वरूप भारत की अर्थव्यवस्था में पहले की तुलना में सुधार हुआ है। इसलिए भारत की अर्थव्यवस्था को विकासशील अर्थव्यवस्था कहा जाता है।

३.५ स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नः

- भारतीय अर्थव्यवस्था के मुख्य तत्व कौन–कौन से हैं?
- भारतीय अर्थव्यवस्था एक अल्पविकसित अर्थव्यस्था है। टिप्पणी करें।
- भारतीय अर्थव्यवस्था एक मिश्रित अर्थव्यस्था है। अपनी राय व्यक्त करें।
- क्या आपस समझते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था एक विकासशील अर्थव्यस्था है। टिप्पणी करें।

३.६ संदर्भित पुस्तकें :

बिजनेस इकॉनोमिक्स : आर. के. लेखी, एस.एल. अग्रवाल।
दी इंडियन इकॉनोमी : रे।
प्लानिंग ग्रोथ एंड दी इकॉनोमी : रे।
आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था : डा. एससी गुप्ता।
अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र : आर. डी. शर्मा।
अंतरराष्ट्रीय व्यापार : दालचंद्र बागडी।
आर्थिक अवधारणाएं व पद्धतियां : एम. सी. गुप्ता।
भारतीय राजनीतिक अर्थशास्त्र : गिरीश नंदन शर्मा।

बीए मास कम्यूनिकेशन – द्वितीय वर्ष *बीएमसी –१०७* **अर्थशास्त्र**
खंड–डी इकाई – दो अध्याय – चार

आयोजन प्रक्रिया एवं पंचवर्षीय योजना

लेखक : डा. वीना शर्मा
एस. आई. एम. शैली में परिवर्तन :

अध्याय संरचना :

इस अध्याय में आयोजन प्रक्रिया एवं पंचवर्षीय योजनाओं से परिचित होंगे। इस अध्याय में हम आर्थिक आयोजन, आर्थिक आयोजन की विशेषताएं, भारत में आर्थिक आयोजन का विकास, नियोजन प्रकिया, आर्थिक नियोजन के उद्देश्य,भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्य आदि विषयों की चर्चा करेंगे। अध्याय की संरचना इस प्रकार होगी:

४.० उद्देश्य
४.१ परिचय
४.२ विषय वस्तु की प्रस्तुति
४.२.१ आर्थिक आयोजन
४.२.२ आर्थिक आयोजन की विशेषताएं
४.२.३ भारत में आर्थिक आयोजन का विकास
४.२.४ भारत में नियोजन प्रकिया
४.२.५ आर्थिक नियोजन के उद्देश्य
४.२.६ भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्य
४.३ सारांश
४.४ सूचक शब्द
४.५ स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
४.६ संदर्भित पुस्तकें

४.० उद्देश्य :

इस अध्याय के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

आर्थिक आयोजन का अर्थ जानना
आर्थिक आयोजन की विशेषताओं से परिचित होना
भारत में आर्थिक आयोजन के विकास के बारे में जानकारी लेना
भारत में नियोजन प्रकिया से परिचित होना
आर्थिक नियोजन के उद्देश्य जानना
भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्य जानना

४.१ परिचय :

नियोजन प्रक्रिया का मतलब किसी देश के संपूर्ण प्राकृतिक, मानवीय, आर्थिक तथा तकनीकी संसाधनों का श्रेष्ठतम प्रयोग करना है। इस प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य देश एवं अर्थव्यवस्था का विकास करना होता है। इसलिए सरकार द्वारा विशेष योजनाएं बनाई जाती हैं जिनमें यह तय किया जाता है कि किसी क्षेत्र विशेष के विकास का लक्ष्य कैसे प्राप्त किया जाएगा। इसके लिए दीर्घकालीन योजनाएं बनाई जाती हैं जैसे पंचवर्षीय योजनाएं। इन योजनाओं के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अनेक सहायक योजनाएं बनाई जाती हैं। सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के विकास के लिए नीतियों का निर्धारण भी नियोजन प्रक्रिया में शामिल किया जाता है।

४.२ विषय वस्तु की प्रस्तुति :

इस अध्याय में हम नियोजन प्रक्रिया व पंचवर्षीय योजनाओं की चर्चा करेंगे। अध्याय में विषय वस्तु की प्रस्तुति निम्न प्रकार से होगी :

आर्थिक आयोजन
आर्थिक आयोजन की विशेषताएं
भारत में आर्थिक आयोजन का विकास
भारत में नियोजन प्रकिया
आर्थिक नियोजन के उद्देश्य
भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्य

४.२.१ आर्थिक नियोजन :

वर्तमान युग योजना का युग है। प्रो. डरबिन ने कहा है, 'अब हम सभी नियोजन हैं।' आज विश्व के सभी देश अपनी-अपनी अर्थव्यवस्थाओं का विकास करने हेतु आर्थिक आयोजन अपनाए हुए हैं। रूस में पिछड़ी हुई कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था को विकास पथ पर अग्रसर करने का श्रेय वहां के आर्थिक आयोजन को ही हे। अमेरिका ने जितनी उन्नति 1 वर्षों में की, रूस ने उतनी ही उन्नति योजनाओं के सहारे 5 वर्षों में ही कर दिखाई थी। रूप के उदाहरण से प्रेरित होकर आज विश्व के सभी अल्प-विकसित देश यह अनुभव करने लगे हैं कि आर्थिक आयोजन ही एक ऐसी संजीवनी बूटी या रामबाण औषधि है जो इन देशों को भूख, अभाव, निर्धनता, बेकारी जैसे रोगों से छुटकारा दिलाकर विकास के मार्ग पर अग्रसर कर सकती है। इस संदर्भ में प्रो. लुईस का कथन सत्य है, 'आयोजन के संबंध में केंद्रीय बात यह नहीं कि आयोजन होना चाहिए या नहीं, वरन यह है कि आयोजन का स्वरूप क्या हो।' स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात भारत ने अल्प-विकसितता को दूर करने के लिए तथा देश में उपलब्ध साधनों का समुचित उपयोग करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं के क्रम को आरंभ किया। अब तक 9 पंचवर्षीय योजनाएं पूरी हो चुकी हैं तथा दसवीं पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल, 22 से लागू है।

आर्थिक आयोजन का अर्थ :

आर्थिक आयोजन एक ऐसी विधि है जिसके अंतर्गत एक केंद्रीय योजनाधिकारी द्वारा देश के प्राकृतिक, पूंजीगत एवं मानवीय संसाधनों को ध्यान में रखते हुए एक निश्चित समय में आर्थिक विकास के पहले से निर्धारित लक्ष्यों

को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है।

भारतीय योजना आयोग के अनुसार, 'आर्थिक नियोजन आवश्यक रूप से सामाजिक उद्देश्यों के अनुरूप साधनों को अधिकतम लाभ हेतु संगठित एवं उपयोग करने का एक मार्ग है।'

डिकिन्सन के अनुसार, 'आर्थिक आयोजन से अभिप्राय सरकार द्वारा समूची अर्थव्यवस्था के सर्वेक्षण के आधार पर सोच-समझकर यह मुख्य आर्थिक निर्णय करना है कि क्या-क्या कितनी मात्रा में उत्पादन किया जाए तथा इसका बंटवारा किन-किन में किया जाए।'

आर्थिक आयोजन में निम्नलिखित निर्णय लिए जाते हैं :

क. देश में किन-किन वस्तुओं का उत्पादन करना है?

ख. कितना उत्पादन करना है?

ग. उत्पादन किनके लिए करना है?

घ. उत्पादन कहां और कैसे करना है?

४.२.२ भारत में आर्थिक आयोजन की विशेषताएं :

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय राजनीतिज्ञों ने, देश का तीव्र आर्थिक विकास करने के उद्देश्य से, आर्थिक आयोजन का समर्थन किया। परिणामस्वरूप सन् 1951 में भारत में आर्थिक आयोजन की प्रक्रिया शुरू हुई। भारतीय आर्थिक आयोजन की प्रमुख विशेषातएं निम्नलिखित हैं :

1. केंद्रीय आयोजन सत्ता : आर्थिक आयोजन का कार्य एक केंद्रीय आयोजन अधिकारी को सौंपा जाता है। वही योजनाएं बनाता है, उनमें समन्वय करता है और उनको कार्यान्वित करने का प्रयत्न करता है तथा योजना की प्रगति का मूल्यांकन करता है। भारत में यह कार्य योजना आयोग करता है जिसकी स्थापना मार्च 195 में की गई थी।

2. वित्तीय नियोजन : भारत में नियोजन का विकास वित्तीय नियोजन के रूप में हुआ है। इसका अर्थ यह है कि योजनाओं में भौतिक लक्ष्यों की तुलना में वित्तीय लक्ष्यों को अधिक महत्व दिया गया है। इसीलिए भारत में भौतिक लक्ष्यों और उनकी प्राप्तियों में पर्याप्त अंतर होता है।

3. लक्ष्यों एवं प्राथमिकताओं का निर्धारण : आर्थिक आयोजन में पहले से खूब सोच-विचार कर लक्ष्यों और प्राथमिकताओं का निर्धारण किया जाता है। भारत में विभिन्न योजनाओं में लक्ष्य एवं प्राथमिकताएं निर्धारित की जाती हैं, जैसे पहली योजना में कृषि विकास को, दूसरी योजना में औद्योगिक विकास को प्राथमिकता दी गई थी।

4. विस्तृत : भारतीय योजनाएं काफी विस्तृत हैं। ये अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों, जैसे कृषि, उद्योग, यातायात, संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक तथा सामाजिक सेवाओं आदि सभी के लिए बनाई गई है।

5. निश्चित अवधि : आर्थिक आयोजन में निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति के लिए एक निश्चित अवधि होती है जिसमें निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किए जाते हैं। भारतीय आयोजन की यह अवधि सामान्यत: पांच वर्ष निर्धारित की गई है।

6. दीर्घकालीन प्रक्रिया : आर्थिक नियोजन एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है। इसमें एक के बाद एक योजनाएं चलाई जाती हैं जिनमें आपस में दीर्घकालीन संबंध होता है। अल्पकालीन योजनाएं भी दीर्घकालीन योजनाओं का भाग होती हैं। इस प्रकार एक योजना दूसरी योजना के लिए तथा दूसरी योजना तीसरी योजना के लिए (और इसी प्रकार

आगे भी) आधार का काम देती हैं।

7. सरकारी कार्यक्रम : भारत में आर्थिक नियोजन को सरकारी कार्यक्रम के रूप में ही अपनाया जाता है।

8. राज्य द्वारा हस्तक्षेप : भारत में आर्थिक नियोजन की विशेषता यह है कि इसमें राज्य द्वारा हस्तक्षेप किया जाता है और निजी उद्योगों व संस्थाओं को भी राजकीय निर्देशों का पालन करना पड़ता है। कभी-कभी स्वयं राज्य भी नए-नए उद्योग व संस्थाएं स्थापित कर देता है।

9. सामाजिक उत्थान : भारतीय आर्थिक नियोजन का उद्देश्य सामाजिक उत्थान करना है जिससे की समाज का विकास हो, उसके रहन-सहन का स्तर ऊपर उठे, उसकी आय में वृद्धि हो तथा सामाजिक बुराइयों का अंत हो।

10. साधनों का अधिकतम प्रयोग : भारतीय आर्थिक नियोजन की एक विशेषता यह है कि इसमें साधनों का विवेकपूर्ण एवं अधिकतम उपयोग किया जाता है।

11. जन-सहयोग : भारतीय आयोजन में जन-साधारण के समर्थन को उचित स्थान दिया गया है। अतः योजनाओं को अधिकतर प्रोत्साहन द्वारा लागू किया जाता है। किन्तु यदि आवश्यकता पड़े तो इसे निर्देशन द्वारा भी चलाने का प्रयत्न किया जाता है।

12. राष्ट्रीय विकास परिषद : योजना कार्यों में समन्वय करने एवं राज्य सरकारों को सहमति तथा स्वीकृति प्रदान करने के उद्देश्य से तथा योजनाओं की प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए एक राष्ट्रीय विकास परिषद का गठन सन 1952 में किया गया है।

13. अधिक नारे : विभिन्न योजनाओं में प्रगति के लिए विभिन्न नारे दिए गए। उदाहरण के तौर पर पहली योजना में खाद्यान्न में आत्म-निर्भरता, छठी योजना में निर्धनता उन्मूलन। जहां सन 1965 में पाकिस्तान आक्रमण के कारण प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने 'जय जवान-जय किसान' का नारा दिया वहां पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने नौवीं पंचवर्षीय योजना में 'जय विज्ञान' का नारा दिया। वास्तव में सैद्धान्तिक रूप व्यावहारिक रूप से अधिक प्रभावशाली रहता है।

14. मिश्रित अर्थव्यवस्था : भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया गया है। इसलिए योजना के अनुसार निजी, सार्वजनिक तथा संयुक्त क्षेत्र में इसे लागू किया जाता है। पहले सार्वजनिक क्षेत्र को अधिक महत्व दिया जाता था, परन्तु आजकल निजी क्षेत्र को भी महत्व दिया जा रहा है।

४.२.३ भारत में आर्थिक आयोजन का विकास :

भारत में आर्थिक आयोजन का अध्ययन निम्नलिखित दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :

क. स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व योजना विचार

ख. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आर्थिक आयोजन

क. स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व योजना विचार : भारत में सर्वप्रथम सन 1934 में श्री एम. विश्वेवरैया ने योजना की प्रथम रूपरेखा दी थी। बाद में सन 1938 में अखिल भारतीय किसान द्वारा श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रीय योजना समिति में अखिल भारतीय कांग्रेस द्वारा जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रीय योजना समिति का गठन किया गया जिसने देश के आर्थिक विकास के लिए योजना की रूपरेखा प्रकाशित की। सन 1943 में भारत के आठ बड़े उद्योगपतियों ने मिलकर एक योजना तैयार की, जिसे मुंबई योजना के नाम से जाना जाता है। इस योजना का उद्देश्य 15 वर्षों में प्रति व्यक्ति आय को दोगुना करना था। लगभग इसी समय श्री एमएम राय

ने एक 'जन-योजना' तैयार की। इसने कृषि तथा उपभोग पदार्थों में उद्योगों के विकास पर बल दिया और श्री मन्नारायण अग्रवाल द्वारा एक योजना तैयार की गई, जिसे 'गांधीवादी योजना' के नाम से जाना जाता है। इस योजना में कृषि तथा लघु उद्योगों के विकास पर बल दिया गया। किन्तु इनमें से किसी भी योजना को व्यावहारिक रूप नहीं दिया जा सका, क्योंकि देश गुलाम था और विदेशी सरकार देश के किसी भी विकास कार्यक्रम में रूचि नहीं रखती थी।

2. स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् आर्थिक आयोजन : स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत सरकार ने सन् 195 में पंडित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक योजना आयोग की स्थापना की। इस योजना आयोग का कार्यकाल पांच वर्ष निर्धारित किया गया। देश में पहली पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल, 1951 से प्रारंभ हुई। इस प्रकार भारत में आर्थिक आयोजन के युग का वास्तविक प्रारंभ 1 अप्रैल, 1951 से हुआ। पंडित नेहरू ने 8 दिसंबर, 1952 को लोकसभा में प्रथम पंचवर्षीय योजना का अंतिम प्रारूप प्रस्तुत किया था। अब तक भारत में 1 पंचवर्षीय योजनाएं और तीन वार्षिक योजनाएं लागू हो चुकी हैं।

भारत में योजनाओं की स्थिति इस प्रकार रही :

1. पहली पंचवर्षीय योजना
2. दूसरी पंचवर्षीय योजना
3. तीसरी पंचवर्षीय योजना

यह देश का दुर्भाग्य था कि तीसरी योजनावधि के दौरान दो बार पड़ोसी देशों ने भारत पर हमला किया। सन 1962 में चीन ने तथा सन 1965 में पाकिस्तान ने। इन आक्रमणों के कारण बहुत-सी धनराशि विकास कार्यक्रमों से हटाकर रक्षात्मक कार्यों पर खर्च करने के लिए बाध्य होना पड़ा। तभी अमेरिकी सहायता भी बंद हो गई। साथ ही घरेलू परिस्थितियां भी अनुकूल न रहीं। 1965-66 में देश में भयंकर सूखा पड़ा और अकाल जैसी स्थिति पैदा हो गई। कृषि उत्पादन में कमी के कारण औद्योगिक उत्पादन में गिरावट आ गई। कीमतें तेजी से बढ़ने लगीं। ऐसी स्थिति में हमें योजना कार्यक्रम को कुछ समय के लिए स्थगित करना पड़ा। लेकिन यह परिवर्तन केवल तीन वर्ष के लिए ही था। अत: तीसरी योजना की समाप्ति पर तीन वर्षों (1966-67, 1967-68, 1968-69) के लिए चौथी योजना स्थगित रही। इन तीन वर्षों में देश की अर्थव्यवस्था को वार्षिक योजनाओं के आधार पर संचालित किया गया। इस अवधि को योजना अवकाश कहा जाता है।

4. तीन एकवर्षीय योजनाएं
5. चौथी पंचवर्षीय योजना

6. पांचवीं पंचवर्षीय योजना : भारत की पांचवीं योजना 1 अप्रैल, 1974 से आरंभ की गई और यह 31 मार्च 1979 तक लागू रहनी थी, लेकिन सन 1977 में जनता सरकार के सत्ता में आने पर इस योजना को एक वर्ष पूर्व ही समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार पांचवीं पंचवर्षीय योजना चार वर्षों की रही।

7. छठी पंचवर्षीय योजना : जनता सरकार ने आवर्ती योजना प्रणाली पर आधारित 1978-83 के लिए छठी पंचवर्षीय योजना की घोषणा की, लेकिन सन 198 में कांग्रेस की सरकार पुन: सत्ता में आ गई। इसने छठी आवर्ती योजना को समाप्त कर दिया।

8. नई छठी पंचवर्षीय योजना : इंदिरा गांधी की सरकार ने 198-85 के लिए नई छठी पंचवर्षीय योजना लागू की।

9. सातवीं पंचवर्षीय परियोजना : यह योजना नियमित समयानुसार चली।

10. वार्षिक योजनाएं : सन 199 में सातवीं योजना के पूरा होने पर योजना आयोग ने आठवीं योजना को उसके निर्धारित समय पर शुरू करने का निर्णय लिया। किन्तु अचानक देश में राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न हो गई। इस कारण आठवीं योजना को 1 अप्रैल, 1992 से ही लागू किया जा सका और इससे पूर्व के दो वर्षों को वार्षिक योजनाओं के रूप में लिया गया।

11. आठवीं पंचवर्षीय योजना : यह योजना 1 अप्रैल, 1992 से प्रारंभ होकर मार्च 1997 को समाप्त हुई।

12. नौवीं पंचवर्षीय योजना : भारत की नौवीं पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल, 1992 को आरंभ हुई तथा 31 मार्च, 22 को समाप्त हो गई।

13. दसवीं पंचवर्षीय योजना : यह योजना 1 अप्रैल 22 से 31 मार्च, 27 तक लागू रही।

संक्षेप में इस प्रकार भारत में आर्थिक आयोजन की एक लंबी कहानी रही है। भारत में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं को निम्नलिखित सारणी द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैं :

योजना	**योजनाओं की अवधि**
पहली	1951–56
दूसरी	1956–61
तीसरी	1961–66
तीन एकवर्षीय	1966–69
चौथी	1969–74
पांचवीं	1974–78
छठी	198–85
सातवीं	1985–9
दो वार्षिक योजनाएं	199–92
आठवीं	1992–97
नौवीं	1997–2 2
दसवीं	2 2 – 7
ग्यारहवीं	2 7 – .....

४.२.४ भारत में नियोजन प्रक्रिया :

सबसे पहले सामाजिक एवं राजनीतिक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर योजना आयोग द्वारा एक दीर्घकालीन योजना बनाई जाती है जो 15–2 वर्षीय होती है। इस दीर्घकालीन योजना की पृष्ठभूमि में पंचवर्षीय योजनाएं बनाई जाती हैं। इन पंचवर्षीय योजनाओं में विभिन्न मॉडलों का प्रयोग किया जाता है। द्वितीय एवं तृतीय योजना में महालोनोबिस मॉडल का प्रयोग किया गया था। इन पंचवर्षीय योजनाओं के साथ–साथ एक वर्षीय योजनाओं का भी निर्माण किया जाता है। योजना बनाने का कार्य कार्यकारी दल एवं उपदल करते हैं जिससे कि योजना अधिक व्यावहारिक हो सके। अनेक सलाहकार समितियां व परामर्शदात्री समितियां योजना आयोग को योजना–निर्माण में सहायता प्रदान करती हैं। योजना आयोग को उसके कार्य में सहायता रिजर्व बैंक के आर्थिक विभाग सांख्यिकी विभाग, भारतीय

लोक प्रशासन संस्थान, आर्थिक विकास आदि के द्वारा दी जाती है। योजना बनाते समय योजना आयोग निजी क्षेत्र से भी विचार-विमर्श करता है।

इस प्रकार पंचवर्षीय योजनाएं छह अवस्थाओं से होकर गुजरती हैं :

1. सामान्य पहुंच : योजना आयोग द्वारा योजना आरंभ करने से तीन वर्ष पूर्व सामान्य पहुंच का कार्यक्रम आरंभ कर दिया जाता है जिसमें विस्तृत सुझाव पेश किए जाते हैं जिन पर केंद्रीय मंत्रिमंडल एवं राष्ट्रीय विकास परिषद विचार करती है।

2. अध्ययन दलों को संगठित करना : यह दूसरी अवस्था है। इसमें पहली अवस्था में दिए गए सुझावों की स्वीकृति पर भौतिक लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं। इन लक्ष्यों के आधार पर ड्राफ्ट मेमोरेण्डम बनाया जाता है। जिस पर विचार करने के लिए विभिन्न प्रकार के अध्ययन दलों को संगठित किया जाता है।

3. रूपरेखा तैयार करना : जब इन अध्ययन दलों की रिपोर्ट आ जाती है तो फिर योजना की रूपरेखा बनाई जाती है जिसको विभिन्न मंत्रालयों को भेजा जाता है तथा जिस पर मंत्रीमंडल भी विचार करता है। इसके बाद दल की रिपोर्ट और योजना की रूपरेखा पर राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा विचार-विमर्श किया जाता है जिसकी स्वीकृति मिलने पर जनता के लिए प्रसारित कर दिया है। जिससे कि जनता भी इस पर अपने विचार प्रकट कर सके।

4. विस्तृत विचार-विमर्श : इस अवस्था में राज्यों से विचार-विमर्श किया जाता है, जिस पर अंतिम निर्णय राज्य के मुख्यमंत्री सलाह पर लिया जाता है जिसमें योजना की प्रमुख बातों का उल्लेख होता है। अब यह प्रारूप केंद्रीय मंत्रीमंडल व राष्ट्रीय विकास परिषद को उनकी स्वीकृति हेतु सौंप दिया जाता है।

5. नवीन रूपरेखा : केंद्र, राज्य, जनता तथा अन्य सामाजिक संगठनों व निजी व्यक्तियों के सुझावों आदि को ध्यान में रखकर एक नवीन कार्यक्रम बनाया जाता है जिसमें योजना की प्रमुख बातों का उल्लेख होता है। अब यह प्रारूप केंद्रीय मंत्रीमंडल व राष्ट्रीय विकास परिषद को उनकी स्वीकृति हेतु सौंप दिया जाता है।

6. अंतिम प्रतिवेदन : अब योजना आयोग राष्ट्रीय विकास परिषद की रिपोर्ट के आधार पर योजना संबंधी अंतिम प्रतिवेदन तैयार करता है जिसको मंत्रीमंडल व परिषद की स्वीकृति पर प्रकाशित कर दिया जाता है और फिर संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है जिस पर संसद विचार-विमर्श करती है और उस योजना को स्वीकार कर लेती है। संसद की स्वीकृति पर यह प्रारूप योजना का रूप ले लेता है।

४.२.५ आर्थिक नियोजन के मुख्य उद्देश्य :

1. राष्ट्रीय आय में वृद्धि करना : आर्थिक नियोजन का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय आय में वृद्धि करना है। प्रथम योजना के प्रारूप में कहा गया था, 'योजना का उद्देश्य युद्ध और विभाजन के फलस्वरूप उत्पन्न आर्थिक संतुलन को ठीक करना तथा एक सर्वांगीण एवं संतुलन विकास की पद्धति आरंभ करना है जिसके परिणामस्वरूप देश की राष्ट्रीय आय बढ़े और लोगों के रहन-सहन के स्तर में शीघ्र वृद्धि हो सके।'

इसलिए राष्ट्रीय आय के निर्धारित लक्ष्यों में निरंतर वृद्धि करने का प्रयास किया गया। जैसे पहली पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय में वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य 2.2 प्रतिशत था, परन्तु इसमें 3.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। नौवीं पंचवर्षीय योजना में 6.5 प्रतिशत का लक्ष्य निर्धारित किया गया, परन्तु केवल 5.4 प्रतिशत ही प्राप्ति हुई। दसवीं पंचवर्षीय योजना में 8 प्रतिशत का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

योजनाओं में राष्ट्रीय आय में औसत वार्षिक वृद्धि दर (लक्ष्य और प्राप्तियां, प्रतिशत में)

योजना	लक्ष्य	प्राप्तियां
पहली	2.2	3.6
दूसरी	4.5	4.1
तीसरी	5	2.5
चौथी	5.5	3.3
पांचवीं	5.5	5 .`
छठी	5.2	5.3
सातवीं	5 .`	5.9
आठवीं	5.6	6.7
नौवीं	6.5	5.4
दसवीं	8	--

इस प्रकार पहली पंचवर्षीय योजना से दसवीं योजना तक राष्ट्रीय आय में वृद्धि के लक्ष्यों में 3 गुणा अधिक वृद्धि हुई।

2. रोजगार अवसरों में वृद्धि : सभी को रोजगार प्रदान करना आर्थिक आयोजन का दूसरा प्रमुख उद्देश्य है। इसलिए प्रत्येक योजना में रोजगार के अवसरों को बढ़ाने तथा अर्द्ध-बेरोजगारी को दूर करने के कार्यक्रमों पर विशेष ध्यान दिया गया है। कृषि, लघु उद्योगों तथा अन्य श्रम-प्रधान परियोजनाओं को प्राथमिकता देकर इस उद्देश्य की प्रति के प्रयत्न किए जा रहे हैं, लेकिन इस ओर विशेष ध्यान पांचवीं योजना से ही दिया जाने लगा है। दसवीं पंचवर्षीय योजना में 5 लाख लोगों को रोजगार देने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

3. समाजवादी ढंग के समाज की स्थापना : पंचवर्षीय योजनाओं का एक अन्य मुख्य उद्देश्य सामाजिक न्याय की स्थापना करना रहा है। दूसरी योजना का मुख्य उद्देश्य भी यही था-समाजवादी ढंग से समाज की स्थापना करना। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विभिन्न योजनाओं में निम्न बातों की ओर ध्यान दिया गया।

क. समाज के कमजोर और पिछड़े वर्ग की स्थिति में सुधार लाना।

ख. सामाजिक सेवाओं (शिक्षा, चिकित्सा आदि) का विस्तार करना।

ग. देश में अनिवार्यताओं के उत्पादन में वृद्धि करना और उनके उचित वितरण की व्यवस्था करना।

4. निर्धनता दूर करना : पांचवीं योजना का प्रमुख लक्ष्य 'गरीबी हटाओ' था। इसलिए देश में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम पर जोर दिया जा रहा है ताकि गरीब लोगों की आय में वृद्धि हो और उनकी न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके।

5. आत्मनिर्भरता की प्राप्ति : आर्थिक आयोजन का एक अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य है - आत्मनिर्भरता। तीसरी योजना के बाद में इस उद्देश्य पर विशेष बल दिया गया। आत्म-निर्भरता का अभिप्राय यह है कि हम घरेलू मांग की पूर्ति घरेलू उत्पादन में वृद्धि द्वारा करें। यदि हमें आयात करना भी है तो इसका भुगतान निर्यात द्वारा करें। छठी योजना में इस लक्ष्य की प्राप्ति पर अत्यधिक बल दिया गया और कहा गया कि छठी योजना के अंत तक शुद्ध विदेशी सहायता को शून्य कर दिया जाएगा। भारत केवल आर्थिक आत्म-निर्भरता की ही बात नहीं करता, अपितु तकनीकी आत्मनिर्भरता को प्राप्त करने का भी प्रयत्न कर रहा है।

6. विभिन्न क्षेत्रों का आधुनिकीकरण : भारत की आर्थिक योजनाओं का एक अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य

अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों, विशेष रूप से कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्रों का आधुनिकीकरण करना है। चौथी योजना ने कृषि क्षेत्र के आधुनिकीकरण पर अत्यधिक बल दिया और नई कृषि नीति के रूप में कृषि के आधुनिकीकरण की एक योजना शुरू की। छठी योजना में आर्थिक क्रियाओं के आधुनिकीकरण पर बल दिया गया जिसका उद्देश्य देश में अनेक संरचनात्मक और संस्थागत परिवर्तन लाना था।

7. आर्थिक स्थिरता : आर्थिक विकास की गति को बनाए रखने के लिए अर्थव्यवस्था में आर्थिक स्थिरता बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है। अत: हमारी योजनाओं का एक उद्देश्य आर्थिक स्थिरता प्राप्त करना भी रहा है। आर्थिक स्थिरता का अर्थ है – देश में तेजी-मंदी की स्थिति उत्पन्न न होने देना। कीमतों में उतार-चढ़ाव अर्थव्यवस्था को भारी क्षति पहुंचाते हैं। आर्थिक विकास के लिए कीमतों में मामूली वृद्धि तो आवश्यक है, लेकिन अत्यधिक वृद्धि नहीं होनी चाहिए।

8. विज्ञान और तकनीकी विकास : योजनाकाल में विज्ञान और तकनीकी विकास पर विशेष ध्यान दिया गया है ताकि किसी भी प्रकार के उद्योगों को स्वतंत्रता पूर्वक स्थापित किया जा सके। इसके लिए अनुसंधान केंद्रों की स्थापना का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। विज्ञान की प्रगति के लिए 'जय विज्ञान' का नारा दिया गया है।

9. आर्थिक असमानता में कमी : योजना का उद्देश्य राष्ट्रीय आय में वृद्धि करना ही नहीं, अपितु वितरण में समानता लाना भी है। उसके लिए योजनाओं में धनी वर्ग पर प्रत्यक्ष कर अधिक लगाए गए हैं। ये कर प्रगतिशील दर से लगाए जाते हैं ताकि धनी अधिक धनी तथा निर्धन अधिक निर्धन न बन सकें तथा आर्थिक समानता उत्पन्न की जा सके।

10. क्षेत्रीय समानता : भारत में विभिन्न क्षेत्रो में आर्थिक दृष्टि से समानता नहीं है। कुछ राज्य अधिक विकसित हैं, जबकि कुछ राज्य कम विकसित हैं।

अधिक विकसित राज्य : पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, गुजरात इत्यादि अधिक विकसित राज्य हैं।

कम विकसित राज्य : बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश बहुत अधिक पिछड़े हुए राज्य हैं। इन्हें BIMARU राज्य भी कहा जाता है। योजनाओं का उद्देश्य पिछड़े हुए राज्यों का तीव्र विकास करना है ताकि क्षेत्रीय समानता लाई जा सके।

11. सर्वांगीण विकास : योजनाओं का उद्देश्य प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक या सेवा क्षेत्र का विकास करना है। इन तीनों क्षेत्रों के विकास के द्वारा राष्ट्र का सर्वांगीण विकास किया जा सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि विभिन्न योजनाओं में भिन्न-भिन्न क्षेत्रों को महत्व दिया गया, परन्तु फिर भी मुख्य उद्देश्य अर्थव्यवस्था का सर्वांगीण विकास करना है।

12. जनसंख्या पर नियंत्रण : योजनाओं का उद्देश्य जनसंख्या पर नियंत्रण करना है। जनसंख्या नियंत्रण द्वारा ही प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि दर नियंत्रण करने का विशेष लक्ष्य निर्धारित किया गया। नौवीं पंचवर्षीय योजना में 245 तक जनसंख्या को नियंत्रित करने के लिए 'स्थिर जनसंख्या' का लक्ष्य रखा गया। इस उद्देश्य के दसवीं पंचवर्षीय योजना में परिवार कल्याण कार्यक्रमों की ओर विशेष ध्यान देने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारत में आर्थिक आयोजन के ये सभी उद्देश्य एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। प्रत्येक उद्देश्य अन्य उद्देश्य की पूर्ति में सहायता करता है। ये सभी उद्देश्य मिलकर एक सामान्य व्यक्ति के जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने में सहायक होते हैं।

४.२.६ भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्य :

भारत में विभिन्न योजनाओं के भिन्न-भिन्न उद्देश्य रहे हैं जो निम्नलिखित हैं :

1. पहली पंचवर्षीय योजना : इस योजना का मूल उद्देश्य लोगों के जीवन-स्तर को ऊंचा उठाना था। इस मूल उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित उद्देश्य थे:

क. दूसरे विश्व युद्ध तथा विभाजन के कारण उत्पन्न समस्याओं को दूर करना।

ख. अर्थव्यवस्था का संतुलित आर्थिक विकास करना।

ग. देश की खाद्य समस्या को सुलझाना।

घ. बढ़ती हुई कीमतों को रोकना।

ङ. सामाजिक तथा आर्थिक न्याय प्रदान करना।

च. देश में उत्पादन तथा यातायात के साधनों को बढ़ाना।

छ. ऐसे विकास कार्यक्रमों को निर्मित करना जिनसे आगामी वर्षों में विशाल विकास योजनाओं की नींव डाली जा सके। पहली योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में कुल खर्च 196 करोड़ रुपये किया गया तथा निजी क्षेत्र में 18 करोड़ रुपये का व्यय किया गया। यह योजना कृषि-प्रधान योजना थी। इसमें कृषि तथा सिंचाई विकास पर कुल व्यय का 37 प्रतिशत धन व्यय किया गया।

प्रथम योजना में कुल खर्च का 1 प्रतिशत साधनों से तथा 9 प्रतिशत आंतरिक साधनों से प्राप्त हुआ था। घाटे की वित्त व्यवस्था 333 करोड़ रुपये की गई, जबकि लक्ष्य 29 करोड़ रुपये था। यह योजना अपने अधिकतर लक्ष्य प्राप्त करने में सफल रही।

राष्ट्रीय आय बढ़ाने का लक्ष्य 11 प्रतिशत था जबकि वास्तव में राष्ट्रीय आय 18 प्रतिशत रही। अनाज उत्पादन का लक्ष्य 616 लाख टन करना था जबकि वास्तव में यह 669 लाख टन हुआ। औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि 4 प्रतिशत रही। इस योजना में कीमतों में 17 प्रतिशत की कमी हुई।

2. दूसरी पंचवर्षीय योजना : इस योजना का प्रमुख उद्देश्य समाजवादी समाज की स्थपना करना था। यह योजना महालनोबिस मॉडल पर आधारित थी। इस योजना के विस्तृत उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अन्य उद्देश्य इस प्रकार रखे गए थे :

क. राष्ट्रीय आय में 5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि करना ताकि जन-साधारण का जीवन-स्तर ऊंचा उठ सके।

ख. देश के भारी एवं आधारभूत उद्योगों का विकास करना।

ग. रोजगार अवसरों को बढ़ाना ताकि बेरोजगारी की समस्या का हल हो सके।

घ. राष्ट्रीय आय के असमान बंटवारे और आर्थिक शक्ति के केंद्रीयकरण को कम करना।

इस योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में 48 करोड़ रुपये खर्च करने का लक्ष्य था, परंतु वास्तव में कुल व्यय 4672 करोड़ रुपये हुआ। निजी क्षेत्र में 31 करोड़ रुपये खर्च किया गया। कुल साधनों का 22.5 प्रतिशत विदेशी साधनों से प्राप्त किया गया। इस योजना में उद्योगों पर कुल सार्वजनिक व्यय का 24 प्रतिशत खर्च हुआ। इस योजना में राष्ट्रीय आय में 2 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि लक्ष्य 25 प्रतिशत वृद्धि का था।

इस योजना में अनाज का उत्पादन 76 लाख टन हुआ जबकि लक्ष्य 818 लाख टन था। औद्योगिक उत्पादन में 33.1 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

3. तीसरी पंचवर्षीय योजना : इस योजना का मुख्य उद्देश्य दूसरी योजना के दौरान खोए हुए संतुलन को दोबारा प्राप्त कर आत्मनिर्भर विकास करना था। इस मूल उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अन्य निर्धारित उद्देश्य निम्नलिखित थे :

क. राष्ट्रीय आय में 5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि करना और इस प्रकार की परियोजना में निवेश करना ताकि भविष्य में भी यह विकास दर कायम रह सके।

ख. अनाज में आत्म-निर्भरता प्राप्त करना तथा कृषि उत्पादन में इतनी वृद्धि करना कि उद्योगों और निर्यात की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके।

ग. मूल उद्योगों रसायन, इस्पात, बिजली तथा मशीन-निर्माण का इतना विस्तार करना कि 1 वर्षों के अंदर देश की औद्योगिकरण की आवश्यकता अन्य देशों से आयात के बिना पूरी हो सके।

घ. देश के मानवीय संसाधनों का पूरा प्रयोग करना तथा रोजगार अवसरों को बढ़ाना।

ङ. आय और संपत्ति के वितरण में विषमताएं कम करना तथा आर्थिक शक्ति के वितरण में समानता लाना।

इस योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में 8577 करोड़ रुपये तथा निजी क्षेत्र में 41 करोड़ रुपये व्यय किए गए। इसमें विदेशी सहायता 28 प्रतिशत रही। कुल सार्वजनिक व्यय का 24 प्रतिशत यातायात तथा संचार पर व्यय किया गया। उद्योगों पर 23 प्रतिशत तथा कृषि व सिंचाई पर 21 प्रतिशत व्यय किया गया।

इस योजना के अधिकतर लक्ष्य पूरे नहीं हो पाए। विकास की औसतन वार्षिक दर 4 प्रतिशत रही जबकि लक्ष्य 4 प्रतिशत का था। कृषि उत्पादन का लक्ष्य 15 लाख टन था, परन्तु उत्पादन केवल 723 लाख टन हुआ। औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि का लक्ष्य 11 प्रतिशत प्रति वर्ष रखा गया था, परंतु वास्तविक वृद्धि 9 प्रतिशत हुई।

4. तीन एक-वर्षीय योजनाएं : तीन वार्षिक योजनाओं के कोई ठोस उद्देश्य नहीं थे। 1968-69 की वार्षिक योजना में तो लक्ष्यों को भी प्रत्याशाएं कहा गया था। श्री नरोत्तमशाह ने इस संदर्भ में कहा, 'लक्ष्यों को तिलांजलि दी गई है।' इन तीन वार्षिक योजनाओं में पुरानी योजनाओं, परियोजनाओं अथवा कार्यक्रमों को ही दोहराया गया तथा उन्हें ही जारी रखा गया। 1968-69 की वार्षिक योजना कृषि विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण रही। यह वर्ष 'हरित क्रांति' के नाम से याद रखा जाता है।

इन योजनाओं में सार्वजनिक क्षेत्र में 6625 करोड़ रुपये खर्च किए गए। विदेशी सहायता 36 प्रतिशत रही। कृषि तथा सिंचाई के विास पर 24 प्रतिशत धन व्यय किया गया।

5. चौथी पंचवर्षीय योजना : इस योजना का मुख्य उद्देश्य 'स्थिरता के साथ विकास' था। योजना से पूर्व के वर्षों में जो अनुभव हुआ, उसे स्थिर बनाए रखने की आवश्यकता महसूस की गई तथा देश में विकास की प्रक्रिया को तेज करने और लोगों के जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने के उद्देश्य दोहराए गए। यह भी अनुभव किया गया कि विदेशी सहायता के बल पर स्वस्थ विकास नहीं हो सकता, अत: योजना के अंत तक विदेशी सहायता आधी करने का उद्देश्य था। योजना के अन्य उद्देश्य निम्नलिखित थे :

क. राष्ट्रीय आय में 5.5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि करना।

ख. आवश्यक वस्तुओं तथा अनाज की कीमतों में स्थिरता लाना।

ग. जनसंख्या वृद्धि को रोकने तथा जीवन-स्तर में सुधार लाने के लिए बड़े पैमाने पर परिवार नियोजन कार्यक्रम लागू करना।

घ. कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन में आत्म-निर्भरता प्राप्त करना।

ङ. आय तथा धन के असमान वितरण को कम करना।

च. पिछड़े क्षेत्र के विकास पर बल देना।

छ. बेरोजगारी जैसी गंभीर समस्या को हल करना।

ज. कृषि क्षेत्र में 5 प्रतिशत, उद्योगों में 9 प्रतिशत और निर्यात में 7 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि करना।

झ. 197-71 के बाद अनाज को रियायती शर्तों पर आयात नहीं किया जाएगा।

ञ. सामाजिक सेवाओं का विस्तार करना।

चौथी योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में 15,779 करोड़ रुपये तथा निजी क्षेत्र में 898 करोड़ रुपये खर्च किए गए। इसमें विदेशी सहायता केवल 12.8 प्रतिशत रही। कृषि तथा सिंचाई पर 24 प्रतिशत यातायात तथा संचार पर 2 प्रतिशत और उद्योगों पर 19 प्रतिशत धन व्यय किया गया।

इस योजना के भी अधिकतर लक्ष्य पूरे नहीं हुए।

कृषि क्षेत्र में अनाज उत्पादन का लक्ष्य 129 लाख टन था, परन्तु वास्तव में यह केवल 114 लाख टन हुआ। औद्योगिक उत्पादन की विकास दर 7.7 प्रतिशत रखी गई, परंतु वास्तव में यह 3.7 प्रतिशत रही।

6. पांचवीं पंचवर्षीय योजना : पांचवीं योजना के दो मुख्य उद्देश्य थे - गरीबी हटाना तथा आत्म-निर्भरता प्राप्त करना। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अन्य निर्धारित उद्देश्य निम्न थे :

क. राष्ट्रीय आय में 4.37 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि करना।

ख. रोजगार आय में 4.37 प्रतिशत वृद्धि करना।

ग. कृष्णि तथा बुनियादी उद्योगों के विकास पर बल देना।

घ. मुद्रा-स्फीति रोकने के लिए प्रभावी कदम उठाना।

ङ. निर्यात वृद्धि तथा आयात प्रतिस्थापन पर जोर देना।

च. वितरण की सार्वजनिक प्रणाली लागू करना ताकि गरीब लोगों को उचित मूल्यों पर वस्तुएं प्राप्त हो सकें।

छ. अनावश्यक उपभोग पर प्रतिबंध लगाना।

ज. विदेशी सहायता न्यूनतम करना।

झ. विनियोग पर अधिकतम लाभ प्राप्त करने की कोशिश करना।

पांचवीं योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में 39426 करोड़ रुपये व्यय किए गए तथा निजी क्षेत्र में 2748 करोड़ रुपये का व्यय हुआ। कुल सार्वजनिक व्यय का 23 प्रतिशत उद्योगों पर, 22 प्रतिशत कृषि व सिंचाई पर तथा 17 प्रतिशत यातायात और संचार पर व्यय किया गया। विदेशी सहायता 12.8 प्रतिशत रही।

7. छठी पंचवर्षीय योजना : छठी योजना के दो मुख्य लक्ष्य थे - बेरोजगारी और अर्द्ध बेरोजगारी को दूर करना तथा जनसंख्या के निर्धन वर्ग के जीवन-स्तर में प्रशंसनीय वृद्धि करना। मोटे तौर पर इस योजना में गरीबी और बेरोजगारी पर सीधा आक्रमण किया गया। छठी योजना के प्रारूप में कहा गया थ, 'इस योजना का उद्देश्य एक ऐसे आर्थिक और सामाजिक ढांचे का निर्माण करना है जो समाजवाद, धर्म निरपेक्षता और आत्म-निर्भरता के सिद्धांत पर आधारित हो।' इसके अन्य उद्देश्य निम्न थे :

क. विकास दर को बढ़ाना।

ख. गरीबी तथा बेरोजगारी में कमी लाना।

ग. आधुनिकीकरण को बढ़ावा देना।

घ. ऊर्जा के देशी संसाधनों को बढ़ाना।

ङ. आर्थिक विषमताएं दूर करना।

च. क्षेत्रीय असमानताएं दूर करना।

छ. जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण पाने के लिए लोगों को छोटे परिवार की धारणा स्वेच्छा से अपनाने के लिए प्रेरित करना।

ज. लोगों के जीवन-स्तर में सुधार लाने के लिए अधिक से अधिक लोगों को न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अंतर्गत लाना।

झ. आर्थिक विकास के अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन उद्देश्यों में समन्वय लाना।

छठी योजना में 11821 करोड़ रुपये सार्वजनिक क्षेत्र में तथा 7471 करोड़ रुपये निजी क्षेत्र में खर्च किए गए। इस योजना में राष्ट्रीय आय की विकास दर का लक्ष्य 5.2 प्रतिशत था तथा प्रति व्यक्ति आय की विकास दर 3.3 प्रतिशत थी। वास्तविक विकास की दर 5.3 प्रतिशत रही।

कृषि विकास दर का लक्ष्य 4 प्रतिशत था, परन्तु वास्तविक विकास की दर 4.3 प्रतिशत रही। अनाज उत्पादन का लक्ष्य 154 लाख टन था परन्तु उत्पादन 147 लाख टन हुआ।

इस योजना के लगभग सभी लक्ष्य पूरे हुए पर औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन लक्ष्य से कम हुआ। औद्योगिक उत्पादन की विकास दर 7 प्रतिशत रखी गई थी, पर वास्तविक विकास दर 5.5 प्रतिशत रही।

8. सातवीं पंचवर्षीय योजना : सातवीं पंचवर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्यों को तीन शब्दों में सारबद्ध किया गया है - 'रोटी, काम और उत्पादन।' स्पष्ट रूप से योजना के मुख्य उद्देश्य हैं :

पहला, विकास : अन्न का उत्पादन बढ़ाना।

दूसरा, समानता और समाजिक न्याय : रोजगार के अवसरों का निर्माण।

तीसरा, आत्मनिर्भरता तथा बेहतर कुशलता एवं उत्पादकता : उपलब्ध उत्पादन-क्षमता का पूर्ण प्रयोग करना।

सातवीं योजना सामाजिक न्याय स्थापित करने, गरीबी तथा बेरोजगारी की समस्या दूर करने का इरादा रखती थी। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कुछ अन्य उद्देश्य इस प्रकार निर्धारित किए गए :

क. इस योजना में विकास दर 5 प्रतिशत वार्षिक रखी गई।

ख. विज्ञान और तकनीकी को बढ़ावा दिया गया।

ग. कृषि विकास की दर 4 प्रतिशत और उद्योगों के विकास की दर 8 प्रतिशत रखी गई।

घ. लोगों को पौष्टिक आहार देने के लिए खाद्यान्नों की उत्पादन लागत कम करने का उद्देश्य था।

ङ. निर्धनता रेखा से नीचे जीवन बिताने वाले लोगों की प्रतिशत संख्या कम करके 25.8 प्रतिशत करने का लक्ष्य था।

च. पूर्वी पिछड़े क्षेत्रों में हरित क्रांति लाना।

छ. रोजगार अवसरों को श्रम-शक्ति वृद्धि से अधिक बढ़ाना।

ज. कीमत वृद्धि पर नियंत्रण।

झ. लोगों के भौतिक कल्याण और वातावरण में सुधार लाने के प्रयत्न करना।

इस योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में 18 करोड़ रुपये व्यय किए जाने थे, लेकिन वास्तव में 221436 करोड़

रुपये व्यय किए गए। ऊर्जा के विकास को उच्चतम प्राथमिकता (3 प्रतिशत) दी गई। विदेशी सहायता 1 प्रतिशत रही।

9. आठवीं पंचवर्षीय योजना : आठवीं पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल, 1992 से आरंभ की गई और 1997 तक चली। इस योजना में विकास दर का लक्ष्य 5.6 प्रतिशत रखा गया था। इसमें कुल व्यय 798 करोड़ रुपये निर्धारित किया गया जिसमें से सार्वजनिक क्षेत्र में 434 करोड़ रुपये खर्च किए जाने थे, जबकि वास्तविक व्यय 474121 करोड़ रुपये रहा।

आठवीं योजना के मुख्य उद्देश्य थे :

क. पर्याप्त रोजगार सुविधाएं उपलब्ध कराना ताकि सन् 2 तक पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त की जा सके।

ख. जन सहयोग की सहायता से जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रण में लाना।

ग. 15 से 35 वर्ष की आयु तक के लोगों में से निरक्षरता को पूर्णतया समाप्त करना तथा प्राथमिक शिक्षा सबके लिए उपलब्ध करना।

घ. सभी गांवों तथा पूर्ण जनसंख्या के लिए शुद्ध पीने का पानी तथा स्वास्थ्य सुविधाओं का प्रबंध करना।

ङ. कृषि क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए तथा निर्यात अतिरेक प्राप्त करने हेतु, कृषि का विकास तथा विकेंद्रीयकरण करना।

च. विकास प्रक्रिया की स्थिरता के लिए ऊर्जा, यातायात तथा सिंचाई व्यवस्था को विकसित करना।

10. नौवीं पंचवर्षीय योजना : देश में 1 अप्रैल, 1997 से नौवीं पंचवर्षीय योजना प्रारंभ हुई जिसका कार्यकाल 31 मार्च, 22 को समाप्त हो गया। इस योजना में कुल निवेश 22,5, करोड़ रुपये निर्धारित किया गया जिसमें से सार्वजनिक क्षेत्र में 8,592 करोड़ रुपये तथा निजी क्षेत्र में 13458 करोड़ रुपये खर्च किए जाने थे। इस योजना का औसत वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य 6.5 प्रतिशत रखा गया।

उद्देश्य – इस योजना के निम्न उद्देश्य थे :

क. पर्याप्त रोजगार उत्पन्न करने में तथा निर्धारित उन्मूलन की दृष्टि से कृषि एवं ग्रामीण विकास को प्राथमिकता देना।

ख. मूल्यों में स्थिरता बनाए रखते हुए आर्थिक विकास की गति को तीव्र करना।

ग. सभी के लिए विशेषकर समाज के कमजोर वर्गों के लिए भोजन तथा पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करना।

घ. जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करना।

ङ. मूलभूत न्यूनतम सेवाएं, जैसे स्वच्छ पेयजल, प्राथमिक स्वास्थ्य देखरेख सुविधा, सार्वयौगिक प्राथमिक शिक्षा एवं आवास प्रदान करना।

च. जनता के सहयोग से विकास प्रक्रिया की पर्यावरण क्षमता को सुनिश्चित करना।

छ. सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन एवं विकास के एजेंट के रूप में कमजोर वर्गों–अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य पिछड़ी जातियों एवं अल्पसंख्यकों को शक्तियां प्रदान करना।

ज. पंचायती राज संस्थाओं, सहकारिताओं तथा स्वयंसेवी वर्गों, जैसे लोक भागीदारी वाली संस्थाओं का विकास करना।

झ. आत्म–निर्भरता के लक्ष्यों को प्राप्त करने के प्रयासों को सुदृढ करना।

11. दसवीं पंचवर्षीय योजना : यह योजना 1 अप्रैल, 22 से 31 मार्च 27 तक चली।

मुख्य उद्देश्य :

क. आर्थिक विकास दर : नौवीं योजना में आर्थिक विकास की दर का लक्ष्य 6.5 प्रतिशत था। यह प्राप्त न हो सका, इसलिए दसवीं योजना में यह 8 प्रतिशत निर्धारित किया गया।

ख. निर्यात में वृद्धि दर : दसवीं योजना की नई आयात-निर्यात नीति घोषित की गई। इमसें निर्यात वृद्धि का लक्ष्य 11.9 प्रतिशत निर्धारित किया गया। इसे प्राप्त करने के लिए निर्यात पर मात्रात्मक प्रतिबंध हटा दिए गए हैं।

ग. विश्व व्यापार में हिस्सा : भारत का विश्व व्यापार में हिस्सा केवल `.6 प्रतिशत है। दसवीं योजना में इसे बढ़ाकर 1 प्रतिशत करने का लक्ष्य रखा गया।

घ. औद्योगिक उत्पादन : दसवीं योजना में औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि के लिए नए उद्योगों की स्थापना पर बिना जांच के बैंक गारंटी के आधार पर लाइसेंस प्रदान करने की व्यवस्था की गई।

ङ. कुटीर तथा लघु उद्योग : दसवीं योजना में कुटीर उद्योग तथा हस्तशिल्प पर विशेष ध्यान दिया गया। कुटीर उद्योग क्षेत्र के निर्यात को बढ़ावा देने के लिए बाजार पहुंच प्रोत्साहन के अंतर्गत 5 करोड़ रुपये निर्धारित किए गए।

च. कृषि उत्पादन : इस योजना में कृषि उत्पादन में वृद्धि व अधिक निर्यात का लक्ष्य रखा गया। कृषि उत्पादकों के निर्यात पर परिवहन व्यवस्था देने की व्यवस्था की गई। जूट व प्याज को छोड़कर सभी कृषि योग्य बीजों के निर्यात पर लगी रोक समाप्त कर दी गई।

छ. निर्धनता में कमी : योजना के अंत तक निर्धनता अनुपात में 5 प्रतिशत कमी करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। सन 2012 तक 15 प्रतिशत कम करने का लक्ष्य रखा गया।

ज. रोजगार में वृद्धि : दसवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक अतिरिक्त श्रम शक्ति को उच्च स्तर का रोजगार उपलब्ध करवाने का लक्ष्य रखा गया।

झ. जनसंख्या वृद्धि में कमी : 2001 से 2011 तक एक दशक में जनसंख्या वृद्धि दर 16.2 प्रतिशत करने का लक्ष्य रखा गया।

ञ. शिक्षा : 2003 तक स्कूल में सभी बच्चों को दाखिल करने तथा योजना के अंत तक 5 वर्षों तक की स्कूली शिक्षा पूरी करवाने का लक्ष्य रखा गया अर्थात् प्राइमरी शिक्षा पूर्ण करवाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

ट. शिशु मृत्यु दर में कमी : दसवीं परियोजना के अंत तक शिशु मृत्यु दर कम करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। 2007 तक 1 जन्म लेने वाले बच्चों के पीछे शिशु मृत्यु दर को 45 तथा 2012 तक 28 करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

ठ. मातृ मृत्यु दर में कमी : योजना के अंत तक मातृ मृत्यु दर 2 प्रति हजार तक कम करने का लक्ष्य रखा गया।

ड. वन क्षेत्र में विस्तार : योजना के अंत तक जंगलों तथा पेड़ों के क्षेत्र में 25 प्रतिशत की वृद्धि की जाएगी।

ढ. पेयजल : सभी गांवों में पीने के पानी की सुविधाएं उपलब्ध करवाई जाएंगी।

ण. नदियों की सफाई : योजना के अंत तक सभी मुख्य प्रदूषित नदियों को साफ करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

8. योजना की रणनीति या व्यूह रचना : 'योजना की युक्ति या योजना की व्यूह रचना से अभिप्राय उन कार्यों तथा नीतियों से है जिनके द्वारा योजना के उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है।'

प्रत्येक योजना कुछ मुख्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए बनाई जाती है। योजना की युक्ति में वे सभी नीतियां और कार्य आते हैं जिनकी सहायता से किसी विशेष योजना के उद्देश्यों व लक्ष्यों को प्राप्त करने के प्रयत्न किए जाते

हैं।

प्रत्येक योजना की युक्ति अलग-अलग होती है, क्योंकि प्रत्येक योजना के उद्देश्य अलग-अलग होते हैं।

प्राय: युक्ति का निर्धारण करते समय निम्न तत्वों को ध्यान में रखा जाता है : योजना का उद्देश्य, राष्ट्रीय आय-स्तर, देश की सामाजिक स्थिति, राजनीतिक अवस्था, अंतरराष्ट्रीय हालात, प्राप्त संसाधनों की मात्रा इत्यादि।

भारतीय योजनाओं की व्यूह रचना के मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं :

1. व्यापक क्षेत्र : भारत की योजनाओं का क्षेत्र काफी व्यापक है। इनमें आर्थिक विकास के साथ-साथ संस्थागत परिवर्तन तथा सांस्कृतिक प्रगति के लिए भी कार्यक्रम शामिल किए गए हैं।

2. मिश्रित अर्थव्यवस्था : भारतीय योजनाओं में मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया गया है। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र को योजनाओं में निर्धारित प्राथमिकताओं के अनुसार कार्य करना होता है। इस क्षेत्र को सरकार के निर्देश के अनुसार भी कार्य करना पड़ता है।

3. सार्वजनिक क्षेत्र का अधिक महत्व : पंचवर्षीय योजनाओं में सार्वजनिक क्षेत्र के विकास को निजी क्षेत्र की तुलना में अधिक महत्व दिया गया है। इसके तीन मुख्य कारण हैं : 1. भारी तथा आधारभूत उद्योगों के विकास के लिए आवश्यक साधन निजी क्षेत्र के पास पर्याप्त मात्रा में नहीं हैं। 2. यातायात, सिंचाई, बिजली, पिछड़े क्षेत्रों के विकास आदि की योजनाओं में निजी क्षेत्र की कोई रुचि नहीं है। 3. बैंक, बीमा, सुरक्षा, उद्योग आदि महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर सार्वजनिक नियंत्रण योजनात्मक विकास के लिए आवश्यक है।

4. बचत तथा निवेश में वृद्धि : पंचवर्षीय योजनाओं की यह व्यूह रचना है कि आर्थिक विकास की दर को बढ़ाने के लिए बचत तथा निवेश की दर को बढ़ाना आवश्यक है। इसके फलस्वरूप पंजी-निर्माण की दर बढ़ेगी। पहली योजना के आरंभ में निवेश की दर 5 प्रतिशत थी। योजनाओं की व्यूह रचना सन 1964 तक निवेश की दर को बढ़ाकर 2 प्रतिशत करने की थी, परन्तु यह लक्ष्य सन 1979 में पूरा हो सका है।

5. रोजगार प्रेरक : प्रत्येक योजना में योजना के अधिक अवसर बढ़ाने के प्रयत्न किए गए हैं। रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए कई दिशा में प्रयत्न किए गए हैं जैसे

क. आर्थिक निवेश

ख. उत्पादन क्षमता का पूरा प्रयोग

ग. श्रम प्रधान तकनीक का उचित तथा अधिक उपयोग

घ. कृषि, लघु तथा कुटीर उद्योग आदि श्रम प्रधान क्रियाओं का विकास

ङ. छोटे किसानों, सीमांत किसानों, छोटे उत्पादकों को विशेष सहायता

च. स्वयं रोजगार के लिए प्रोत्साहन

छ. रोजगार प्रेरक प्रशिक्षण और अधिक बेरोजगारी या अल्प रोजगार वाले क्षेत्रों में रोजगार के विशेष कार्यक्रम।

6. संतुलित विकास : योजनाओं में कृषि, उद्योगों, यातायात, सिंचाई, बिजली आदि के संतुलित विकास का प्रयत्न किया गया है। उद्योगों में हल्के तथा भारी, बड़े उद्योग, कुटीर तथा लघु उद्योग सभी के विकास के लिए योजनाएं बनाई गई हैं। इस प्रकार योजनाओं की व्यूह-रचना का उद्देश्य प्राथमिक, माध्यमिक तथा तृतीयक सभी आर्थिक क्रियाओं का साथ-साथ विकास करना है। अब योजनाओं का कुछ झुकाव निर्यात-दर में वृद्धि करने की ओर काफी सीमा तक बढ़ता जा रहा है।

7. आत्मनिर्भरता : चौथी योजना के पश्चात भारतीय नियोजन की व्यूह-रचना का एक मुख्य लक्ष्य आत्मनिर्भरता

की स्थिति को प्राप्त करना है। इसके लिए जो व्यूह रचना अपनाई गई है उसके मुख्य तत्व हैं :

क. निर्यात को प्रोत्साहन देना

ख. पेट्रोलियम के उत्पादन को बढ़ाना

ग. आयात प्रतिस्थापन

घ. विदेशी ऋण सेवा को एक सीमा में रखना तथा

ङ. आधुनिक तकनीकी का देश में अधिक विकास।

8. संतुलित क्षेत्रीय विकास : योजनाओं में देश के विभिन्न क्षेत्रों में संतुलित विकास के काफी प्रयत्न किए गए हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए जो व्यूह रचना अपनाई गई उसके मुख्य तत्व इस प्रकार हैं :

क. वित्त आयोगों द्वारा पिछड़े क्षेत्रों को अधिक सहायता या अनुदान दिलाना।

ख. पिछड़े क्षेत्रों में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग स्थापित करना।

ग. पिछड़े क्षेत्रों में उद्योग स्थापित करने के लिए निजी क्षेत्र के उद्योगों को प्रोत्साहन।

घ. पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए विशेष क्षेत्रीय योजनाओं को लागू करना।

9. सामाजिक कल्याण: समाज के निर्धन वर्ग के लोगों के लाभ के लिए विशेष कार्यक्रम अपनाए गए हैं जैसे: समाज कल्याण के लिए ऐच्छिक।

४.३ सारांश :

आर्थिक आयोजन एक ऐसी विधि है जिसके अंतर्गत एक केंद्रीय योजनाधिकारी द्वारा देश के प्राकृतिक, पूंजीगत एवं मानवीय संसाधनों को ध्यान में रखते हुए एक निश्चित समय में आर्थिक विकास के पहले से निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। भारतीय योजना आयोग के अनुसार, 'आर्थिक नियोजन आवश्यक रूप से सामाजिक उद्देश्यों के अनुरूप साधनों को अधिकतम लाभ हेतु संगठित एवं उपयोग करने का एक मार्ग है।'

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय राजनीतिज्ञों ने, देश का तीव्र आर्थिक विकास करने के उद्देश्य से, आर्थिक आयोजन का समर्थन किया। परिणामस्वरूप सन् 1951 में भारत में आर्थिक आयोजन की प्रक्रिया शुरू हुई।

योजना कार्यों में समन्वय करने एवं राज्य सरकारों को सहमति तथा स्वीकृति प्रदान करने के उद्देश्य से तथा योजनाओं की प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए एक राष्ट्रीय विकास परिषद का गठन सन 1952 में किया गया है। भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया गया है। इसलिए योजना के अनुसार निजी, सार्वजनिक तथा संयुक्त क्षेत्र में इसे लागू किया जाता है। पहले सार्वजनिक क्षेत्र को अधिक महत्व दिया जाता था, परन्तु आजकल निजी क्षेत्र को भी महत्व दिया जा रहा है।

सबसे पहले सामाजिक एवं राजनीतिक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर योजना आयोग द्वारा एक दीर्घकालीन योजना बनाई जाती है जो 15-20 वर्षीय होती है। इस दीर्घकालीन योजना की पृष्ठभूमि में पंचवर्षीय योजनाएं बनाई जाती हैं। इन पंचवर्षीय योजनाओं में विभिन्न मॉडलों का प्रयोग किया जाता है। द्वितीय एवं तृतीय योजना में महालोनोबिस मॉडल का प्रयोग किया गया था। इन पंचवर्षीय योजनाओं के साथ-साथ एक वर्षीय योजनाओं का भी निर्माण किया जाता है। योजना बनाने का कार्य कार्यकारी दल एवं उपदल करते हैं जिससे कि योजना अधिक व्यावहारिक हो सके। अनेक सलाहकार समितियां व परामर्शदात्री समितियां योजना आयोग को योजना-निर्माण में सहायता प्रदान

करती हैं।

भारत में सर्वप्रथम सन 1934 में श्री एम. विश्वेवरैया ने योजना की प्रथम रूपरेखा दी थी। बाद में सन 1938 में अखिल भारतीय किसान द्वारा श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रीय योजना समिति में अखिल भारतीय कांग्रेस द्वारा जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रीय योजना समिति का गठन किया गया जिसने देश के आर्थिक विकास के लिए योजना की रूपरेखा प्रकाशित की। सन 1943 में भारत के आठ बड़े उद्योगपतियों ने मिलकर एक योजना तैयार की, जिसे मुंबई योजना के नाम से जाना जाता है। इस योजना का उद्देश्य 15 वर्षों में प्रति व्यक्ति आय को दोगुना करना था।

४.४ सूचक शब्द :

आर्थिक आयोजन : आर्थिक आयोजन एक ऐसी विधि है जिसके अंतर्गत एक केंद्रीय योजनाधिकारी द्वारा देश के प्राकृतिक, पूंजीगत एवं मानवीय संसाधनों को ध्यान में रखते हुए एक निश्चित समय में आर्थिक विकास के पहले से निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। भारतीय योजना आयोग के अनुसार, 'आर्थिक नियोजन आवश्यक रूप से सामाजिक उद्देश्यों के अनुरूप साधनों को अधिकतम लाभ हेतु संगठित एवं उपयोग करने का एक मार्ग है।'

राष्ट्रीय विकास परिषद : योजना कार्यों में समन्वय करने एवं राज्य सरकारों को सहमति तथा स्वीकृति प्रदान करने के उद्देश्य से तथा योजनाओं की प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए एक राष्ट्रीय विकास परिषद का गठन सन 1952 में किया गया है।

वित्तीय नियोजन : भारत में नियोजन का विकास वित्तीय नियोजन के रूप में हुआ है। इसका अर्थ यह है कि योजनाओं में भौतिक लक्ष्यों की तुलना में वित्तीय लक्ष्यों को अधिक महत्व दिया गया है। इसीलिए भारत में भौतिक लक्ष्यों और उनकी प्राप्तियों में पर्याप्त अंतर होता है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था : भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया गया है। इसलिए योजना के अनुसार निजी, सार्वजनिक तथा संयुक्त क्षेत्र में इसे लागू किया जाता है। पहले सार्वजनिक क्षेत्र को अधिक महत्व दिया जाता था, परन्तु आजकल निजी क्षेत्र को भी महत्व दिया जा रहा है।

आर्थिक स्थिरता : आर्थिक विकास की गति को बनाए रखने के लिए अर्थव्यवस्था में आर्थिक स्थिरता बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है। अत: हमारी योजनाओं का एक उद्देश्य आर्थिक स्थिरता प्राप्त करना भी रहा है। आर्थिक स्थिरता का अर्थ है – देश में तेजी-मंदी की स्थिति उत्पन्न न होने देना। कीमतों में उतार-चढ़ाव अर्थव्यवस्था को भारी क्षति पहुंचाते हैं। आर्थिक विकास के लिए कीमतों में मामूली वृद्धि तो आवश्यक है, लेकिन अत्यधिक वृद्धि नहीं होनी चाहिए।

४.५ स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न :

- आर्थिक नियोजन से आप क्या समझते हैं? वर्णन करें।
- भारतवर्ष में आर्थिक आयोजन की विशेषताओं पर प्रकाश डालें।
- भारत में आर्थिक आयोजन के विकास की अवस्थाओं का वर्णन करें।
- आर्थिक नियोजन के क्या उद्देश्य हैं? टिप्पणी करें।

४.६ संदर्भित पुस्तकें :

बिजनेस इकॉनोमिक्स : आर. के. लेखी, एस.एल. अग्रवाल।
दी इंडियन इकॉनोमी : रे।
प्लानिंग ग्रोथ एंड दी इकॉनोमी : रे।
आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था : डा. एससी गुप्ता।
अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र : आर. डी. शर्मा।
अंतरराष्ट्रीय व्यापार : दालचंद्र बागडी।
आर्थिक अवधारणाएं व पद्धतियां : एम. सी. गुप्ता।
भारतीय राजनीतिक अर्थशास्त्र : गिरीश नंदन शर्मा।

बीए मास कम्यूनिकेशन – द्वितीय वर्ष *बीएमसी –१०७* **अर्थशास्त्र**
खंड–डी इकाई – दो अध्याय – पांच

विकास तथा संवृद्धि

लेखक : डा. वीना शर्मा
एस. आई. एम. शैली में परिवर्तन :

अध्याय संरचना :

इस अध्याय में विकास तथा आर्थिक संवृद्धि की अवधारणा से परिचित होंगे। इस अध्याय में हम आर्थिक संवृद्धि की धारणा, आर्थिक विकास की धारणा, विकसित अर्थव्यवस्था की विशेषताएं, आर्थिक संवृद्धि व आर्थिक विकास में अंतर व आर्थिक संवृद्धि व आर्थिक विकास की अवधारणाओं में अंतर आदि विषयों की चर्चा करेंगे। अध्याय की संरचना इस प्रकार होगी:

५.० उद्देश्य
५.१ परिचय
५.२ विषय वस्तु की प्रस्तुति
५.२.१ आर्थिक विकास व आर्थिक संवृद्धि से परिचय
५.२.२ आर्थिक संवृद्धि की अवधारणा
५.२.३ आर्थिक विकास की अवधारणा
५.२.४ विकसित अर्थव्यवस्था की विशेषताएं
५.२.५ आर्थिक संवृद्धि व आर्थिक विकास में अंतर
५.२.६ आर्थिक संवृद्धि व आर्थिक विकास की अवधारणाओं में अंतर
५.३ सारांश
५.४ सूचक शब्द
५.५ स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
५.६ संदर्भित पुस्तकें

५.० उद्देश्य :

इस अध्याय के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

आर्थिक विकास व आर्थिक संवृद्धि से परिचित होना
आर्थिक संवृद्धि की अवधारणा जानना
आर्थिक विकास की अवधारणा के बारे में जानकारी लेना
विकसित अर्थव्यवस्था की विशेषताएं जानना
आर्थिक संवृद्धि व आर्थिक विकास में अंतर ज्ञात करना

आर्थिक संवृद्धि व आर्थिक विकास की अवधारणाओं में अंतर जानना

५.१ परिचय :

आर्थिक विकास से अभिप्राय पहले से बेहतर स्थिति को प्राप्त करना होता है। किसी राष्ट्र की प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है तो इसे आर्थिक विकास से जोडकर देखा जाता है। इसी प्रकार एक निश्चित दर से मुद्रास्फीति, उद्योगों की उन्नति, कृषि में उन्नति, बेरोजगारी पर नियंत्रण, जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण आदि को आर्थिक विकास के प्रमुख तत्व माना जाता है। दूसरी ओर आर्थिक वृद्धि से अभिप्राय सकल अर्थव्यवस्था के एक स्तर से दूसरे स्तर पर पहुंचने से है। अर्थात यदि किसी अर्थव्यस्था की सकल राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुई है और साथ ही उसकी जनसंख्या में भी वृद्धि हुई है तो प्रति व्यक्ति आय में विशेष बढोतरी नहीं होगी। इसी कारण इसे आर्थिक विकास न कहकर आर्थिक वृद्धि कहा जाएगा।

५.२ विषय वस्तु की प्रस्तुति :

इस अध्याय में हम आर्थिक संवृद्धि व आर्थिक विकास के बारे में चर्चा करेंगे। अध्याय में विषय वस्तु की प्रस्तुति निम्न प्रकार से होगी :

आर्थिक विकास व आर्थिक संवृद्धि से परिचय
आर्थिक संवृद्धि की अवधारणा
आर्थिक विकास की अवधारणा
विकसित अर्थव्यवस्था की विशेषताएं
आर्थिक संवृद्धि व आर्थिक विकास में अंतर
आर्थिक संवृद्धि व आर्थिक विकास की अवधारणाओं में अंतर

५.२.१ आर्थिक संवृद्धि एवं विकास की धारणा से परिचय :

संसार की लगभग सभी अर्थव्यवस्थाएं अपने आर्थिक विकास के लिए प्रयत्नशील हैं। आर्थिक विकास सभी अर्थव्यवस्थाओं के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। अल्पविकसित देशों के लिए आर्थिक विकास इसलिए आवश्यक है क्योंकि इसके द्वारा वे अपनी सामान्य दरिद्रता, बेरोजगारी, पिछड़ेपन एवं नीचे जीवन स्तर की समस्या के समाधान का प्रयत्न करते हैं। दूसरी ओर विकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए आर्थिक विकास का इसलिए महत्व है क्योंकि इसके द्वारा वे अपने आर्थिक विकास की वर्तमान दर को बनाए रखना चाहते हैं। आधुनिक अर्थशास्त्र के पिता एडम स्मिथ ने यद्यपि दो सौ वर्ष पूर्व आर्थिक विकास की समस्या की विवेचना की थी, परंतु केवल पिछले 6 वर्षों से अर्थशास्त्रियों ने अल्पविकसित देशों की समस्याओं के अध्ययन में अधिक दिलचस्पी दिखाई है। मायर तथा वाल्डविन के अनुसार, 'राष्ट्रों की निर्धनता का अध्ययन राष्ट्रों के धन के अध्ययन से अधिक महत्वपूर्ण है।'

आर्थिक विकास सामान्य दरिद्रता के कारणों तथा उपचारों का अध्ययन करता है। आर्थिक विकास से अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा किसी देश की प्रति व्यक्ति आय तथा आर्थिक कल्याण में दीर्घकालीन वृद्धि होती है। यह ध्यान रखना चाहिए कि सामान्य रूप से आर्थिक विकास तथा आर्थिक संवृद्धि शब्दों का एक-दूसरे के लिए प्रयोग किया जाता है। परन्तु अर्थशास्त्री इन शब्दों में अंतर करते हैं। उनके अनुसार आर्थिक विकास, परिवर्तन के

साथ आर्थिक संवृद्धि तथा आर्थिक कल्याण में वृद्धि है।

आर्थिक विकास की धारणा को समझने के लिए निम्नलिखित संबंधित धारणाओं की जानकारी आवश्यक हो जाती है।

1. आर्थिक संवृद्धि
2. आर्थिक विकास।

५.२.२ आर्थिक संवृद्धि की धारणा :

आर्थिक संवृद्धि की धारणा परिमाणात्मक परिवर्तनों से है। यह विकास की वह प्रक्रिया है जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है। आर्थिक संवृद्धि की सामान्यत: दो परिभाषाएं दी जाती हैं।

प्रमुख परिभाषा :

मैकोनल के शब्दों में, 'आर्थिक संवृद्धि से अभिप्राय है किसी अर्थव्यवस्था की वास्तविक सकल राष्ट्रीय उत्पाद या वास्तविक राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि।'

वास्तविक उत्पाद में होने वाली वृद्धि अर्थव्यवस्था की संवृद्धि का प्रतीक है। इसके विपरीत स्थिर या घटते हुए वास्तविक उत्पाद से यह ज्ञात होता है कि किसी अर्थव्यवस्था की आर्थिक स्थिति स्थिर है या घट रही है। इस परिभाषा के अनुसार आर्थिक संवृद्धि में वस्तुओं तथा सेवाओं की पूर्ति में वृद्धि होती है। केवल कीमतों में वृद्धि होने के कारण मौद्रिक आय में होने वाली वृद्धि को संवृद्धि नहीं कहा जा सकता।

आलोचना : इस परिभाषा से ज्ञात होता है कि आर्थिक संवृद्धि वह प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति की आय बढ़ रही है या कम हो रही है। एक देश की शुद्ध राष्ट्रीय आय के बढ़ने पर भी यदि जनसंख्या में वृद्धि उससे अधिक दर पर होगी तो प्रति व्यक्ति आय बढ़ने के स्थान पर कम हो जाएगी। इस स्थिति को आर्थिक संवृद्धि कहना उचित नहीं होगा।

द्वितीय परिभाषा :

सैम्युअलसन के अनुसार, 'आर्थिक संवृद्धि वह प्रक्रिया है जिसके फलस्वरूप प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि होती है।'

उपरोक्त परिभाषा से यह ज्ञात होता है कि किसी अर्थव्यवस्था के जीवन स्तर का सबसे अधिक उपयुक्त माप प्रति व्यक्ति वास्तविक उत्पाद में होने वाली वृद्धि है। यदि किसी अर्थव्यवस्था में जनसंख्या वृद्धि दर कुल वास्तविक उत्पाद की वृद्धि दर से अधिक होती है तो प्रति व्यक्ति जीवन स्तर कम हो जाएगा तथा आर्थिक संवृद्धि नहीं होगी।

उपरोक्त में कौन सी परिभाषा अच्छी है ?

इन प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि हमारा उद्देश्य क्या है। यदि हमारा उद्देश्य देश की केवल उत्पादन क्षमता या पैमाने की बचतें या मौद्रिक क्षमता का ज्ञान प्राप्त करना है तो राष्ट्रीय आय उचित सूचक है तथा प्रथम परिभाषा आर्थिक संवृद्धि की एक उचित परिभाषा मानी जा सकती है। परन्तु यदि हमारा उद्देश्य लोगों के जीवन स्तर का ज्ञान प्राप्त करना है तो यह परिभाषा आर्थिक संवृद्धि की उचित परिभाषा नहीं कही जा सकती। इस स्थिति में द्वितीय परिभाषा अधिक उचित मानी जाएगी।

५.२.३ आर्थिक विकास की धारणा :

आर्थिक विकास की धरणा आर्थिक संवृद्धि की धारणा से कुछ अधिक है। इसका अर्थ है कि प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि होने के साथ-साथ संरचनात्मक तथा संस्थागत परिवर्तन एवं आर्थिक कल्याण या लागों की जीवन गुणवत्ता में होन वाली वृद्धि। आर्थिक विकास का मुख्य उद्देश्य निर्धनता का उन्मूलन है।

सन 197 के बाद अर्थशास्त्री यह विशेष रूप से महसूस करने लगे कि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होने पर भी आर्थिक कल्याण में वृद्धि नहीं हुई है। इसलिए आर्थिक विकास की परिभाषा आर्थिक कल्याण या लोगों की आधारभूत आवश्यकताओं की संतुष्टि के रूप में की जानी चाहिए। इस नई परिभाषा के अनुसार आर्थिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके फलस्वरूप निर्धनता, बेरोजगारी, आय की असमानता में कमी होती है। आर्थिक विकास की कुछ कल्याण संबंधी परिभाषाएं इस प्रकार हैं :

1. प्रो. मायर के शब्दों में, आर्थिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में दीर्घकाल में वृद्धि होती है। परन्तु इस शर्त के साथ कि एक निरपेक्ष निर्धनता रेखा से नीचे लोगों की संख्या में वृद्धि न हो, तथा आय का वितरण अधिक असमान न हो जाए।

इस परिभाषा के अनुसार आर्थिक विकास के मुख्य तत्व तीन हैं :

1. प्रक्रिया : इस परिभाषा में प्रक्रिया शब्द से अभिप्राय अर्थव्यवस्था में दीर्घकाल में होने वाले परिवर्तनों से है। इन परिवर्तनों का प्रभाव साधनों की पूर्ति और वस्तुओं की मांग को प्रभावित करने वाले तत्वों पर पड़ता है। साधनों की पूर्ति में होने वाले मुख्य परिवर्तन इस प्रकार हैं :

क. अतिरिक्त साधनों की खोज

ख. पूंजी संचय

ग. जनसंख्या में वृद्धि

घ. उत्पादन की नई और उन्नत विधियां

ङ. श्रम की कार्यकुशलता में सुधार

च. संस्थागत तथा संगठनात्मक परिवर्तन

पूर्ति में होने वाले परिवर्तनों के साथ-साथ मांग में भी परिवर्तन होते हैं। जैसे - जनसंख्या का अधिकार, आय का वितरण, उपभोक्ताओं की रुचि, अन्य संस्थागत और संगठनात्मक परिवर्तन। आर्थिक विकास के फलस्वरूप मांग और पूर्ति के स्वरूप में उपरोक्त कई प्रकार के परिवर्तन होते हैं। ये परिवर्तन आर्थिक विकास के कारण और परिणाम दोनों ही हैं। आर्थिक विकास की सीमा इन परिवर्तनों की गति और समय पर निर्भर करती है। आर्थिक विकास एक गत्यात्मक धारणा है। इसका अभिप्राय उत्पादन में होने वाली निरंतर वृद्धि से है।

2. प्रति व्यक्ति आय : आर्थिक विकास का उद्देश्य प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि है। प्रति व्यक्ति आय का अनुमान राष्ट्रीय आय को जनसंख्या से भाग देने पर लगाया जा सकता है।

प्रति व्यक्ति आय = राष्ट्रीय आय/कीमत स्तर

केवल राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि आर्थिक विकास का प्रतीक नहीं है। इसका कारण यह है कि यदि जनसंख्या में होने वाली वृद्धि दर राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि दर की तुलना में अधिक होगी तो प्रति व्यक्ति आय बढ़ने के स्थान पर कम हो जाएगी। अतएव आर्थिक विकास का अनुमान प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि के आधार पर लगाया जा सकता है। वास्तविक आय से अभिप्राय किसी देश की मौद्रिक आय का स्थिर कीमतों

पर लगाए जाने वाले अनुमान से है।

वास्तविक आय = मौद्रिक आय/कीमत स्तर

इसका अभिप्राय यह हुआ कि मौद्रिक आय में होने वाली वृद्धि आर्थिक विकास का सूचक नहीं है।

3. दीर्घकालीन : आर्थिक विकास की इस परिभाषा के अनुसार शुद्ध राष्ट्रीय आय में लगातार वृद्धि होनी चाहिए। अल्पकाल में यदि कुछ समय के लिए राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो जाती है तो उसे आर्थिक विकास नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के तौर पर, मान लीजिए यदि किसी वर्ष फसल बहुत अच्छी हो जाने के कारण राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो तो इस अस्थाई वृद्धि को आर्थिक विकास नहीं कहा जा सकता। आर्थिक विकास तो उसी अवस्था को कहेंगे जिसके अंतर्गत कम से कम 25 वर्ष की अवधि तक राष्ट्रीय आय निरंतर बढ़ती रहे।

4. निर्धनता तथा असमानता में वृद्धि नहीं होनी चाहिए : इस परिभाषा के अनुसार आर्थिक विकास की स्थिति में प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि होनी चाहिए कि निर्धनता रेखा से नीचे लोगों की संख्या में वृद्धि नहीं होनी चाहिए। इसके साथ-साथ आय के वितरण की असमानता में भी वृद्धि नहीं होनी चाहिए। अतएव यह परिभाषा प्रति इकाई वास्तविक आय में वृद्धि के साथ-साथ उसके न्यायपूर्ण वितरण को भी आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण मानती है।

वास्तव में प्रो. मायर के अनुसार, 'आर्थिक विकास की मुख्य विशेषताएं निर्धनता उन्मूलन या लोगों के जीवन स्तर में वृद्धि होना है।'

1. कालिन क्लार्क के अनुसार, 'आर्थिक विकास की मुख्य विशेषताएं निर्धनता उन्मूलन या लोगों के जीवन स्तर में वृद्धि से है।'

2. प्रो. किन्डलबर्गर तथा हेरिक के अनुसार, 'आर्थिक विकास से अभिप्राय आर्थिक कल्याण में किए जाने वाले सुधारों से है। ये सुधार विशेष रूप से उन लोगों के लिए किए जाते हैं जिनकी आय न्यूनतम होती है। इनके द्वारा निर्धनता, अशिक्षा, बीमारी तथा जल्दी मृत्यु की बुराइयों को दूर किया जाता है।'

3. प्रो. टोडारो ने आर्थिक विकास की आधुनिक परिभाषा इस प्रकार दी है, 'आर्थिक विकास एक बहुपक्षीय प्रक्रिया है जिसके फलस्वरूप सामाजिक ढांचे, लोकप्रिय विचारधाराओं एवं राष्ट्रीय संस्थाओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। इसके साथ-साथ आर्थिक संवृद्धि बढ़ती है। असमानता कम होती है तथा निरपेक्ष निर्धनता का उन्मूलन होता है।'

4. गोलेट ने आर्थिक विकास की आर्थिक कल्याण की परिभाषा दी है। उनके अनुसार, 'आर्थिक विकास के विस्तृत अर्थ हैं जीवन निर्वाह, स्वाभिमान एवं स्वतंत्रता।' इस परिभाषा के सामान्य रूप से निम्न तीन पहलू हैं :

क. जीवन निर्वाह : आर्थिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोगों को निर्धनता के स्तर से ऊपर उठाया जाए तथा साथ-साथ उनकी आधारभूत आवश्यकताओं को संतुष्ट किया जाए। किसी भी देश को तब तक विकसित नहीं कहा जा सकता जब तक वह अपने सभी निवासियों के रोटी, कपड़ा, मकान, प्राथमिक शिक्षा और स्वास्थ्य की आधारभूत जीवन स्तर अर्थात उनकी आय, भोजन के उपभोग स्तर, चिकित्सा सेवाओं, शिक्षा आदि को उपयुक्त प्रक्रिया द्वारा ऊंचा नहीं उठाता।

ख. स्वाभिमान : स्वाभिमान से अभिप्राय है - आत्मसम्मान तथा स्वतंत्रता की भावना। यदि कोई अर्थव्यवस्था दूसरों द्वारा शोषित की जाती है तथा उसे दूसरों के साथ समान शर्तों पर व्यवहार करने का अधिकार नहीं है तो उसे विकसित नहीं माना जा सकता। अल्पविकसित देश स्वाभिमान के लिए विकास करना चाहते हैं। वे निम्नकोटी

की आर्थिक अवस्था से संबंधित दूसरों पर निर्भरता तथा गुलामी की भावनाओं को दूर करना चाहते हैं। अतएव आर्थिक विकास का दूसरा पहलू है। ऐसी दशाएं उत्पन्न करना जिनके फलस्वरूप लोगों के स्वाभिमान में वृद्धि हो। इसके लिए मानवीय सम्मान को विकसित करने वाली सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक संस्थाओं को स्थापित किया जाना चाहिए।

ग. स्वतंत्रता : स्वतंत्रता से अभिप्राय है तीन बुराइयों अर्थात निर्धनता, अज्ञानता तथा गंदगी से मुक्ति। जिससे लोग अपने भविष्य का स्वयं निर्धारण कर सकें। कोई भी मनुष्य तब तक स्वतंत्र नहीं माना जा सकता जब तक उसे चुनाव करने की स्वतंत्रता नहीं है, वह निर्धनता रेखा से नीचे है, वह शिक्षित नहीं है तथा उसे कोई हुनर नहीं आता। आर्थिक विकास से लोगों को चुनाव की स्वतंत्रता मिलती है तथा उनकी आर्थिक स्थिति ठीक होती है। वे शिक्षित तथा हुनरमंद बनते हैं। अतएव आर्थिक विकास का तीसरा पहलू है। उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में विभिन्नता लाना तथा चुनाव के क्षेत्र में विस्तार करना।

संक्षेप में एपी थिरलवास के अनुसार, हम कहते हैं कि आर्थिक विकास वह स्थिति है:

क. जब इसमें आधारभूत आवश्यकताओं की संतुष्टि में सुधार होता है।

ख. जब देश की आर्थिक प्रगति उसके निवासियों के स्वाभिमान की भावना को बढ़ाने में काफी योगदान देती है।

ग. जब भौतिक विकास के कारण लोगों के लिए चुनाव के क्षेत्र में विस्तार हो जाए।

संक्षेप में, डा. उमन के शब्दों में, 'आर्थिक विकास से अभिप्राय लोगों को निर्धनता, बेकारी, खराब स्वास्थ्य आति अमानवीय तत्वों से ऊपर उठकर अधिक मानवीय बनाना है। हम आर्थिक विकास की परिभाषा मानवीयकरण के रूप में दे सकते हैं।'

संसार की अर्थव्यवस्थाओं को वर्गीकृत करने के विभिन्न आधार हैं। विश्व विकास रिपोर्ट ने प्रति व्यक्ति आय के आधार पर संसार की अर्थव्यवस्थाओं का निम्न तीन भागों में वर्गीकरण किया है :

1. उच्च आय अर्थव्यवस्थाएं : वे अर्थव्यस्थाएं हैं जिनकी प्रति व्यक्ति वार्षिक आय 9265 डॉलर या इससे अधि है।

2. मध्यम आय अर्थव्यस्थाएं : ये वे अर्थव्यस्थाएं हैं जिनकी प्रति व्यक्ति आय 755 डालर से अधिक तथा 9265 डालर से कम है। इनकी संख्या लगभग 57 है।

3. निम्न आय अर्थव्यस्थाएं वे अर्थव्यस्थाएं हैं जिनकी प्रति व्यक्ति आय 755 डालर या उससे कम है। संसार की लगभग दो तिहाई जनसंख्या इन अर्थव्यवस्थाओं में रहती है। इनमें अल्पविकसित निर्धनता, अज्ञानता तथा बीमारी व्यापक रूप से पाई जाती है।

संसार की अर्थव्यवस्थाओं के उपरोक्त वर्गीकरण के लिए विभिन्न नामों का प्रयोग किया जाता है। इनमें से एक नाम है पिछड़ी या परंपरागत अर्थव्यस्थाएं तथा उन्नत या आधुनिक अर्थव्यस्थाएं। परंपरागत से अभिप्राय है कि इसमें आर्थिक संबंध परंपरागत होते हैं तथा यह अगत्यात्मक अर्थव्यवस्था होती है, लेकिन पिछड़ा शब्द अपमानजनक माना जाता है। यह शब्द सांस्कृतिक पिछड़ेपन को प्रकट करता है। परन्तु कई अल्पविकसित देशों जैसे भारत की संस्कृति संसार के कई विकसित या उन्नत देशों की तुलना में अधिक प्राचीन व उन्नत है। कई अर्थशास्त्रियों जैसे बायर तथा मायर और बाल्डविन ने इन अर्थव्यवस्थाओं के लिए निर्धन तथा धनी शब्दों का प्रयोग किया है। परन्तु निर्धन शब्द इन देशों की केवल एक विशेषता अर्थात प्रति व्यक्ति कम आय को प्रकट करता है। वर्तमान समय में

प्रति व्यक्ति आय के स्थान पर आर्थिक विकास के स्तर का अनुमान लगाने के लिए एक नए माप का प्रयोग किया जाता है। यह प्रति व्यक्ति आय की क्रय शक्ति समता है।

इन अर्थव्यवस्थाओं का दूसरा वर्गीकरण इनके विकास के स्तर पर निर्भर करता है। इस आधार पर इन्हें अल्पविकसित या विकासशील अर्थव्यवस्थाएं तथा विकसित अर्थव्यवस्था के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। आजकल इनके लिए दक्षिण तथा उत्तर शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। आजकल इनके लिए दक्षिण तथा उत्तर शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। संसार की अल्पविकसित अर्थव्यस्थाओं के लिए दक्षिण तथा विकसित अर्थव्यस्थाओं के लिए उत्तर शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड को छोड़कर संसार के अधिकतर धनी देश उत्तर खंड में स्थित हैं जबकि निर्धन देश दक्षिणी खंड में स्थित हैं। इन अर्थव्यवस्थाओं का एक व्यापक वर्गीकरण तीन दुनियाओं के रूप में किया जाता है :

पहली दुनिया शब्द का प्रयोग विकसित देशों के लिए किया जाता है।

दूसरी दुनिया शब्द का प्रयोग रूस तथा कम्युनिस्ट अर्थव्यवस्थाओं के लिए किया जाता है।

तीसरी दुनिया शब्द का प्रयोग अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए किया जाता है। अधिकतर अल्पविकसित देशों ने अपने आर्थिक विकास के लिए प्रयत्न आरंभ कर दिए हैं, इसलिए संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रकाशित पुस्तकों में इन देशों को विकासशील अर्थव्यस्थाएं कहा जाने लगा है। इस पुस्तक में हम निर्धन देशों के लिए अल्पविकसित या विकासशील अर्थव्यवस्था शब्द का प्रयोग करेंगे :

५.२.४ विकसित अर्थव्यस्थाओं की विशेषताएं :

विकसित अर्थव्यस्थाओं की विशेषताएं निम्न हैं :

1. अधिक प्रति व्यक्ति वास्तविक आय : विकसित अर्थव्यस्थाएं वे अर्थव्यस्थाएं हैं जिनकी प्रति व्यक्ति वास्तविक आय अधिक होती है। वर्ल्ड एटलस के अनुसार विकसित अर्थव्यस्थाओं की प्रति व्यक्ति वार्षिक आय 9 डालर या उससे कुछ अधिक होती है जोकि अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं की प्रति व्यक्ति आय से लगभग 3 गुणा अधिक होती है।

2. ऊंची वृद्धि दर : विकसित अर्थव्यवस्थाओं की प्रति व्यक्ति आय ही अधिक नहीं होती बल्कि उसकी विकास दर भी अपेक्षाकृत अधिक होती है। 21-2 तक विकसित देशों की वृद्धि दर औसतन 3.2 प्रतिशत थी जबकि अधिकतर अल्पविकसित देशों की केवल 2.5 प्रतिशत थी। विकसित देश अपनी अर्थव्यस्था की वृद्धि दर की निरंतरता बनाए रखने में कामयाब रहते हैं।

3. ऊंचा जीवन स्तर : विकसित देशों के लोगों का जीवनस्तर ऊंचा होता है। वे केवल अपन भोजन, कपड़े तथा मकान की आवश्यकताओं को ही पूरा नहीं करते बल्कि आराम तथा विलासिता की वस्तुओं का भी काफी सीमा तक उपभोग करने में सफल रहते हैं। उदाहरण के लिए यूएसए में जो एक विकसित अर्थव्यस्था है, प्रति हजार व्यक्ति 8 टीवी सेट, 2122 रेडियो, 13 मोबाइल फोन हैं जबकि भारत जैसी अर्थव्यवस्था में इनकी संख्या क्रमश: 7, 13 तथा `.1 है। विकसित देशों में प्रतिदिन प्रति व्यक्ति लगभग 37 कैलोरी का उपभोग किया जाता हैजबकि अल्पविकसित देशों में केवल 24 कैलोरी का उपभोग किया जाता है। विकसित देशों का मानवीय विकास सूचकांक सामान्यत: `.8 से `.9 होता है जबकि अल्पविकसित देशों का `.3 से `.4 होता है।

4. पूंजी निर्माण की ऊंची दर तथा कम पूंजी उत्पाद अनुपात : विकसित देशों में पूंजी निर्माण की दर अधिक

होती है। इन देशों में लोगों की आय अधिक होती है, इसलिए उनमें बचत करने की क्षमता अधिक होती है। वे अपनी बचत को लाभप्रद कार्यों में निवेश करने में समर्थ होते हैं क्योंकि विकसित अर्थव्यवस्थाओं में निवेश की अधिक सुविधाएं होती हैं। अधिक मात्रा में निवेश किए जाने के कारण पूंजी निर्माण की दर बढ़ती है। विकसित देशों में पूंजी निर्माण की दर 3 से 35 प्रतिशत तक की होती है। पूंजी निर्माण की दर अधिक होत के कारण उत्पादन ऊंचे पैमाने पर होता है। उत्पादन बढ़ाने के दो उपाय हैं –

क. पूंजी गहन : इस उपाय से अभिप्राय यह है कि देश के वर्तमान श्रमिकों में से प्रत्येक को अच्छी मशीनें दी जाएं, उन्हें प्रशिक्षण दिया जाए तथा उनकी योग्यता में वृद्धि करने के प्रयत्न किए जाएं। इसके फलस्वरूप राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति उत्पादकता में वृद्धि होगी।

ख. पूंजी विस्तार : इस उपाय से अभिप्राय यह है कि देश में अधिक श्रमिकों को रोजगार देने के लिए मशीनों और यंत्रों का अधिक प्रयोग किया जाए। कई उद्योग जैसे – इस्पात, रसायन, इलेक्ट्रोनिक्स आदि के लिए बहुत अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है। पूंजी गहन तथा पूंजी विस्तार दोनों क्रियाएं साथ–साथ चलती हैं। इसके लिए पूंजी की बहुत आवश्यकता होती है। विकसित देशों में पूंजी अधिक मात्रा में उपलब्ध होने के कारण ये दोनों क्रियाएं ही संभव हैं। विकसित देशों में पूंजी उत्पाद अनुपात कम होता है। इसके फलस्वरूप इन देशों में पूंजी के कम निवेश से भी उत्पादन अधिक होता है अर्थात पंजी की उत्पादकता अधिक होती है।

5. उन्नत मानवीय पूंजी : विकसित अर्थव्यवस्थाओं में मानवीय पूंजी उन्नत होती है। मानवीय पूंजी से अभिप्राय है जनसंख्या के दिमागों तथा हाथों में निहित ज्ञान तथा हुनर। मानवीय पूंजी का तब निर्माण होता है जब लोगों की शिक्षा, स्वास्थ्य, ट्रेनिंग आदि की सुविधाएं प्रदान करने के लिए निवेश किया जाता है। इस निवेश से भौतिक पूंजी में निवेश की तुलना में अधिक प्रतिफल प्राप्त होता है। मानवीय पूंजी के कई रूप हैं जैसे –

क. श्रमिकों का अच्छा स्वास्थ्य तथा लंबी आयु : इसके फलस्वरूप श्रम की उत्पादकता में वृद्धि होती है, उनकी अनुपस्थिति कम होती है तथा उनकी बीमारी पर खर्च कम होने के कारण उनका स्तर ऊंचा होता है। विकसित अर्थव्यवस्थाओं में श्रमिक स्वस्थ होते हैं।

ख. श्रमिकों की शिक्षा तथा प्रशिक्षण : इसके फलस्वरूप श्रमिकों की कार्यकुशलता तथा उत्पादकता में वृद्धि होती है। वे आधुनिकतम मशीनों का भी उपयोग करने में समर्थ हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप आधुनिकीकरण की प्रवृत्ति में वृद्धि होती है। विकसित अर्थव्यवस्थाओं में 9 प्रतिशत श्रमिक स्वस्थ होते हैं।

ग. नवप्रवर्तन : मानवीय पूंजी का एक रूप श्रमिकों की नवप्रवर्तन करने की योग्यता में वृद्धि है। नवप्रवर्तन का अर्थ है – नए आविष्कारों का प्रयोग। इसके फलस्वरूप श्रमिकों की कार्यकुशलता तथा उत्पादकता में वृद्धि होती है। उत्पादन लागत कम होती है तथा नई वस्तुओं का उत्पादन होता है। अतएव मानवीय पूंजी आर्थिक विकास की आधारशिला है। शूल्ज के अनुसार, 'मानवीय पूंजी का विकास विकसित अर्थव्यवस्थाओं का सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य है।'

घ. जनसंख्या वृद्धि की कम वृद्धि दर : विकसित अर्थव्यवस्थाओं में जनसंख्या की वृद्धि दर बहुत कम होती है। देश जनांकिकी की चौथी अवस्था से गुजर रहे होते हैं।

जनांकिकी परिवर्तन की चतुर्थ अवस्था में निम्न जन्म दर तथा निम्न मृत्यु दर के कारण जनसंख्या की वृद्धि दर निम्न स्तर पर स्थिर हो जाती है। यह स्थिर जनसंख्या की अवस्था कहलाती है। इस अवस्था में आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप लोगों का जीवन स्तर बहुत ऊंचा हो जाता है। शहरीकरण, औद्योगिकीकरण तथा शिक्षा प्रसार

से लोगों के सामाजिक, दृष्टिकोण में परिवर्तन आ जाता है। एक बच्चा होने के पश्चात लोग बच्चों की तुलना में कार, फ्रिज, टेलीफोन आदि सुविधाओं को प्राथमिकता देने लगते हैं। इस अवस्था में बच्चों के संबंध में लोगों की धारणा यह बन जाती है – एक आनंद है, दो भीड़ है और तीन अव्यवस्थनीय। इस अवस्था में जन्म दर एवं मृत्यु दर दोनों निम्न स्तर पर रहती हैं। इसके फलस्वरूप जनसंख्या निम्न स्तर पर लगभग स्थिर हो जाती है। उदाहरण के लिए, जर्मनी की जनसंख्या वृद्धि दर`.3 प्रतिशत, इटली तथा यूके की जनसंख्या वृद्धि दर सिर्फ`.2 प्रतिशत, जापान की`.4 प्रतिशत, यूएसएस की 1.2 प्रतिशत, आयरलैंड की`.8 प्रतिशत तथा हंगरी में यह ऋणात्मक है।

7. तकनीकी प्रगति : विकसित देश तकनीकी दृष्टि से अत्यंत प्रगतिशील होते हैं। लिप्सी के अनुसार, 'तकनीकी प्रगति नवप्रवर्तन के कारण होती है। यह नई वस्तुओं, वर्तमान वस्तुओं के उत्पादन की नई विधियों तथा व्यावसायिक संगठनों के नए प्रकारों को प्रस्तुत करती है।' विकसित अर्थव्यवस्थाओं में तकनीकी प्रगति के फलस्वरूप उत्पादन के बाकी साधनों जैसे पूंजी के स्थिर रहने पर भी उत्पादन में वृद्धि होती है। जापान तथा जर्मनी के तीव्र आर्थिक विकास का मुख्य कारण वहां की वैज्ञानिक तथा तकनीक की उन्नति है। औद्योगिक विकास तथा कृषि की उन्नति के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। तकनीकी विकास के बिना देश का आर्थिक विकास तीव्र गति से नहीं हो सकता। प्रो. शुम्पीटर ने आर्थिक विकास के लिए नव–प्रवर्तनों को बहुत आवश्यक माना है। विकसित देश के उद्यमी उत्पादन की नई तकनीक का प्रयोग काफी सीमा तक करते हैं। तकनीकी प्रगति के कारण उत पादन संभावना वक्र ऊपर की ओर खिसक जाती है। इससे प्रकट होता है कि उत्पादन के साधनों के स्थिर रहने पर भी उत्पादन में वृद्धि हुई है।

8. व्यावसायिक ढांचा : विकसित देशों में कार्यशील पूंजी का अधिक भाग तृतीयक क्षेत्र या द्वितीय क्षेत्र में लगा होता है। प्राथमिक क्षेत्र अर्थात कृषि में कार्यशील पूंजी का बहुत कम भाग लगा होता है। परन्तु इन देशों की कृषि विकसित होती है। उदाहरण के लिए यूएसए में केवल 4 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर करती है। पर कृषि के उन्नत होने के कारण यह केवल यूएसए की ही भोजन संबंधी आवश्यकताओं को पूरा नहीं करती, बल्कि कृषि पदार्थों का निर्यात भी किया जाता है। इसके विपरीत भारत में 64 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर करती है। परन्तु कृषि के पिछड़ेपन के कारण यह भारत की भोजन संबंधी आवश्यकता को कठिनाई से पूरा कर पाती है। विकसित देशों में उद्योग बहुत विकसित होते हैं। राष्ट्रीय आय का अधिक भाग उद्योगों से ही प्राप्त होता है।

9. विकास प्रेरक आर्थिक एजेंसियां : विकसित देशों में विकास प्रेरक एजेंसियां पर्याप्त मात्रा में पाई जाती हैं। तीव्र गति तथा न्यूनतमक लागत पर आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विकास प्रेरक आर्थिक एजेंसियों का होना आवश्यक है। इनमें से कुछ प्रमुख एजेंसियां हैं : बैंक, वित्तीय एवं निवेश संबंधी संस्थाएं, नियोजन संस्थाएं आदि। इन संस्थाओं के फलस्वरूप बचत को बढ़ावा मिलता है। निवेश को सही दिशा मिलती है तथा व्यावहारिक परियोजनाओं का निर्माण सुविधाजनक बन जाता है। संगठित तथा कार्यकुशल बैंकिंग व्यवस्था, संगठित मुद्रा बाजार तथा पूंजी बाजार दोनों ही पाए जाते हैं। इनके द्वारा उद्योग तथा कृषि आदि को अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण उचित ब्याज पर प्राप्त हो जाता है। सरकार भी कई प्रकार से आर्थिक विकास की महत्वपूर्ण एजेंसी का कार्य करती हैं। सरकार का विकास के लिए आवश्यक अधोसंरचना, भारी और अधिक जोखिम वाले उद्योगों की स्थापना तथा कम कीमतों पर सार्वजनिक सेवाएं उपलब्ध करवाने में महत्वपूर्ण योगदान होता है। सरकार की मौद्रिक तथा राजकोषिय नीतियां भी आर्थिक विकास की निर्धारक हैं। विकसित देशों की मौद्रिक नीतियां देश के आर्थिक विकास के अनुकूल होती हैं। इसका अभिप्राय यह है कि मुद्रा की पूर्ति आवश्यकता के अनुसार होती

है तथा ब्याज की दर कम होती है। आर्थिक विकास के फलस्वरूप कीमतों में वृद्धि होती है। इसके लिए यह आवश्यक है कि कीमतों में होने वाली वृद्धि को एक सीमा तक ही रखा जाए। वास्तव में वित्तीय स्थिरता आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है। राजकोषिय नीतियों द्वारा बचत तथा निवेश के ढांचे को प्रभावित किया जाता है।

10 उन्नत विदेशी व्यापार : विकसित अर्थव्यवस्थाओं का विदेशी व्यापार उन्नत होता है। इन अर्थव्यवस्थाओं के निर्यात अधिक होते हैं। उनकी तुलना में आयात कम होते हैं। इसलिए भुगतान संतुलन अनुकूल होता है। विदेशी व्यापार के उन्नत होने के कारण इन देशों में उत्पादन अधिक होता है। उत्पादन अधिक होने के कारण रोजगार में वृद्धि होती है। लोगों का जीवन स्तर ऊंचा होता है तथा बाजार का विस्तार होता है। विकसित अर्थव्यवस्थाओं का संसार के निर्यात–आयात व्यापार में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान होता है। इन देशों के विदेशी मुद्रा के कोष भी अधिक होते हैं।

11. विकसित प्राकृतिक साधन : विकसित अर्थव्यवस्था अपने प्राकृतिक साधनों का काफी सीमा तक प्रयोग करने में सफल रहती है। यूएनओ के अनुसार, 'प्राकृतिक साधन वह कोई भी वस्तु होती है जो मनुष्य को अपने प्राकृतिक वातावरण से प्राप्त होती है तथा जिसे वह किसी प्रकार से अपने लाभ के लिए प्रयोग कर सकता है।'

इसके अंतर्गत भूमि, जलवायु, पानी, वन, खनिज पदार्थ, ऊर्जा के साधन जैसे – पेट्रोल, गैस आदि शामिल किए जाते हैं। रिचर्ड टी. गिल के अनुसार, 'प्राकृतिक साधनों का आर्थिक विकास को सीमित करने या प्रोत्साहित करने में निर्णायक महत्व है।' देश की भूमि की प्रकृति तथा जलवायु पर कृषि तथा लोगों की कार्यक्षमता निर्भर करती है। देश के धरातल तथा जलमार्गों पर यातायात के विभिन्न साधनों का विकास निर्भर करता है। नदियों से सिंचाई, बिजली तथा परिवहन की सुविधाएं प्राप्त होती हैं। वनों से ईंधन, ईमारती, लकड़ी, कई उद्योगों जैसे कागज आदि को कच्चा माल प्राप्त होता है। पेट्रोल, कोयला, गैस आदि के रूप में ऊर्जा प्राप्त होती है। इसी प्रकार खनिज पदार्थों जैसे लोहा, तांबा, टीन, सोना, चांदी, जवाहरात आदि का देश के औद्योगिक तथा आर्थिक विकास के लिए बहुत अधिक महत्व है। जिन देशों में प्राकृतिक साधन अधिक होते हें वे देश अपना आर्थिक विकास आसानी से कर सकते हैं। आर्थिक दृष्टि से विकसित अधिकतर देश जैसे अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, कनाडा आदि प्राकृतिक साधनों में काफी संपन्न हैं। परंतु प्राकृतिक साधनों की उपलब्धता में परिवर्तन आता रहता है। वैज्ञानिक, तकनीकी विकास तथा नए आविष्कारों के फलस्वरूप नए साधनों का पता चलता है। उदाहरण के लिए द्वितीय महायुद्ध के पश्चात अरब देश पेट्रोल के कुओं की खोज के द्वारा बहुत अधिक धनी बन सके हैं। परन्तु आर्थिक विकास के लिए प्राकृतिक साधनों की उपलब्धता ही काफी नहीं है, उनका उपयुक्त प्रयोग तथा विकास भी आवश्यक है। उदाहरण के लिए अफ्रीका के कई देश प्राकृतिक साधनों की दृष्टि से बहुत अधिक धनी हैं, परन्तु अपने साधनों का उपयुक्त विकास तथा प्रयोग न कर पाने के कारण वे अपना आर्थिक विकास नहीं कर पाए हैं। अतएव विकसित देश अच्छी तकनीकों के प्रयोग द्वारा अपने प्राकृतिक साधनों का उचित उपयोग करके अपने आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने में सफल रहते हैं।

12. मंडी का विस्तृत आकार : विकसित अर्थव्यवस्थाओं में मंडी का आकार विस्तृत होता है। मंडी के विस्तृत आकार के फलस्वरूप श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण संभव हो जाता है। इनके फलस्वरूप कार्यकुशलता में वृद्धि होती है तथा साधनों की उत्पादकता बढ़ जाती है। मंडी के आकार के बड़े होने के कारण उत्पादन का पैमाना भी बढ़ता है। इसके फलस्वरूप कई प्रकार की आंतरिक तथा बाहरी बचतें प्राप्त होती हैं। इनके फलस्वरूप उत्पादन

की मात्रा बढ़ती है तथा उत्पादन लागत कम होती है। इसलिए उनमें मंडी का विस्तृत आकार आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण निर्धारक होता है।

५.२.५ आर्थिक विकास तथा आर्थिक संवृद्धि में अंतर :

एक लंबे समय तक आर्थिक विकास आर्थिक संवृद्धि, आर्थिक उन्नति तथा दीर्घकालीन परिवर्तन आदि शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में किया जाता रहा है। प्रो. शुम्पीटर ने 1911 में अपनी पुस्तक द थ्योरी ऑफ इकॉनोमिक डेवलेपमेंट में आर्थिक विकास तथा आर्थिक संवृद्धि शब्दों में अंतर स्पष्ट किया है। इसके अतिरिक्त श्रीमती उर्सला हिक्स, एलफ्रेड बोन, किण्डलबर्गर आदि अर्थशास्त्रियों ने भी इन शब्दों के अर्थ की भिन्नता को स्पष्ट किया है। रोबर्ट क्लावर ने लिबेरियन अर्थव्यवस्था से संबंधित लिखी गई अपनी पुस्तक का नाम ग्रोथ विदआउट डेवलेपमेंट रखकर यह स्पष्ट कर दिया कि किसी अर्थव्यवस्था में संवृद्धि होते हुए भी यह संभव है कि उसका विकास न हो। इसलिए अर्थशास्त्री इन दोनों धारणाओं में अंतर करते हैं। इन दोनों धारणाओं में मुख्य अंतर निम्नलिखित हैं :

1. एकपक्षीय तथा बहुपक्षीय : आर्थिक संवृद्धि एकपक्षीय है अर्थात केवल राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि से संबंधित है। इसके विपरीत आर्थिक विकास बहुपक्षीय है। इसका संबंध आय तथा संरचनात्मक परिवर्तनों दोनों से है। प्रो. किण्डलबर्गर के अनुसार, 'आर्थिक संवृद्धि का अर्थ अधिक उत्पादन से है जबकि आर्थिक विकास के अंतर्गत अधिक उत्पादन और तकनीकी तथा संस्थागत प्रबंधों में परिवर्तन दोनों आते हैं जिनसे उत्पादन और वितरण किया जाता है।'

वास्तव में आर्थिक विकास एक अधिक व्यापक शब्द है। आर्थिक विकास की स्थिति में राष्ट्रीय आय के बढ़ने के साथ-साथ देश के आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक ढांचे में भी परिवर्तन होता है। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय आय में कृषि क्षेत्र का तुलनात्मक योगदान बढ़ जाता है। प्रो. ब्राइट सिंह के अनुसार, 'आर्थिक विकास एक बहुपक्षीय प्रक्रिया है जिसमें केवल मौद्रिक आय में ही वृद्धि सम्मिलित नहीं होती बल्कि सामाजिक आदतों, शिक्षा, जनस्वास्थ्य, अधिक अवकाश और वास्तव में उन सभी सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में सुधार सम्मिलित हैं जो एक पूर्ण एवं सुखी जीवन का निर्माण करती हैं।' इसके विपरीत संवृद्धि की स्थिति में केवल राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है। अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक ढांचे में कोई परिवर्तन नहीं होता।

2. गुणात्मक परिवर्तन : प्रो. जेके मेहता के अनुसार, 'विकास तथा संवृद्धि शब्दों का एक ही अर्थ नहीं होता। संवृद्धि शब्द संख्यावाचक है जबकि विकास शब्द गुणात्मक है।' मायर के अनुसार, 'विकास प्रक्रिया में कई महत्वपूर्ण गुणात्मक परिवर्तन होते हैं जो उसे संवृद्धि से आगे ले जाते हैं। यह गुणात्मक परिवर्तन उत्पादन के साधनों के कुशल कार्यकरण तथा उत्पादन तकनीक में सुधार के रूप में प्रकट होते हैं। आर्थिक विकास का संबंध उत्पादन में वृद्धि होने के साथ-साथ उसके उचित बंटवारे से भी है। यदि राष्ट्रीय आय का उचित वितरण नहीं किया जाएगा तो अर्थव्यवस्था में निर्धन लोगों के जीवन स्तर में कोई परिवर्तन नहीं होगा। इसलिए आर्थिक विकास वह क्रिया है जिसमें विकास न्यायपूर्ण होता है जबकि आर्थिक संवृद्धि का संबंध केवल राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में होने वाली बढ़ती हुई वृद्धि दर से है। इसका न्यायपूर्ण वितरण से कोई संबंध नहीं है।' ब्राइन्स तथा स्टोन के अनुसार, 'आर्थिक संवृद्धि उस समय होती है जब अधिक वस्तुओं का उत्पादन किया जा सकता है। आर्थिक विकास से अभिप्राय है जीवन की गुणवत्ता, उपलब्ध वस्तुओं की गुणवत्ता तथा उत्पादन विधियों में सुधार।'

3. स्वाभाविक तथा अनियमित परिवर्तन : प्रो. शुम्पीटर के अनुसार, 'आर्थिक विकास स्थिर अवस्था में होने

वाला आकस्मिक तथा अनियमित परिवर्तन है जो पुरानी संतुलन अवस्था को सदैव के लिए परिवर्तित कर देता है। इसके विपरीत संवृद्धि दीर्घकाल में होने वाला क्रमिक तथा सतत परिवर्तन है जो बचत तथा जनसंख्या की दर में सामान्य वृद्धि के कारण उत्पन्न होता है।' अतएव विकास शब्द का प्रयोग स्वाभाविक तथा अनियमित परिवर्तनों के लिए किया जाता है। इसके लिए संवृद्धि शब्द का प्रयोग निरंतर तथा स्थिर परिवर्तनों के लिए किया जाता है।

4. निर्देशित तथा नियंत्रित : एल्फ्रेड बोन के अनुसार, 'आर्थिक विकास की शक्तियों के लिए निर्देशन, नियंत्रण तथा मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। यह अधिकतर अल्पविकसित देशों के लिए सत्य होता है। इसके विपरीत संवृद्धि स्वचालित होती है तथा इसका संबंध विकसित स्वतंत्र अर्थव्यवस्थाओं से होता है।'

5. आर्थिक विकास आर्थिक संवृद्धि का निर्धारक है : कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार आर्थिक विकास शब्द का प्रयोग आर्थिक संवृद्धि के निर्धारक तत्वों जैसे - उत्पादन की तकनीकों, सामाजिक प्रवृत्तियों और संस्थाओं में परिवर्तनों का वर्णन करने के लिए किया जाता है। इन परिवर्तनों के कारण ही राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है जो आर्थिक संवृद्धि कहलाती है। इसलिए विकास संवृद्धि का निर्धारक है। एवरीमेन शब्दकोष के अनुसार, 'संवृद्धि मापने योग्य और निरपेक्ष है। यह श्रम शक्ति, पूंजी, व्यापार, तथा उपभोग की मात्रा में होने वाली वृद्धि का सूचक है। इसके विपरीत आर्थिक विकास शब्द का प्रयोग आर्थिक संवृद्धि के निर्धारक तत्वों जैसे उत्पादन की तकनीक, सामाजिक प्रवृत्तियों तथा संस्थाओं में होने वाले परिवर्तनों के लिए किया जाता है। इन परिवर्तनों के कारण आर्थिक संवृद्धि उत्पन्न हो सकती है।'

6. विकास के बिना संवृद्धि संभव है : रोबर्ट क्लावर के अनुसार, विकास के बिना संवृद्धि है। उदाहरण के लिए, लिबेरियन अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने का मुख्य कारण प्राथमिक वस्तुओं का निर्यात है परन्तु यह उत्पादन उन बागानों में किया जाता है जिनका स्वामित्व विदेशी कंपनियों के हाथ में है। इसलिए राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने पर भी देश की संरचना या उत्पादन क्षमता में कोई वृद्धि नहीं हो सकी है। इसके विपरीत आर्थिक विकास की प्रक्रिया के साथ-साथ संवृद्धि का कुछ सीमा तक होना आवश्यक है।

7. अल्पविकसित देशों की समस्याओं से संबंधित : श्रीमती उर्सला हिक्स का विचार है कि आर्थिक विकास शब्द का यह प्रयोग अल्पविकसित देशों की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए किया जाता है। इन देशों में विकास एवं अशोषित प्राकृतिक साधनों के उपयोग की संभावना होती है जबकि संवृद्धि शब्द का प्रयोग विकसित देशों की आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करने के लिए किया जाता है। इन देशों के अधिकतर साधनों का पूर्ण उपयोग हो रहा होता है। अतएव आर्थिक विकास शब्दों का प्रयोग अल्पविकसित देशों के अवशोषित प्राकृतिक तथा मानवीय साधनों के पूर्ण विदोहन के लिए किया जाता है। इसके विपरीत आर्थिक संवृद्धि शब्द का प्रयोग विकसित देशों में पूर्ण रोजगार की स्थिति को कायम रखने के लिए किया जाता है। प्रो. मैडिसन का भी विचार है कि 'आय-स्तर का ऊंचा करना अमीर देशों में संवृद्धि कहलाता है तथा गरीब देशों में विकास कहलाता है।'

उपरोक्त विवरण को उदाहरण द्वारा स्पष्ट करना चाहें तो संक्षेप में, हेरिक तथा किण्डलबर्गर के अनुसार, 'आर्थिक संवृद्धि का अर्थ है अधिक उत्पादन। आर्थिक विकास से अभिप्राय है केवल अधिक उत्पादन ही नहीं वरन पूर्व उत्पादित वस्तुओं की तुलना में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन और इसके साथ-साथ वस्तुओं के उत्पादन और वितरण प्रणाली में तकनीकी तथा संस्थागत परिवर्तन।'

५.२.६ आर्थिक संवृद्धि तथा आर्थिक विकास की धारणाओं में अंतर :

आर्थिक संवृद्धि तथा आर्थिक विकास में मुख्य अंतर निम्नलिखित हैं :

आर्थिक संवृद्धि :

क. संकुचित आर्थिक धारणा : यह एक संकुचित आर्थिक धारणा है। इसका अर्थ केवल प्रति व्यक्ति वास्तविक आय या उत्पादन में वृद्धि है।

ख. केवल संख्यावाचक आर्थिक धारणा : आर्थिक संवृद्धि की धारणा संख्यात्मक है। इसका संबंध केवल प्रति व्यक्ति उत्पादन की दर से है।

ग. आय के वितरण की अवहेलना : आर्थिक संवृद्धि में लोगों में होने वाले आय के वितरण को ध्यान में नहीं रखा जाता। अर्थात आय में वृद्धि होने पर भी आय का वितरण असमान होने पर निर्धन लोगों की संख्या में वृद्धि हो सकती है।

घ. विकसित देशों की प्रगति का केंद्र बिन्दु : आर्थिक संवृद्धि की धारणा का प्रयोग सामान्यत: विकसित देशों की आर्थिक प्रगति के लिए किया जाता है।

आर्थिक विकास :

क. व्यापक आर्थिक धारणा : यह एक व्यापक धारणा है। इसका अर्थ प्रति व्यक्ति वास्तविक आय या उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ आर्थिक कल्याण में होने वाली वृद्धि से है।

ख. संख्यात्मक तथा गुणात्मक आर्थिक धारणा : आर्थिक विकास की धारणा संख्यात्मक तथा गुणात्मक दोनों प्रकार की धारणा है। इसका संबंध प्रति व्यक्ति उत्पादन की वृद्धि दर के साथ-साथ आर्थिक कल्याण से है।

ग. आय के वितरण को ध्यान में रखा जाता है : आर्थिक विकास में आय के वितरण को ध्यान में रखा जाता है अर्थात इस बात का ध्यान रखा जाता है कि आय के वितरण की असमानता कम होनी चाहिए।

घ. अल्पविकसित देशों की प्रगति का केंद्र बिन्दु : आर्थिक विकास की धारणा का प्रयोग सामान्यत: अल्पविकसित देशों की प्रगति के लिए किया जाता है।

उपरोक्त पृष्ठों में हमने आर्थिक विकास और आर्थिक संवृद्धि में अंतर को स्पष्ट किया है परन्तु इस अंतर से कोई विशेष उद्देश्य पूरा नहीं होता। व्यावहारिक जीवन में इन दोनों शब्दों का एक ही अर्थ किया जाता है। पॉलबरान के अनुसार, 'विकास और संवृद्धि के भाव किसी पुरानी और बेकार वस्तु से किसी नई वस्तु की ओर परिवर्तन को बतलाते हैं।' इसलिए यह अच्छा होगा कि आर्थिक विकास एवं आर्थिक संवृद्धि शब्दों का प्रयोग उस परिवर्तन के लिए किया जाए जिससे कोई अर्थव्यवस्था आर्थिक उन्नति के पहले से ऊंचे स्तर को प्राप्त करती है।

५.३ सारांश :

आर्थिक विकास सामान्य दरिद्रता के कारणों तथा उपचारों का अध्ययन करता है। आर्थिक विकास से अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा किसी देश की प्रति व्यक्ति आय तथा आर्थिक कल्याण में दीर्घकालीन वृद्धि होती है। यह ध्यान रखना चाहिए कि सामान्य रूप से आर्थिक विकास तथा आर्थिक संवृद्धि शब्दों का एक-दूसरे के लिए प्रयोग किया जाता है।

आर्थिक संवृद्धि से अभिप्राय है किसी अर्थव्यवस्था की वास्तविक सकल राष्ट्रीय उत्पाद या वास्तविक राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि। वास्तविक उत्पाद में होने वाली वृद्धि अर्थव्यवस्था की संवृद्धि का प्रतीक है। इसके विपरीत स्थिर या घटते हुए वास्तविक उत्पाद से यह ज्ञात होता है कि किसी अर्थव्यवस्था की आर्थिक स्थिति स्थिर

है या घट रही है। इस परिभाषा के अनुसार आर्थिक संवृद्धि में वस्तुओं तथा सेवाओं की पूर्ति में वृद्धि होती है। केवल कीमतों में वृद्धि होने के कारण मौद्रिक आय में होने वाली वृद्धि को संवृद्धि नहीं कहा जा सकता।

आर्थिक संवृद्धि वह प्रक्रिया है जिसके फलस्वरूप प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि होती है। इससे यह ज्ञात होता है कि किसी अर्थव्यवस्था के जीवन स्तर का सबसे अधिक उपयुक्त माप प्रति व्यक्ति वास्तविक उत्पाद में होने वाली वृद्धि है। यदि किसी अर्थव्यवस्था में जनसंख्या वृद्धि दर कुल वास्तविक उत्पाद की वृद्धि दर से अधिक होती है तो प्रति व्यक्ति जीवन स्तर कम हो जाएगा तथा आर्थिक संवृद्धि नहीं होगी।

आर्थिक विकास की धरणा आर्थिक संवृद्धि की धारणा से कुछ अधिक है। इसका अर्थ है कि प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि होने के साथ-साथ संरचनात्मक तथा संस्थागत परिवर्तन एवं आर्थिक कल्याण या लागों की जीवन गुणवत्ता में होन वाली वृद्धि। आर्थिक विकास का मुख्य उद्देश्य निर्धनता का उन्मूलन है।

एक लंबे समय तक आर्थिक विकास आर्थिक संवृद्धि, आर्थिक उन्नति तथा दीर्घकालीन परिवर्तन आदि शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में किया जाता रहा है। प्रो. शुम्पीटर ने 1911 में अपनी पुस्तक द थ्योरी ऑफ इकॉनोमिक डेवलेपमेंट में आर्थिक विकास तथा आर्थिक संवृद्धि शब्दों में अंतर स्पष्ट किया है। इसके अतिरिक्त श्रीमती उर्सला हिक्स, एलफ्रेड बोन, किण्डलबर्गर आदि अर्थशास्त्रियों ने भी इन शब्दों के अर्थ की भिन्नता को स्पष्ट किया है। रोबर्ट क्लावर ने लिबेरियन अर्थव्यवस्था से संबंधित लिखी गई अपनी पुस्तक का नाम ग्रोथ विदआउट डेवलेपमेंट रखकर यह स्पष्ट कर दिया कि किसी अर्थव्यवस्था में संवृद्धि होते हुए भी यह संभव है कि उसका विकास न हो। इसलिए अर्थशास्त्री इन दोनों धारणाओं में अंतर करते हैं।

५.४ सूचक शब्द :

आर्थिक संवृद्धि : आर्थिक संवृद्धि से अभिप्राय है किसी अर्थव्यवस्था की वास्तविक सकल राष्ट्रीय उत्पाद या वास्तविक राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि। वास्तविक उत्पाद में होने वाली वृद्धि अर्थव्यवस्था की संवृद्धि का प्रतीक है। इसके विपरीत स्थिर या घटते हुए वास्तविक उत्पाद से यह ज्ञात होता है कि किसी अर्थव्यवस्था की आर्थिक स्थिति स्थिर है या घट रही है। इस परिभाषा के अनुसार आर्थिक संवृद्धि में वस्तुओं तथा सेवाओं की पूर्ति में वृद्धि होती है। केवल कीमतों में वृद्धि होने के कारण मौद्रिक आय में होने वाली वृद्धि को संवृद्धि नहीं कहा जा सकता।

आर्थिक विकास : आर्थिक विकास की धरणा आर्थिक संवृद्धि की धारणा से कुछ अधिक है। इसका अर्थ है कि प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि होने के साथ-साथ संरचनात्मक तथा संस्थागत परिवर्तन एवं आर्थिक कल्याण या लागों की जीवन गुणवत्ता में होन वाली वृद्धि। आर्थिक विकास का मुख्य उद्देश्य निर्धनता का उन्मूलन है।

आर्थिक विकास तथा आर्थिक संवृद्धि में अंतर : एक लंबे समय तक आर्थिक विकास आर्थिक संवृद्धि, आर्थिक उन्नति तथा दीर्घकालीन परिवर्तन आदि शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में किया जाता रहा है। प्रो. शुम्पीटर ने 1911 में अपनी पुस्तक द थ्योरी ऑफ इकॉनोमिक डेवलेपमेंट में आर्थिक विकास तथा आर्थिक संवृद्धि शब्दों में अंतर स्पष्ट किया है। इसके अतिरिक्त श्रीमती उर्सला हिक्स, एलफ्रेड बोन, किण्डलबर्गर आदि अर्थशास्त्रियों ने भी इन शब्दों के अर्थ की भिन्नता को स्पष्ट किया है। रोबर्ट क्लावर ने लिबेरियन अर्थव्यवस्था से संबंधित लिखी गई अपनी पुस्तक का नाम ग्रोथ विदआउट डेवलेपमेंट रखकर यह स्पष्ट कर दिया कि किसी अर्थव्यवस्था में संवृद्धि होते हुए भी यह संभव है कि उसका विकास न हो। इसलिए अर्थशास्त्री इन दोनों धारणाओं में अंतर करते हैं।

५.५ स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न :

- आर्थिक विकास से आप क्या समझते हैं? संक्षिप्त टिप्पणी करें।
- आर्थिक वृद्धि किसे कहते हैं? उदाहरण सहित वर्णन करें।
- आर्थिक विकास और वृद्धि में क्या अंतर है? स्पष्ट करें।
- आर्थिक विकास के मुख्य तत्व कौन-कौन से हैं?

५.६ संदर्भित पुस्तकें :

बिजनेस इकॉनोमिक्स : आर. के. लेखी, एस.एल. अग्रवाल।

दी इंडियन इकॉनोमी : रे।

प्लानिंग ग्रोथ एंड दी इकॉनोमी : रे।

आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था : डा. एससी गुप्ता।

अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र : आर. डी. शर्मा।

अंतरराष्ट्रीय व्यापार : दालचंद्र बागडी।

आर्थिक अवधारणाएं व पद्धतियां : एम. सी. गुप्ता।

भारतीय राजनीतिक अर्थशास्त्र : गिरीश नंदन शर्मा।

बीए मास कम्यूनिकेशन – द्वितीय वर्ष *बीएमसी –१०७* **अर्थशास्त्र**
खंड–डी इकाई – दो अध्याय – छह

दसवीं पंचवर्षीय योजना

लेखक : डा. वीना शर्मा
एस. आई. एम. शैली में परिवर्तन :

अध्याय संरचना :

इस अध्याय में दसवीं पंचवर्षीय योजना से परिचित होंगे। इस अध्याय में हम दसवीं पंचवर्षीय योजना के विभिन्न पहलु, विकास व अन्य योजनाएं, नौवीं पंचवर्षीय योजना की सफलता व असफलता की चर्चा करेंगे। अध्याय की संरचना इस प्रकार होगी:

६.० उद्देश्य
६.१ परिचय
६.२ विषय वस्तु की प्रस्तुति
६.२.१ दसवीं पंचवर्षीय योजना
६.२.२ दसवीं पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य
६.२.३ दसवीं पंचवर्षीय योजना की विशेषताएं
६.२.४ नौवीं पंचवर्षीय योजना
६.३ सारांश
६.४ सूचक शब्द
६.५ स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
६.६ संदर्भित पुस्तकें

६.० उद्देश्य :

इस अध्याय के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

- दसवीं पंचवर्षीय योजना से परिचित होना
- दसवीं पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य जानना
- दसवीं पंचवर्षीय योजना की विशेषताएं पता लगाना
- नौवीं पंचवर्षीय योजना से परिचित होना

६.१ परिचय :

भारतवर्ष की आजादी के बाद बनी सरकार के सामने देश को पिछडेपन, गरीबी, भुखमरी, बीमारी आदि के चंगुल से निकालकर आत्मनिर्भर बनाने की चुनौती थी। सरकार ने इस चुनौती का सामना करने के लिए पांच–

पांच वर्ष की विशेष योजनाएं बनाई जिन्हें पंचवर्षीय योजनाओं के नाम से जाना जाता है। इन योजनाओं के दीर्घकालीन लक्ष्य होते हैं और उन्हें प्राप्त करने के लिए एक से अधिक पंचवर्षीय योजनाएं काम करती हैं। इन योजनाओं में देश के संपूर्ण विकास हेतु जनसंख्या पर नियंत्रण, बेरोजगारी पर नियंत्रण, खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता, उद्योगों का विकास, प्राकृतिक संसाधनों का उचित दोहन तथा देश के बुनियादी ढांचे को मजबूत करने के लक्ष्य रखे गए।

अब तक कुल दस पंचवर्षीय परियोजनाएं संपूर्ण हो चुकी हैं। जनसंख्या वृद्धि व बेरोजगारी पर नियंत्रण के अलावा इन योजनाओं में अधिकतर लक्ष्यों को लगभग प्राप्त किया जाता रहा। विपरीत परिस्थितियां, जैसे युद्ध, आपातकाल आदि के कारण बीच में तीन एकवर्षीय परियोजनाएं भी लागू की गई। इन सभी योजनाओं का लक्ष्य देश का संपूर्ण विकास ही है।

६.२ विषय वस्तु की प्रस्तुति :

इस अध्याय में हम दसवीं पंचवर्षीय योजना व नौवीं पंचवर्षीय योजना के बारे में चर्चा करेंगे। अध्याय में विषय वस्तु की प्रस्तुति निम्न प्रकार से होगी :

दसवीं पंचवर्षीय योजना
दसवीं पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य
दसवीं पंचवर्षीय योजना की विशेषताएं
नौवीं पंचवर्षीय योजना

६.२.१ दसवीं पंचवर्षीय योजना- एक परिचय :

वर्तमान में देश में 11वीं पंचवर्षीय योजना चल रही है। 1 सितंबर 2007 को राष्ट्रीय विकास परिषद की 49वीं बैठक में 10वीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण पत्र को मंजूरी प्रदान की गई थी। इस योजना की अवधि अप्रैल 1, 2002 से 2007 तक रखी गई। भूतकाल में जो लाभ मिले हैं, वे नौवीं योजना में बढ़कर लगभग 6.5 प्रतिशत हो गए हैं। इससे भारत तेजी से विकसित होने वले दस देशों में से एक रहा है। जनसंख्या की वृद्धि दर पहली बार 2 प्रतिशत से कम रही है। साक्षरता दर 1991 में 52 प्रतिशत से बढ़कर 2001 में 65 प्रतिशत हो गई है। सॉफ्टवेयर सेवाएं तथा आईटी योग्य सेवाएं शक्ति के एक नए साधन के रूप में उभरी हैं। इन्होंने विश्व अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धा के लिए भारत को दृढ शक्ति प्रदान की है।

फिर भी विकास के कई ऐसे पहलू हैं जहां हमारी प्रगति स्पष्ट रूप से निराशाजनक रही है। हमारी कुछ मुख्य कमियां निम्न हैं :

1. बेरोजगारी का भार सापेक्षतया ऊंचा अर्थात 7 प्रतिशत से ऊपर रहा है।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में 1-5 वर्ष की आयु के आधे से अधिक बच्चे अल्पपोषित हैं।
3. लड़कियां अल्पपोषण से अधिक पीड़ित हैं।
4. पिछले कई वर्षों से शिशु मृत्यु दर में कमी आई है। यह घटकर 72 प्रति हजार रह गई है।
5. ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 6 प्रतिशत और शहरी क्षेत्रों में लगभग 2 प्रतिशत मकानों को बिजली का कनेक्शन नहीं मिला है।

6. शहरी निवास स्थानों में केवल 6 प्रतिशत घरों में पानी के नलके हैं।

7. 1वीं योजना को पिछले अनुभव से शिक्षा लेनी चाहिए। इसको उसे सशक्त करना होगा। जो हो गया सो ठीक हो गया है, लेकिन इसे पिछली असफलताओं के दोहराए जाने से बचना होगा। इसी उद्देश्य व लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए 1वीं योजना का निर्माण केवल साधन-स्रोत योजना की बजाय सुधार योजना के रूप में किया गया।

६.२.२ दसवीं योजना के प्रमुख उद्देश्य :

1. निर्धनता में कमी : निर्धनता अनुपात को वर्ष 2़7 तक 5 प्रतिशत बिन्दुओं तक और वर्ष 2़12 तक 15 प्रतिशत बिन्दुओं तक घटाया जाएगा।

2. प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर : दसवीं पंचवर्षीय योजना का यह उद्देश्य है कि आगामी दस वर्षों में प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर को दो गुणा किया जाएगा।

3. राष्ट्रीय आय में वृद्धि की दर : 2़2-7 की अवधि में औसतन 8 प्रतिशत की वृद्धि दर प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया।

4. निर्धनता अनुपात में कमी लाना : इस योजना में निर्धनता अनुपात को सन 2़7 तक 2़ प्रतिशत तक तथा 2़12 तक 1़ प्रतिशत लाना है।

5. जीवन की गुणवत्ता में सुधार : दसवीं योजना का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सभी लोगों के जीवन की गुणवत्ता में महत्वपूर्ण सुधार एवं प्रगति हो। इसमें न केवल खाद्यान्न तथा अन्य उपभोक्ता वस्तुओं के उपभोग के उचित स्तर को शामिल किया जाएगा बल्कि आधारभूत सामाजिक सेवाओं को भी प्राप्त करने का प्रयास किया जाएगा, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल की उपलब्धता तथ अच्छी सफाई व्यवस्था।

6. जनसंख्या की वृद्धि दर में कमी : 2़1 से 2़11 के बीच जनसंख्या की वृद्धि दर को 16.2 प्रतिशत कम करना इस योजना का मुख्य उद्देश्य है।

7. लिंग अंतरों में कमी लाना : दसवीं योजना का उद्देश्य 2़7 तक शिक्षा तथा मजदूरी की लिंग दरों में कम से कम 5 प्रतिशत तक कमी लाना है।

8. लाभकारी रोजगार की व्यवस्था करना : दसवीं योजना का उद्देश्य योजना अवधि में श्रमशक्ति को, लाभकारी उच्च कोटि का रोजगार प्रदान करना है।

9. सर्वव्यापी शिक्षा का प्रावधान : दसवीं योजना का उद्देश्य 2़7 के अंत तक सभी के लिए प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध करवाने का लक्ष्य रखा गया है।

10. शिशु मृत्यु दर को घटाना : दसवीं योजना का उद्देश्य शिशु मृत्यु दर को 2़7 तक घटाकर 28 प्रति हजार करना है।

11. पीने के पानी का प्रावधान :दसवीं योजना का उद्देश्य प्रत्येक गांव में पेयजल का प्रबंध करना है।

12. साक्षरता दर में वृद्धि : दसवीं योजना का उद्देश्य योजना अवधि में साक्षरता दर को 2़7 तक 72 प्रतिशत तथा 2़12 तक 8 प्रतिशत बढ़ाना है।

13. शिशु पैदा करने वाली माताओं की मृत्यु दर को घटाना : दसवीं योजना का उद्देश्य शिशु पैदा करने वाली माताओं की मृत्यु दर को 2़7 तक 2 प्रति हजार और 2़12 तक 1 प्रति हजार करना है।

14. पर्यावरण संरक्षण : पर्यावरण संरक्षण सुनिश्चित करने के लिए वन वृक्षों के अधीन आने वाले क्षेत्र वर्ष

2007 तक 25 प्रतिशत तथा 2012 तक 33 प्रतिशत बढ़ाए जाएंगे। वर्ष 2007 तक सभी प्रदूषित नदियों की पूरी सफाई का लक्ष्य रखा गया।

15. संवृद्धि तथा समानता लाना : दसवीं योजना का मुख्य उद्देश्य समानता तथा सामाजिक न्याय के साथ संवृद्धि या विकास केा प्राप्त करना है।

16. सभी राज्यों में संतुलित विकास : सभी राज्यों में संतुलित विकास सुनिश्चित करने के लिए दसवीं योजना के व्यापक विकास लक्ष्यों के प्रत्येक राज्य के विवरण में शामिल करना होगा।

६.२.३ दसवीं पंचवर्षीय योजना की विशेषताएं :

मान्यताएं : दसवीं योजना की 8 प्रतिशत वृद्धि दर मुख्यत: निम्न मान्यताओं पर आधारित है :

1. वर्धमान पूंजी उत्पादन अनुपात 4:1 होगी।
2. निवेश की दर 32 प्रतिशत होगी।
3. कार्यक्षमता विकास में उचित सुधार किया जाएगा।
4. संकटपूर्ण/नाजुक क्षेत्र में प्रगति सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त राजनीतिक निश्चय को गतिशील बनाया जाएगा।
5. घरेलू बचतों की दर 29.8 प्रतिशत और विदेशी बचतों की दर 2.8 प्रतिशत होगी।
6. राजकोषीय घाटा 2.6 प्रतिशत होगा।
7. केंद्रीय सरकार की सकल घरेलू उत्पाद की राजस्व प्राप्तियां 1.2 प्रतिशत और राजस्व व्यय 1.7 प्रतिशत होगी।
8. सरकारी कर्मचारियों की संख्या में प्रति वर्ष 3 प्रतिशत तक कटौती होगी।
9. सेवा कर के दायरे में व्यापक विस्तार होगा।
1. विनिवेश में वृद्धियां। 1वीं योजना के पहले तीन वर्षों में 16-17 हजार करोड़ रुपये की वार्षिक विनिवेश प्राप्तियां।

योजना की विकास व्यूह रचना :

योजना आयोग के अनुसार, 'योजना की व्यापक व्यूह रचना वृद्धिशील निवेश कार्यक्षमता में सुधार के संयोग पर निर्भर करेगी। यह अर्थव्यवस्था में छिपी क्षमताओं को खोलने, दबी उत्पादक शक्तियों तथा उद्यमीय शक्ति को मुक्त करने तथा सभी क्षेत्रों में तकनीकी को ऊंचा उठाने पर आधारित होगी, ये सभी प्रकार की आर्थिक क्रिया की कुशलता में सुधार लाएगी।'

दसवीं योजना में अपनाई जाने वाली व्यूह रचना के मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं :

1. आर्थिक क्रियाओं में सरकार की भूमिका को पुन: परिभाषित करना : आर्थिक क्षेत्र में सरकार की जिम्मेदारियों को घटाया जाएगा, परन्तु सामाजिक क्षेत्र में सरकार को अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। आधारिक संरचना जैसे क्षेत्रों में अंतराल अधिक है और निजी क्षेत्र से यह आशा नहीं की जाती कि वह इसमें महत्वपूर्ण भाग ले सकेगा। इन क्षेत्रों में सरकार की भूमिका को पुन: स्थापित करना होगा, सरकार को आधारिक संरचना के विकास के कुछ ऐसे क्षेत्रों को बढ़ाना होगा जिनमें निजी निवेश के होने की संभावना है। जिन क्षेत्रों में निजी क्षेत्र एक बड़ी भूमिका निभा सकता है, वहां निर्मित ढांच के आधार पर सरकार की भूमिका में ऐसे परिवर्तन

की आवश्यकता है कि इससे निवेश सुविधा अधिक से अधिक संभव हो सके जबकि सार्वजनिक क्षेत्र कुछ समय तक सेवा प्रदान करने वाला क्षेत्र बना रहे। इन सभी क्षेत्रों में सरकार की नियंत्रक के रूप में भूमिका यह सुनिश्चित करने के लिए होगी कि उपभोक्ता के साथ उचित व्यवहार होता रहे तथा पारदर्शिता और उत्तरदायित्व को सुनिश्चित किया जाता रहे।

2. दसवीं योजना की व्यूह रचना को इस प्रकार पुनः रेखांकित करना होगा कि स्त्रियों के लिए जो 'सामाजिक सुरक्षाजाल' चल रहे हैं, वे आगे लिंग समानता लक्ष्यों को प्राप्त करना सुनिश्चित कर सकें। स्त्रियों की पहुंच सूचना संसाधन तथा सेवाओं तक हो सके, इस क्रिया के लिए एक राष्ट्रीय योजना बनाई जा रही है। स्त्रियों की पहुंच सूचना संसाधन तथा सेवाओं तक हो सके। दसवीं योजना इस स्कीम को प्रभावी ढंग से लागू करने पर बल देगी।

3. ऐसे प्रयत्न किए जाएंगे कि पर्यावरण संरक्षण आर्थिक विकास के साथ कंधे से कंधा मिला कर चले।

4. कृषि विकास को योजना के एक आधारभूत तत्व के रूप में देखा जाना चाहिए। इससे कृषि के विकास में व्यापक रूप से लाभ प्राप्त होंगे। विशेषकर कृषि श्रमिक समेत ग्रामीण निर्धन वर्ग को। चूंकि अधिकांश स्त्री श्रमिक कृषि में लगे हुए हैं, इस क्षेत्र में किया गया निवेश लिंग समानता के लिए काफी महत्वपूर्ण है।

5. दसवीं योजना की विकास संरचना उन क्षेत्रों के विकास को अवश्य सुनिश्चित करे जो उच्च कोटि के रोजगार पैदा करने की संभावना रखते हैं। उस नीति निर्माण की ओर विशेष ध्यान देना होगा जो आर्थिक क्रियाओं की उस व्यापक रेंज को प्रभावित करते हैं जिसमें रोजगार संभावनाएं बहुत अधिक हैं। इनमें निर्माण, वास्तविक संपत्ति व गृह निर्माण, यातायात, लघु उद्योग, आधुनिक फुटकर बिक्री, मनोरंजन जैसे क्षेत्र शामिल हैं। यह अनेक प्रकार की उन सेवाओं को उस योग्य बनाएगी जिन्हें समर्थन संबंधी नीतियों के द्वारा प्रोत्साहन की आवश्यकता है। एक अन्य क्रिया जिसमें इन सभी क्रियाओं को प्रोत्साहित करने का संभाव्य है तथा जिसका इनके साथ आगे का तथा पीछे का जुड़ाव है, वह पर्यटन है। पर्यटन की क्रिया के विकास के लिए अनेक एजेंसियों के साथ तालमेल की आवश्यकता है। दसवीं योजना को यह सुनिश्चित करना होगा कि उद्योग का संपूर्ण विकास हो सके।

6. शेष विश्व से प्रतिस्पर्धात्मक चुनौतियों का सामना करने के लिए घरेलू सुधार इस प्रकार से बढ़ाए जाएंगे जिनसे प्रतिस्पर्धात्मक चुनौतियों का सामना, घरेलू तथा विदेशी उद्यमियों को निवेश करने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा।

दसवीं योजना के क्षेत्रीय नीति संबंधी विवाद

दसवीं योजना ने विभिन्न क्षेत्रों में निम्न नीतियां अपनाई :

(1) कृषि तथा भूमि प्रबंध : वर्ष 199 में कृषि उत्पादन वृद्धि ऊंचे उत्पादन समर्थन मूल्य तथा अनुदानों के फलस्वरूप हुई थी। दसवीं योजना इस नीति में परिवर्तन लाने का प्रावधान करती है। दसवीं योजना की अवधि में कृषि विकास के लिए सिंचाई, बीजों, शक्ति तथा सड़कों में अधिक सार्वजनिक निवेश किया जाएगा, परन्तु उर्वरकों, जल तथा शक्ति के लिए दी जाने वाली आर्थिक सहायता को कम किया जाएगा। नहर प्रणाली का सही ढंग से रख-रखाव किया जाएगा। खाद्यान्न तथा अन्य वस्तुओं की न्यूनतम समर्थन कीमतों को इस प्रकार से समन्वित किया जाएगा ताकि कृषि में विविधिकरण, पर्यावरण संबंधी सुरक्षा को प्रोत्साहन मिले तथा खाद्यान्न अनुदान को कम किया जाए। दसवीं योजना पूर्व क्षेत्र तथा केंद्र क्षेत्र के वर्षा अनुमोदित क्षेत्रों, जिनमें उत्पादकता के बढ़ने की अधिक संभावना है, उनके विकास के लिए अधिक ध्यान केंद्रित किया जाएगा।

कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए निम्न प्रयत्न किए जाएंगे :

1. वर्तमान में जोती जाने वाली भूमि को उत्पादक प्रयोग में लाया जाएगा, चाहे वह भूमि कृषि में है अथवा वनों

में।

2. भू-जल की उत्पादकता को इस प्रकार बढ़ाया जाएगा ताकि दीर्घकाल तक सही स्थिति बनी रहे।

3. योजना में इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाएगा कि स्त्री किसानों के काम अवसरों तथा उत्पादकता में वृद्धि हो। स्त्रियों की पहुंच को उत्पादक भूमियों तक बढ़ाने के लिए स्त्री-समूहों की लिजिंग को नियमित करने व न जोती गई कृषि भूमि में फसल बंटवारे के लिए अवसर दिए जाएंगे।

4. वर्तमान कृषि भूमि की फसल गहनता को बढ़ाया जाएगा।

5. सिंचाई क्षमता तथा जल प्रबंध में सार्वजनिक निवेश में मुख्य पुनरूत्थान करना मुख्य लक्ष्य है।

6. दसवीं योजना की एक और प्राथमिकता उस ग्रामीण आधारिक संरचना का विकास करना है जो न केवल कृषि बल्कि सभी ग्रामीण आर्थिक क्रियाओं को प्रोत्साहित करता है।

7. कृषि उत्पादकता में तीव्र गति से और निरंतर विकास करने के लिए कृषि अनुसंधान और विकास प्रणाली को मजबूत करना तथा प्रौद्योगिकी प्रसार विधि में सुधार लाना आवश्यक है। विस्तार सेवा को संपूर्ण रूप से पुनः व्यवस्थित करने की भी आवश्यकता है।

(2)निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम :

1. ग्रामीण क्षेत्रों में गैर-कृषि रोजगार प्रदान करने के लिए तथा छोटे तथा ग्रामीण उद्योगों के विकास के लिए विशेष प्रयत्न किए जाने चाहिए।

2. सीमांत तथा छोटे किसानों, कारीगरों और अप्रशिक्षित श्रमिकों की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के लिए विशेष प्रयत्न किए जाने चाहिए।

3. स्त्री ग्रुपों की निर्धनता उन्मूलन स्कीमों को लागू करन के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, विशेषकर आपदा प्रभावित क्षेत्रों में काम के लिए अनाज स्कीम जारी करना।

4. ग्राम सभाओं को फण्ड तभी दिए जाने चाहिए जब जनता का भी कुल खर्च में नकदी या काम के रूप में 5 प्रतिशत से 15 प्रतिशत तक योगदान हो।

5. संकटकालीन क्षेत्रों में एक मजदूरी रोजग्राम प्रोग्राम लागू किया जाना चाहिए। उत्पादक कामों के चलाने तथा उनके रखरखाव पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए जैसे ग्रामीण सड़कें, वाटरशेड विकास, तालाबों की सफाई व ठीक देखभाल, अधिक वन उगाना, सिंचाई तथा नालियों की व्यवस्था। मजदूरी का भुगतान अधिकतर नकदी के साथ कुछ खाद्यान्न के रूप में होना चाहिए।

6. राज्य सरकारों द्वारा चलाई गई सफल ग्रामीण विकास योजनाओं जो ठीक ढंग से लागू करने तथा उनके बजट-संबंधी आवंटन की वृद्धि के लिए ग्रामीण विकास कोषों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

7. स्वर्ण जयंती ग्राम रोजगार योजना को सूक्ष्म वित्त कार्यक्रम में परिवर्तित किया जाना चाहिए और बिना किसी आर्थिक सहायता दिए इनका संचालन बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा किया जाना चाहिए।

(3) सार्वजनिक वितरण प्रणाली और अनाज सुरक्षा : अब आवश्यकता इस बात की है कि अनाज के वर्तमान भंडार को आधा किया जाए और इसका प्रयोग कुपोषण को कम करने के लिए किया जाए, परन्तु ध्यान रहे इसका किसानों पर गलत प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। इसके लिए निम्न कानूनी तथा नीति परिवर्तनों की आवश्यकता होगी, जिससे निजी क्षेत्र की भूमिका में वृद्धि होगी और बाजारों की विकृति, वर्तमान स्थिति की तुलना में कम होगी :

1. कृषि वस्तुओं के निर्यात प्रतिबंधों को खत्म करने के लिए एक उचित नीति की घोषणा करना, घरेलू कमियों की पूर्ति आयातों द्वारा की जाए, नियार्तों पर नियंत्रण लगा कर नहीं।

2. लाइसेंसिंग नियंत्रणों को हटाना तथा सभी कृषि आधारित एवं फूड-प्रोसेसिंग उद्योग को असुरक्षित करना। इसमें चीनी, इसके व्युत्पन्न और दूध-प्रोसेसिंग भी शामिल हैं। इन्हें एक समयबद्ध अवधि में क्रम से पूरा किया जाएगा।

3. चीनी पर नियंत्रण को धीरे-धीरे कम करना और चीनी को सार्वजनिक नियंत्रण प्रणाली से हटाना।

4. स्वीकृत हुए केंद्रीय अधिनियम को इस विचार से लागू किया जाएगा कि इससे राज्यों के बीच गति पर नियंत्रण को रोका जाए।

5. अनिवार्य वस्तु अधिनियम में सुधार लाया जाएगा ताकि इसे आपातकालीन प्रावधान के रूप में बनाया जा सके। फिर इसे एक सीमित अवधि के लिए एक अधिसूचना द्वारा औपचारिक रूप से लागू किया जा सके।

6. एकाधिकारी खरीद के सभी रूपों को धीरे-धीरे समाप्त करना।

7. कृषि वस्तुओं के भंडारण तथा भविष्य के व्यापारीकरण तथा संस्थागत साख और ऐसी क्रियाओं की वित्त व्यवस्था पर प्रतिबंधों को हटाना।

8. नई दूध प्रोसेसिंग क्षमता पर स्थापित वर्तमान प्रतिबंधों को हटाना।

9. कृषि आधारित सभी वस्तुओं के निर्यात पर सभी प्रकार के प्रतिबंधों को हटाना।

यह महत्वपूर्ण बात है कि ये प्रेरणाएं संसाधन तटस्थ हैं। इनके लिए महत्वपूर्ण सार्वजनिक स्रोतों के निवेश की आवश्यकता नहीं है, परन्तु ये कृषि आय प्रजनन के सुधारने में सहायक होंगे। इनके साथ-साथ ये परिवर्तन भारतीय खाद्य निगम के पास अधिशेष को कम करेंगे और छिद्रों को कम करेंगे। इससे अनाज अनुदान में काफी बचत होगी। इस अनुदान का प्रयोग अधिक निर्धन लोगों के लिए प्रत्यक्ष आय हस्तांतरण के रूप में हो सकेगा। निर्धन क्षेत्रों में भूमि तथा जल उत्पादकता सुधार में भी प्रयोग हो सकेगा।

(4) औद्योगिक नीति संबंधी विवाद : दसवीं योजना की 8 प्रतिशत विकास दर को प्राप्त करने के लिए औद्योगिक क्षेत्र को अपनी विकास दर 1 प्रतिशत रखनी होगी। यह तभी संभव हो सकता है जब औद्योगिक विकास में पिछली अवधि की तुलना में तेजी से वृद्धि हो। आठवीं तथा नौवीं योजना की अवधि में औद्योगिक क्षेत्र की वृद्धि दर लगभग 7 प्रतिशत रही है। ऐसे परिवेश में 8 प्रतिशत विकास लक्ष्य की प्राप्ति कठिन होगी। दसवीं योजना की सफलता के लिए यह भी आवश्यक है कि औद्योगिक क्षेत्र का विकास ऐसे वातावरण में हो जिसमें पिछले वातावरण की तुलना में काफी विभिन्नता हो। इस संबंध में दो बातें विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि भारतीय उद्योगों को मजबूत अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिता का सामना करना पड़ेगा, इसका कारण यह है कि एक अप्रैल, 21 से भारतीय आयातों पर से परिमाणात्मक प्रतिबंधों के खत्म कर देने के फलस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था के खुलेपन में वृद्धि हुई है। इसका दूसरा कारण यह है कि दसवीं योजना की अवधि में अनिवेश की प्रक्रिया में वृद्धि होने के कारण निजी क्षेत्र में पूंजी निर्माण की वृद्धि होगी तथा सार्वजनिक क्षेत्र में इसमें कमी आएगी। अत: दसवीं योजना को एक ऐसे वातावरण का निर्माण करना होगा जिसमें निजी क्षेत्र की कंपनियां तथा सार्वजनिक क्षेत्र की पुरानी कंपनियां, जिनका निजीकरण कर दिया गया है, अधिक कार्यकुशल तथा प्रतियोगी बन सकें। दसवीं योजना को यह भी ध्यान में रखना होगा कि लघु उद्योगों को प्रोत्साहित करने वाली नीतियां अपनाई जाएं। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अधिक उदारीकरण की नीति अपनाई जानी चाहिए। इन उद्योगों

के लिए उचित साख की व्यवस्था भी की जानी चाहिए।

संक्षेप में, कई दिशाओं में भावी विकास नीति पिछली विकास नीति से विभिन्न होनी चाहिए। हमें एक ऐसे वातावरण के लिए नियोजन करना चाहिए जिसमें सब लोग व्यक्ि गत रूप से तथा समस्त राष्ट्र सामूहिक रूप से उन्नति के मार्ग पर अपनी कार्यक्षमता का उचित प्रयोग कर सके।

६.२.४ नौवीं पंचवर्षीय योजना-एक परिचय :

नौवीं योजना के मुख्य लक्ष्य :

	मदें	**लक्ष्य**
1	विकास दर	6.5 प्रतिशत
2.	कृषि विकास दर	4.5 प्रतिशत
3.	औद्योगिक विकास दर	9.3 प्रतिशत
4.	बचत दर	26.2 प्रतिशत
5.	निवेद दर	28.2 प्रतिशत
6.	बेरोजगारी दर	1.87 प्रतिशत से कम करके 1.66 प्रतिशत लाना
7.	निर्यात वृद्धि दर	11.8 प्रतिशत
8.	आयात वृद्धि दर	1.8 प्रतिशत
9.	जनसंख्या वृद्धि दर	1.45 प्रतिशत

1`. निर्धनता उन्मूलन : निर्धनता की रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले व्यक्तियों की संख्या 29 प्रतिशत से घटाकर 18 प्रतिशत तक लाना।

11. बिजली उत्पादन क्षमता 125264 मेगावाट करना

नौवीं पंचवर्षीय योजना की सफलताएं और असफलताएं :

क. सफलताएं :

1. राष्ट्रीय और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि : इस योजना में 1993-94 की कीमतों पर 1997-98 में राष्ट्रीय आय 8989 करोड़ रुपये थी जो 21-2 में बढ़कर 125888 करोड़ रुपये हो गई। इसी प्रकार नौवीं योजना में उन्हीं वर्षों के दौरान प्रति व्यक्ति आय 9242 से बढ़कर 1214 रुपये हो गई। नौवीं योजना में राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर 5.4 प्रतिशत वार्षिक थी, जबकि प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर 3.5 प्रतिशत वार्षिक रही।

2. कृषि में वृद्धि : नौवीं पंचवर्षीय योजना में कृषि की वार्षिक वृद्धि दर 3.5 प्रतिशत वार्षिक योजना के दौरान खाद्यान्न के उत्पादन में 9 प्रतिशत, गन्ने क उत्पादन में 5 प्रतिशत, कपास के उत्पादन में 1 प्रतिशत वृद्धि हुई। नौवीं योजना के अंत में गेहूं की खरीद 2.6 करोड़ टन हो गई।

गेहूं का भंडार 3241 लाख टन तथा चावल का भंडार 2562 लाख टन हो गया। नौवीं योजना में गेहूं और चावल के स्थान पर अनय फसलों की उत्पादकता एवं भंडार क्षमता पर अधिक बल दिया गया।

3. औद्योगिक वृद्धि : नौवीं पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दर 5 प्रतिशत रही। उपक्षेत्रों, जैसे खनन में 2.5 प्रतिशत, बिजली में 5.5 प्रतिशत, विनिर्माण में 5.2 प्रतिशत की वृद्धि हुई। नौवीं योजना के अंत में 21-2 में इलेक्ट्रोनिक तथा सूचना प्रौद्योगिकी में लगभग 87 करोड़ रुपये उत्पादन हुआ।

इलेक्ट्रॉनिक हार्डवेयर और कंप्यूटर सॉफ्टवेयर का 48,5 करोड़ रुपये का निर्यात हुआ।

भारत में खाद्यान्न तथा व्यापारिक फसलों का उत्पादन :

मद	**97–98**	**2001–02**	**वृद्धि**
खाद्यान्न	192 लाख टन	29 लाख टन	9 प्रतिशत
गन्ना	28 लाख टन	295 लाख टन	5 प्रतिशत
कपास	19 लाख गांठ	12 लाख गांठ	1 प्रतिशत

4. आधारभूत ढांचे में वृद्धि : नौवीं योजना में इसके विकास के लिए निजी निवेश को बढ़ावा दिया गया। कोयले के उत्पादन में 4.2 प्रतिशत बिजली के उत्पादन में 3.1 प्रतिशत सीमेंट में 7.4 प्रतिशत तथा तैयार इस्पात में 2.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

5. विदेशी व्यापार में वृद्धि : औद्योगिक प्रगति के परिणामस्वरूप विदेशी व्यापार में भी वृद्धि हुई। भारत के संसार के लगभग सभी देशों के साथ व्यापारिक संबंधों में सुधार हुए। 1997–98 में भारत में विदेशी व्यापार का मूल्य 284276 करोड़ रुपये था जो 21–2 में बढ़कर 375516 करोड़ रुपये हो गया। नौवीं योजना में मुद्रास्फीति की दर 1.3 प्रतिशत रह गई। इस प्रकार नौवीं योजना में बढ़ती हुई कीमतों पर नियंत्रण रहा। यह इस योजना की मुख्य सफलता रही।

6. परिवहन एवं संचार : नौवीं योजना में इस क्षेत्र ने काफी प्रगति की। इसकी मुख्य सफलताएं निम्नलिखित हैं :

अ. परिवहन :

1. सड़कें : नौवीं योजना के अंत में सड़कों की लंबाई 34 लाख किलोमीटर हो गई।

2. रेलवे : इस योजना में रेलमार्ग की लंबाई 6328 किलोमीटर हो गई।

3. जहाजरानी : इस क्षेत्र की क्षमता 74 लाख जीआरटी हो गई।

ब. संचार :

1. डाकखाने : डाकखानों की संख्या 2 लाख से अधिक हो गई।

2. टेलीफोन : टेलीफोन की संख्या बढ़कर 3.6 करोड़ हो गई। एसटीडी, फैक्स, इंटरनेट की सुविधाएं उपलब्ध करवाई गई। वर्तमान में सार्वजनिक क्षेत्र का दूरसंचार विभाग एशिया में सबसे बड़ा है। इसकी 42 लाख लाइनों की क्षमता है तथा 3259 टेलीफोन एक्सचेंज हैं।

इस प्रकार नौवीं योजना में परिवहन एवं संचार के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है।

8. सामाजिक सेवाएं : नौवीं योजना में सामाजिक सुविधाओं में निम्न वृद्धि हुई :

1. शिक्षा : शिक्ष के क्षेत्र में अत्यंत प्रगति हुई। सन 21 में साक्षरता दर बढ़कर 65 प्रतिशत हो गई। स्कूल–कालेज–विश्वविद्यालयों की संख्या में काफी वृद्धि हुई।

2. चिकित्सा सुविधाएं : ग्रामीण स्तर पर अस्पताल, डिस्पेंसरियां खोली गई हैं। सभी बीमारियां जैसे हैजा, चेचक, मलेरिया, पोलियो पर काबू पा लिया गया है। परिणामस्वरूप मृत्युदर 21 में 8 प्रति हजार हो गई तथा औसत आयु बढ़कर 65 वर्ष हो गई।

3. निर्धनता : सन 21 में निर्धनता कम होकर 26 प्रतिशत हो गई।

4. ग्रामीण जलापूर्ति : गांवों में भी स्वच्छ पीने के पानी की सुविधा उपलब्ध करवाई गई है। अब तक 15

करोड़ जनसंख्या वाली 2683 रिहायशी बस्तियों को लाभ पहुंचा है। ग्रामीण जल आपूर्ति के लिए 21-2 में 1975 करोड़ रुपये व्यय किए गए।

इन सभी सुविधाओं के कारण नौवीं योजना में मानवीय विकास में वृद्धि हुई और मानवीय विकास सूचकांक .571 हो गया।

9. सेवा क्षेत्र में योजनाएं : नौवीं योजना में सेवा क्षेत्र में निम्न योजनाएं आरंभ की गईं :

1. जनश्री तथा आश्रय बीमा योजना : इसमें जीवन बीमा निगम की महत्वपूर्ण भूमिका रही। जीवन बीमा निगम द्वारा जून, 2 को निर्धनता रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के लाभ के लिए 'जनश्री बीमा योजना' आरंभ की जिसमें 22 तक 763436 व्यक्तियों का बीमा हुआ। जिन श्रमिकों की छंटनी की गई, उन श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान की गई। इसके लिए 1 अक्टूबर, 21 से आश्रय बीमा योजना आरंभ की गई।

2. क्रेडिट कार्ड योजना : सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों द्वारा लघु उद्यमियों के लिए क्रेडिट कार्ड योजना आरंभ की गई। इससे छोटे उद्यमी कम उधार भी आसानी से ले सकते हैं।

10. पर्यावरण प्रदूषण पर नियंत्रण : पर्यावरण प्रदूषण के कारण प्रतिवर्ष 2.6 करोड़ लोग प्रभावित होते हैं तथा अस्पतालों में इलाज करवाते हैं। इसलिए नौवीं योजना में पर्यावरण प्रदूषण पर नियंत्रण करने के लिए कई कदम उठाए गए।

1. पर्यावरण प्रदूषण में सुधार के लिए 1986 का एक्ट लागू किया गया।
2. सन 1997 में विश्व बैंक की सहायता से इमकबटा आरंभ किया गया।
3. 21-2 में उन 177 उद्योगों को बंद कर दिया गया जो पर्यावरण मानदंड के अनुकूल नहीं थे।
4. सरकार ने 15 वर्ष पुराने वाहनों को चलाने पर भी प्रतिबंध लगा दिया है।

इस प्रकार नौवीं योजना में पर्यावरण सुधार के लिए अच्छे प्रयास किए गए।

11. विदेशी ऋण में कमी : नौंवीं पंचवर्षीय योजना के अंत में विदेशी ऋण सकल घरेलू उत्पाद का 21 प्रतिशत रह गया जबकि 1991 में यह 28.7 प्रतिशत था। विश्व बैंक ने पहली बार भारत को कम ऋणग्रस्त देश घोषित किया। यह नौवीं योजना की एक बड़ी सफलता रही।

12. विदेशी मुद्रा भंडार में वृद्धि : नौवीं योजना के आरंभ में 1997-98 में विदेशी मुद्रा भंडार 11595 करोड़ रुपये था जो योजना के अंत में बढ़कर 249378 करोड़ रुपये हो गया। इस प्रकार नौवीं योजना में विदेशी मुद्रा भंडार में 115 प्रतिशत की वृद्धि हुई। पांच वर्षों में यह उपलब्धि सराहनीय है।

इस प्रकार नौवीं पंचवर्षीय योजना में काफी सफलताएं प्राप्त हुईं, परन्तु फिर भी कई लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं की जा सकी।

असफलताएं :

1. आर्थिक विकास की धीमी गति : नौवीं योजना में औसत वार्षिक वृद्धि दर 5.4 प्रतिशत रही जबकि लक्ष्य 6.5 प्रतिशत था। इस प्रकार लक्ष्य प्राप्त न हो सका जबकि आठवीं योजना में आर्थिक विकास का लक्ष्य प्राप्त हो गया था। प्रति व्यक्ति आय में भी 3.5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि रही जबकि लक्ष्य 4.9 प्रतिशत का था। 1997-98 से 21-2 के दौरान राष्ट्रीय आय में 41 प्रतिशत तथा प्रति व्यक्ति आय में 31 प्रतिशत वृद्धि हुई। प्रति व्यक्ति आय में कम परिवर्तन का मुख्य कारण जनसंख्या में अधिक वृद्धि है। विश्व मंदी के कारण भी भारत की आर्थिक विकास की प्रगति धीमी रही।

2. कृषि का धीमा विकास : नौवीं पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य 4.5 प्रतिशत वार्षिक कृषि विकास दर को प्राप्त करना था, परन्तु इस योजना में वार्षिक वृद्धि 2.1 प्रतिशत रही। इसका मुख्य कारण दो वर्षों में 1997-98 तथा 2`-`1 में ऋणात्मक वृद्धि रही।

3. औद्योगिक उत्पादन का धीमा विकास : नौवीं योजना में औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर का लक्ष्य 9.5 प्रतिशत वार्षिक था जबकि वृद्धि केवल 5 प्रतिशत रही। इसका कारण उपक्षेत्रों जैसे खनन, विनिर्माण, विद्युत उत्पादन इत्यादि में वृद्धि दर में काफी कमी रही। मध्यवर्ती तथा उपभोक्ता वस्तुओं में भी वृद्धि दर काफी कम रही। मुख्य उद्योगों जैसे कच्चा तेल, पेट्रोलियम, कोयला, इस्पात का योगदान भी कम रहा। औद्योगिक सूचकांक में योगदान 26.7 प्रतिशत रहता है। 21-`2 में केवल 2 प्रतिशत रहा। इन कारणों से औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर काफी कम रही।

4. सेवा क्षेत्र की धीमी प्रगति : सेवा क्षेत्र की वृद्धि दर कम रही। नौवीं योजना के आरंभ में यह 9.8 प्रतिशत थी जबकि अंत में कम होकर 6.5 प्रतिशत रह गई। इसका मुख्य कारण व्यापार, होटल, रेस्तरां, वित्तीय क्षेत्र, सामुदायिक, सामाजिक तथा व्यक्तिगत सेवाओं की वृद्धि दर में निरंतर कमी होना रहा।

5. निर्धनता : नौवीं योजना का लक्ष्य था कि योजना के अंत तक 18 प्रतिशत लोग निर्धनता रेखा से नीचे रह जाएंगे, परंतु वास्तव में यह लक्ष्य प्राप्त न हो सका और यह 26 प्रतिशत रही। ग्रामीण क्षेत्रों में यह शहरी की अपेक्षा और अधिक रही।

6. बेरोजगारी में वृद्धि : नौवीं योजना में बेरोजगारी की दर में कमी न हो सकी। एक अनुसान के अनुसार देश में करीब 6 करोड़ लोग बेरोजगार हैं। वास्तव में नौवीं योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार वृद्धि दर एक प्रतिशत से भी कम रही।

7. करारोपण का स्वरूप : नौवीं योजना में करों में काफी वृद्धि हुई। अप्रत्यक्ष करों से 62 प्रतिशत तथा अप्रत्यक्ष करों से 38 प्रतिशत आय प्राप्त होती है। इस बार मंदी के कारण योजना के अंत में करों से कम आय प्राप्त हुई। राजकोषीय घाटे भी 2`-`1 में सकल घरेलू उत्पाद का 5.1 प्रतिशत था जो `1-`2 में बढ़कर 5.7 प्रतिशत हो गया। इस प्रकार दोषपूर्ण करारोपण नीति के कारण राजकोषीय घाटे में भी वृद्धि हो गई।

8. विदेशी व्यापार की प्रवृत्ति : नौवीं योजना में कुल आयात कुल निर्यात से अधिक रहे। आयात की कीमतों में वृद्धि तथा निर्यात की कीमतों में कमी के कारण व्यापार की शर्तें प्रतिकूल रहीं। निम्न कृषि और औद्योगिक उत्पादन के कारण आयात में वृद्धि करनी पड़ी परन्तु आयाता प्रतिस्थापन न हो सका। भारत का विश्व व्यापार में हिस्सा मात्र `.6 प्रतिशत रहा।

9. क्षेत्रीय असमानता : नौवीं योजना में भी क्षेत्रीय असंतुलन कम न हो सका। बीमारू राज्य बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश आज भी पिछड़े हुए हैं जबकि हरियाणा, पंजाब, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, पश्चिमी बंगाल अधिक विकसित हैं। यहां प्रति व्यक्ति आय अधिक है।

10 आय व धन की असमानता में वृद्धि : नौवीं योजना में आय तथा धन की असमानता में भी कमी नहीं आई। करों की चोरी के कारण धनी और धनी तथा निर्धन अधिक निर्धन बनते गए। आय व धन की असमानता कम होने के स्थान पर बढ़ गई।

11. कमजोर आधार : नौवीं योजना में आर्थिक आधार कमजोर रहा। 1999 मे कारगिल युद्ध के कारण अर्थव्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई। 21 में उड़ीसा में तूफान, गुजरात में भूकंप और 22 में गुजरात के दंगों के

कारण अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

12. जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण नहीं : नौवीं योजना का मुख्य उद्देश्य जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण करना था, इसलिए जनसंख्या वृद्धि का लक्ष्य 1.5 प्रतिशत रखा गया। 2 में नई जनसंख्या नीति की घोषणा की गई। इसे लागू करने पर भी 1.5 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य प्राप्त न हो सका। 21 की जनगणना के अनुसार इसकी वार्षिक वृद्धि दर 1.9 प्रतिशत रही। इस प्रकार नौवीं योजना में भी जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण न हो सका।

निष्कर्ष : इस प्रकार नौवीं पंचवर्षीय योजना में सफलताओं के साथ असफलताएं भी प्राप्त हुईं। सामाजिक सुविधाओं में वृद्धि के कारण मानवीय विकास हुआ, परन्तु पंचवर्षीय योजनाओं में सफलताओं के साथ असफलताएं भी प्राप्त हुईं। सामाजिक सुविधाओं में वृद्धि के कारण मानवीय विकास हुआ, परन्तु प्राकृतिक प्रकोपों तथा भारत-पाक सीमा पर अशांति तथा उत्पादन की दर कम होने के कारण आर्थिक विकास की दर धीमी रही। नौवीं योजना में निर्धारित लक्ष्य प्राप्त न हो सके। लक्ष्यों और प्राप्तियों में काफी अंतर रहा।

६.३ सारांश :

वर्तमान में देश में 11वीं पंचवर्षीय योजना चल रही है। 1 सितंबर 21 को राष्ट्रीय विकास परिषद की 49वीं बैठक में 1वीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण पत्र को मंजूरी प्रदान की गई थी। इस योजना की अवधि अप्रैल 1, 22 से 27 तक रखी गई। भूतकाल में जो लाभ मिले हैं, वे नौवीं योजना में बढ़कर लगभग 6.5 प्रतिशत हो गए हैं। इससे भारत तेजी से विकसित होने वले दस देशों में से एक रहा है। जनसंख्या की वृद्धि दर पहली बार 2 प्रतिशत से कम रही है। साक्षरता दर 1991 में 52 प्रतिशत से बढ़कर 21 में 65 प्रतिशत हो गई है। सॉफ्टवेयर सेवाएं तथा आईटी योग्य सेवाएं शक्ति के एक नए साधन के रूप में उभरी हैं। इन्होंने विश्व अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धा के लिए भारत को दृढ शक्ति प्रदान की है।

इस योजना में निर्धनता अनुपात को सन 27 तक 2 प्रतिशत तक तथा 212 तक 1 प्रतिशत लाना है। दसवीं योजना का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सभी लोगों के जीवन की गुणवत्ता में महत्वपूर्ण सुधार एवं प्रगति हो। इसमें न केवल खाद्यान्न तथा अन्य उपभोक्ता वस्तुओं के उपभोग के उचित स्तर को शामिल किया जाएगा बल्कि आधारभूत सामाजिक सेवाओं को भी प्राप्त करने का प्रयास किया जाएगा, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल की उपलब्धता तथ अच्छी सफाई व्यवस्था। 21 से 211 के बीच जनसंख्या की वृद्धि दर को 16.2 प्रतिशत कम करना इस योजना का मुख्य उद्देश्य है।

दसवीं योजना का उद्देश्य 27 तक शिक्षा तथा मजदूरी की लिंग दरों में कम से कम 5 प्रतिशत तक कमी लाना है।

आर्थिक क्रियाओं में सरकार की भूमिका को पुन: परिभाषित करना : आर्थिक क्षेत्र में सरकार की जिम्मेदारियों को घटाया जाएगा, परन्तु सामाजिक क्षेत्र में सरकार को अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। आधारिक संरचना जैसे क्षेत्रों में अंतराल अधिक है और निजी क्षेत्र से यह आशा नहीं की जाती कि वह इसमें महत्वपूर्ण भाग ले सकेगा। इन क्षेत्रों में सरकार की भूमिका को पुन: स्थापित करना होगा, सरकार को आधारिक संरचना के विकास के कुछ ऐसे क्षेत्रों को बढ़ाना होगा जिनमें निजी निवेश के होने की संभावना है।

ग्रामीण क्षेत्रों में गैर-कृषि रोजगार प्रदान करने के लिए तथा छोटे तथा ग्रामीण उद्योगों के विकास के लिए विशेष प्रयत्न किए जाने चाहिए। सीमांत तथा छोटे किसानों, कारीगरों और अप्रशिक्षित श्रमिकों की आर्थिक स्थिति को

मजबूत करने के लिए विशेष प्रयत्न किए जाने चाहिए।

६.४ सूचक शब्द :

दसवीं पंचवर्षीय योजना : 1 सितंबर 2001 को राष्ट्रीय विकास परिषद की 49वीं बैठक में 10वीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण पत्र को मंजूरी प्रदान की गई थी। इस योजना की अवधि अप्रैल 1, 2002 से 2007 तक रखी गई। भूतकाल में जो लाभ मिले हैं, वे नौवीं योजना में बढ़कर लगभग 6.5 प्रतिशत हो गए हैं। इससे भारत तेजी से विकसित होने वले दस देशों में से एक रहा है। जनसंख्या की वृद्धि दर पहली बार 2 प्रतिशत से कम रही है। साक्षरता दर 1991 में 52 प्रतिशत से बढ़कर 2001 में 65 प्रतिशत हो गई है। सॉफ्टवेयर सेवाएं तथा आईटी योग्य सेवाएं शक्ति के एक नए साधन के रूप में उभरी हैं।

निर्धनता अनुपात में कमी लाना : इस योजना में निर्धनता अनुपात को सन 2007 तक 2 प्रतिशत तक तथा 2012 तक 1 प्रतिशत लाना है।

जीवन की गुणवत्ता में सुधार : दसवीं योजना का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सभी लोगों के जीवन की गुणवत्ता में महत्वपूर्ण सुधार एवं प्रगति हो। इसमें न केवल खाद्यान्न तथा अन्य उपभोक्ता वस्तुओं के उपभोग के उचित स्तर को शामिल किया जाएगा बल्कि आधारभूत सामाजिक सेवाओं को भी प्राप्त करने का प्रयास किया जाएगा, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल की उपलब्धता तथ अच्छी सफाई व्यवस्था।

जनसंख्या की वृद्धि दर में कमी : 2001 से 2011 के बीच जनसंख्या की वृद्धि दर को 16.2 प्रतिशत कम करना इस योजना का मुख्य उद्देश्य है।

लिंग अंतरों में कमी लाना : दसवीं योजना का उद्देश्य 2007 तक शिक्षा तथा मजदूरी की लिंग दरों में कम से कम 5 प्रतिशत तक कमी लाना है।

कृषि तथा भूमि प्रबंध : वर्ष 1999 में कृषि उत्पादन वृद्धि ऊंचे उत्पादन समर्थन मूल्य तथा अनुदानों के फलस्वरूप हुई थी। दसवीं योजना इस नीति में परिवर्तन लाने का प्रावधान करती है। दसवीं योजना की अवधि में कृषि विकास के लिए सिंचाई, बीजों, शक्ति तथा सड़कों में अधिक सार्वजनिक निवेश किया जाएगा, परन्तु उर्वरकों, जल तथा शक्ति के लिए दी जाने वाली आर्थिक सहायता को कम किया जाएगा। नहर प्रणाली का सही ढंग से रख-रखाव किया जाएगा।

निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम : ग्रामीण क्षेत्रों में गैर-कृषि रोजगार प्रदान करने के लिए तथा छोटे तथा ग्रामीण उद्योगों के विकास के लिए विशेष प्रयत्न किए जाने चाहिए। सीमांत तथा छोटे किसानों, कारीगरों और अप्रशिक्षित श्रमिकों की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के लिए विशेष प्रयत्न किए जाने चाहिए।

६.५ स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न :

- पंचवर्षीय परियोजनों के उद्‌भव और विकास का वर्णन करें।
- भारत में पंचवर्षीय परियोजनाओं के मुख्य उद्‌देश्य क्या हैं? विस्तार से बताएं।
- पंचवर्षीय परियोजनाओं को विकास की व्यूह रचना क्यों कहा जाता है? टिप्पणी करें।

६.६ संदर्भित पुस्तकें :

बिजनेस इकॉनोमिक्स : आर. के. लेखी, एस.एल. अग्रवाल।
दी इंडियन इकॉनोमी : रे।
प्लानिंग ग्रोथ एंड दी इकॉनोमी : रे।
आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था : डा. एससी गुप्ता।
अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र : आर. डी. शर्मा।
अंतरराष्ट्रीय व्यापार : दालचंद्र बागडी।
आर्थिक अवधारणाएं व पद्धतियां : एम. सी. गुप्ता।
भारतीय राजनीतिक अर्थशास्त्र : गिरीश नंदन शर्मा।

बीए मास कम्यूनिकेशन – द्वितीय वर्ष *बीएमसी –१०७* **अर्थशास्त्र**
खंड–ई इकाई – एक अध्याय – सात

बाजार

लेखक : डा. वीना शर्मा
एस. आई. एम. शैली में परिवर्तन :

अध्याय संरचना :

इस अध्याय में बाजार की अवधारणा से परिचित होंगे। इस अध्याय में हम बाजार की परिभाषाओं, बाजार की विशेषताओं व बाजार के प्रकार आदि विषयों की चर्चा करेंगे। अध्याय की संरचना इस प्रकार होगी:

७.० उद्देश्य
७.१ परिचय
७.२ विषय वस्तु की प्रस्तुति
७.२.१ बाजार
७.२.२ बाजार की परिभाषाएं
७.२.३ बाजार की विशेषताएं
७.२.४ बाजार के प्रकार
७.३ सारांश
७.४ सूचक शब्द
७.५ स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
७.६ संदर्भित पुस्तकें

७.० उद्देश्य :

इस अध्याय के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

बाजार से परिचित होना
बाजार की परिभाषाएं जानना
बाजार की विशेषताएं जानना
बाजार के प्रकारों से परिचित होना

७.१ परिचय :

आम बोलचाल में बाजार शब्द का प्रयोग किसी उस विशेष स्थान के लिए किया जाता है जहां किसी वस्तु के क्रेता और विक्रेता आपस में मिलते हैं तथा वस्तु का क्रय–विक्रय करते हैं। परन्तु अर्थशास्त्र में बाजार शब्द से अभिप्राय ऐसे क्षेत्र से है जहां किसी वस्तु की सारे बाजार में एक ही कीमत प्रचलित होने की प्रवृत्ति पाई जाती है। क्रेता तथा विक्रेता को आपस में संपर्क करने के लिए स्वयं मिलना आवश्यक नहीं। अर्थशास्त्र में बाजार से अभिप्राय

किसी विशेष स्थान से नहीं है जहां क्रेता और विक्रेता एकत्र होते हैं बल्कि बाजार से अभिप्राय उस सारे क्षेत्र से है जिसमें क्रेता और विक्रेता फैले होते हैं और उनमें संपर्क पाया जाता है। अर्थशास्त्र में हर वस्तु का बाजार अलग होता है। जैसे गेहूं का बाजार, चीनी का बाजार आदि जितनी वस्तुएं होती हैं, उतने ही बाजार माने जाते हैं।
इस अध्याय में हम बाजार, बाजार की विशेषताओं और बाजार के प्रकारों का अध्ययन करेंगे।

७.२ विषय वस्तु की प्रस्तुति :

इस अध्याय में हम बाजार, बाजार की विशेषताओं और बाजार के प्रकार के बारे में चर्चा करेंगे। अध्याय में विषय वस्तु की प्रस्तुति निम्न प्रकार से होगी :

बाजार
बाजार की परिभाषाएं
बाजार की विशेषताएं
बाजार के प्रकार

७.२.१ बाजार :

अर्थशास्त्र में बाजार शब्द का प्रयोग, आम बोलचाल की भाषा की तुलना में विशेष अर्थों में किया जाता है। आम बोलचाल की भाषा में, बाजार शब्द का प्रयोग किसी उस विशेष स्थान के लिए किया जाता है जहां किसी वस्तु के क्रेता और विक्रेता आपस में मिलते हैं तथा वस्तु का क्रय-विक्रय करते हैं। परन्तु अर्थशास्त्र में बाजार शब्द से अभिप्राय किसी विशेष स्थान से नहीं बल्कि एक ऐसे क्षेत्र से है जहां किसी वस्तु की सारे बाजार में एक ही कीमत प्रचलित होने की प्रवृत्ति पाई जाती है। क्रेता तथा विक्रेता को आपस में संपर्क करने के लिए स्वयं मिलना आवश्यक नहीं। वे टेलीफोन, तार, पत्र व एजेंट द्वारा भी संपर्क कर सकते हैं।

७.२.२ परिभाषाएं :

1. कुरानों के अनुसार, 'अर्थशास्त्री बाजार का अर्थ किसी विशेष स्थान से नहीं लेते जहां वस्तुएं खरीदी और बेची जाती हैं, बल्कि उस सारे क्षेत्र से लेते हैं जहां क्रेताओं और विक्रेताओं में एक-दूसरे से इस प्रकार स्वतंत्र संपर्क हो कि एक ही प्रकार के पदार्थों की कीमत की प्रवृत्ति, आसानी और शीघ्रता से, एक होने की पाई जाए।'
2. प्रो. चैपमैन के अनुसार, 'बाजार शब्द अवश्य ही किसी विशेष स्थान की ओर संकेत नहीं करता परन्तु सदा वस्तुओं और उनके क्रेताओं एवं विक्रेताओं की ओर संकेत करता है जिनमें प्रत्यक्ष रूप से एक-दूसरे से प्रतियोगिता पाई जाती है।'
3. प्रो. एडवर्डस के अनुसार, 'बाजार वह पद्धति है जिसके द्वारा विक्रेता और क्रेता एक-दूसरे के संपर्क में लाए जाते हैं। इसके लिए निश्चित स्थान होना आवश्यक नहीं है।'

७.२.३ बाजार की मुख्य विशेषताएं :

ऊपर दी गई परिभाषाओं के अध्ययन से बाजार की निम्न विशेषताएं प्रकट होती हैं :

क. क्षेत्र : अर्थशास्त्र में बाजार से अभिप्राय किसी विशेष स्थान से नहीं है जहां क्रेता और विक्रेता एकत्र होते हैं

बल्कि बाजार से अभिप्राय उस सारे क्षेत्र से है जिसमें क्रेता और विक्रेता फैले होते हैं और उनमें संपर्क पाया जाता है। जैसे डालडा का बाजार समस्त भारतवर्ष में है क्योंकि इसके क्रेता और विक्रेता सभी नगरों और राज्यों में पाए जाते हैं।

ख. क्रेता और विक्रेता : बाजार में क्रेता और विक्रेता दोनों ही होने चाहिए। यदि किसी क्षेत्र में उनमें से एक नहीं हो तो वह बाजार नहीं कहलाता। यह आवश्यक नहीं है कि क्रेता तथा विक्रेता एक स्थान पर एक-दूसरे के सम्मुख होकर ही वस्तु का मोल-भाव तथा क्रय-विक्रय करें। वे टेलीफोन, तार आदि से भी आपसी संपर्क स्थापित कर सकते हैं।

ग. एक वस्तु : अर्थशास्त्र में हर वस्तु का बाजार अलग होता है। जैसे गेहूं का बाजार, चीनी का बाजार आदि जितनी वस्तुएं होती हैं, उतने ही बाजार माने जाते हैं।

घ. स्वतंत्र प्रतियोगिता : बाजार में क्रेता और विक्रेता में मुक्त प्रतियोगिता होनी चाहिए। ऐसे बाजार में क्रेता वस्तु को सस्ती खरीदने का प्रयत्न करेगा तथा विक्रेता महंगी बेचने का। इसका फल यह होगा कि एक वस्तु की कीमत उस बाजार में एक ही होगी।

७.२.४ बाजार के प्रमुख प्रकार :

प्रतियोगिता के आधार पर बाजार को निम्न भागों में बांटा जा सकता है :

क. पूर्ण प्रतियोगिता

ख. एकाधिकारी

ग. अपूर्ण प्रतियोगी

घ. द्वैधिकार

ङ. अल्पाधिकार

क. पूर्ण प्रतियोगिता बाजार : आपको अर्थशास्त्र के प्रश्न लिखने के लिए एक दस्ते कागज की आवश्यकता है। आपके शहर में कागज बेचने वाली बहुत सी दुकानें हैं। वे सब एक ही प्रकार का कागज बेचती हैं। आप किसी भी दुकानदार से कागज खरीद लें। आपको एक दस्ते के लिए 1 रुपया कीमत अदा करनी पड़ेगी। यदि कोई भी दुकानदार कागज की कीमत 1 रुपया 5 पैसे प्रति दस्ता लेगा तो कोई भी विद्यार्थी उससे कागज नहीं खरीदेगा। यदि एक दूसरा दुकानदार कागज के प्रति दस्ते के लिए 98 पैसे लेगा तो सभी विद्यार्थी उसी से कागज खरीदेंगे। अत: बाजार में एक ही कीमत निर्धारित होगी। कागज के क्रेताओं और विक्रेताओं में प्रतियोगिता इतनी पूर्ण होगी कि कोई भी दुकानदार कागज की बाजार की प्रचलित कीमत से अधिक नहीं ले सकेगा। अतएव पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की उस स्थिति को कहते हैं जिसमें किसी समरूप वस्तु के बहुत से क्रेता तथा विक्रेता हैं तथा वस्तु की कीमत उद्योग द्वारा निर्धारित होती है। सभी फर्में इसी कीमत पर वस्तु को बेचती हैं अर्थात बाजार में किसी वस्तु की एक ही कीमत प्रचलित होती है।

परिभाषाएं :

1. प्रो. लैफ्टविच के अनुसार, 'पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वह अवस्था है जिससे एक सी वस्तुओं को बेचने वाली बहुत सी फर्में होती हैं और इनमें कोई एक फर्म संपूर्ण बाजार की तुलना में इतनी बड़ी नहीं होती कि बाजार कीमत को प्रभावित कर सके।'

2. फर्गुसन के अनुसार, 'पूर्ण प्रतियोगिता एक ऐसा बाजार है जिससे आर्थिक समूहों में प्रत्यक्ष प्रतियोगिता का पूर्ण अभाव पाया जाता है।'

3. श्रीमती जोन रोबिन्सन के अनुसार, 'पूर्ण प्रतियोगिता तब पाई जाती है जबकि प्रत्येक उत्पादक के उत्पादन के लिए मांग पूर्णत: सापेक्ष हो।'

4. प्रो. लिम चोंग याह के अनुसार, 'पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वह दशा है जिसमें बहुत से विक्रेता तथा क्रेता हैं। समरूप वस्तु है। उद्योग में फर्मों का स्वतंत्र प्रवेश है। बाजार की वर्तमान दशाओं के क्रेताओं तथा विक्रेताओं को पूर्ण ज्ञान है तथा वैकल्पिक प्रयोगों में उत्पादन के साधनों की स्वतंत्र गतिशीलता है।'

पूर्ण प्रतियोगिता की विशेषताएं :

पूर्ण प्रतियोगिता की मुख्य मान्यताएं अथवा विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

1. क्रेताओं और विक्रेताओं की अधिक संख्या परन्तु छोटा आकार : पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में किसी वस्तु के विक्रेता तथा क्रेता काफी संख्या में होते हैं। परन्तु प्रत्येक क्रेता व प्रत्येक विक्रेता वस्तु के संपूर्ण बाजार की तुलना में इतना छोटा होता है कि वह अपने द्वारा खरीदी अथवा बेची जाने वाली वस्तु की कीमत को प्रभावित नहीं कर सकता। एक विक्रेता कुल पूर्ति की इतनी थोड़ी मात्रा बेचता है कि यदि वह बाजार से बिलकुल हट जाए तो कुल पूर्ति इतनी नहीं बढती कि कीमत कम हो जाए। इससे अभिप्राय यह होगा कि पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में कोई भी फर्म अपने उत्पादन में परिवर्तन करके बाजार कीमत को प्रभावित नहीं कर सकती। इसी प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में प्रत्येक क्रेता बाजार में बेची जाने वाली वस्तु की कुल मात्रा का इतना छोटा अंश लेता है कि वह उसकी कीमत को प्रभावित नहीं कर सकता।

2. समरूप वस्तुएं : पूर्ण प्रतियोगिता की दूसरी मान्यता यह है कि एक विशेष किस्म की वस्तु के सभी विक्रेता उसकी एक सी इकाइयां बेचते हैं। राम एंड कंपनी द्वारा बेची जाने वाली वस्तु शाम एंड कंपनी द्वारा बेची जाने वाली वस्तु के ही समान होती है। इसका महत्वपूर्ण परिणाम यह होता है कि क्रेताओं के लिए एक विक्रेता की वस्तु को दूसरे विक्रेता की वस्तु से अधिक पसंद करने का कोई कारण नहीं होता। विक्रेताओं की अधिक संख्या तथा समरूप उत्पादन की मान्यता के फलस्वरूप पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में एक फर्म कीमत लेने वाली होती है न कि कीमत तय करने वाली।

3. पूर्ण ज्ञान : क्रेताओं और विक्रेताओं को वस्तु की कीमत का पूरा ज्ञान होता है। क्रेताओं को इस बात की पूरी जानकारी होती है कि भिन्न-भिन्न विक्रेता वस्तु को किस दाम पर बेच रहे हैं और विक्रेताओं को यह ज्ञान होता है कि कहां और किस क्रेता से अधिक दाम प्राप्त हो सकते हैं। ऐसे ज्ञान और सजगता के फलस्वरूप सभी विक्रेता क्रेताओं से एक ही वस्तु के एक ही दाम वसूल करेंगे तथा बाजार में अनिश्चितता नहीं पाई जाएगी।

4. फर्मों का स्वतंत्र प्रवेश व छोड़ना : पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में दीर्घकाल में किसी उद्योग में कोई भी फर्म प्रवेश कर सकती है अथवा पुरानी फर्म उस उद्योग को छोड़ सकती है। फर्मों के प्रवेश पर किसी प्रकार का कानूनी या सामाजिक प्रतिबंध नहीं होता। यह मान्यता पहली मान्यता की सहायक है। फर्मों के स्वतंत्र प्रवेश के कारण ही उनकी संख्या अधिक हो सकती है।

5. प्रतिबंधों का अभाव : क्रेताओं और विक्रेताओं पर किसी वस्तु के क्रय तथा विक्रय के संबंध में कोई प्रतिबंध नहीं होना चाहिए। एक ओर तो क्रेताओं में किसी वस्तु के उत्पादन, उसकी मात्रा तथा कीमत संबंधी कोई समझौता नहीं होना चाहिए तथा दूसरी ओर क्रेताओं को किसी विशेष विक्रेता से वस्तुओं को खरीदने का आकर्षण नहीं होना

चाहिए। सरकार भी किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं लगाती है।

6. पूर्ण गतिशीलता : पूर्ण प्रतियोगिता की एक मुख्य मान्यता यह है कि इस प्रकार के बाजार में वस्तुओं एवं सेवाओं और साधनों की गतिशीलता पाई जाए। उत्पादन के साधन अपने विभिन्न उद्योगों में से जहां कहीं वे रोजगार चाहते हैं, वहीं जाने को मुक्त होते हैं। उत्पादन के किसी साधन पर किसी का एकाधिकार नहीं होना चाहिए। प्रत्येक फर्म को अपने उत्पादन के लिए जितने साधन चाहिए, मिल जाएं। वस्तुएं व सेवाएं जहां उन्हें सबसे ऊंची कीमतें मिलें, बेची जा सकती हैं।

7. यातायात लागतों का अभाव : पूर्ण प्रतियोगी बाजार में वस्तु के यातायात की लागत की कीमत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

8. विक्रय लागत का अभाव : पूर्ण प्रतियोगिता में विक्रेता विज्ञापन, प्रचार आदि पर खर्च नहीं करता। सब फर्मों का उत्पादन एक समान होता है, इसलिए किसी फर्म को विक्रय लागत की आवश्यकता नहीं होती।

9. समान कीमत : पूर्ण प्रतियोगी बाजार में प्रत्येक विक्रेता वस्तु की एक ही कीमत लेता है, क्योंकि कीमत उद्योग द्वारा निर्धारित होती है। सभी फर्मों को इसी कीमत पर अपना उत्पादन बेचना पड़ता है। वस्तु की औसत आगम तथा सीमांत आगम बराबर होती है। पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म कीमत स्वीकारक है, कीमत निर्धारक नहीं है।

शुद्ध तथा पूर्ण प्रतियोगिता : अर्थशास्त्री बहुता शुद्ध तथा पूर्ण प्रतियोगिता में अंतर करते हैं। उनके बीच अंतर केवल डिग्री का ही होता है। शुद्ध प्रतियोगिता की धारणा का प्रतिपादन मुख्य रूप से प्रो. चैम्बरिलन ने किया था। उनके अनुसार यदि किसी बाजार में निम्नलिखित शर्तें पाई जाएं तो बाजार की इस दशा को शुद्ध प्रतियोगी कहा जाएगा :

क. क्रेता और विक्रेता की अधिक संख्या

ख. समरूप वस्तुएं

ग. फर्मों का स्वतंत्र प्रवेश तथा छोड़ना

घ. रुकावटों का अभाव

ङ. विक्रय लागतों का अभाव

च. यातायात लागत का अभाव।

बामोल ने विशुद्ध प्रतियोगिता की परिभाषा इस प्रकार दी है, 'कोई उद्योग शुद्ध प्रतियोगिता की दशा में काम करता उस समय कहा जाता है जबकि कई फर्में, एक समान पदार्थ, इच्छानुसार प्रवेश व छोड़ना, स्वतंत्र निर्णय आदि स्थितियां हों।'

ख. एकाधिकार :

एकाधिकार, बाजार की वह स्थिति है जिसमें किसी वस्तु का केवल एक ही विक्रेता होता है। इसके एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए आपके शहर में किचन में काम आने वाली गैस बेचने वाली केवल एक ही फर्म इंडेन है। अपने घर या फैक्टरी के लिए बिजली केवल आप बिजली बोर्ड से प्राप्त कर सकते हैं। आप केवल भारत सरकार की रेलों में यात्रा कर सकते हैं। अर्थशास्त्र में बाजार की इस स्थिति को जिसमें किसी वस्तु के उत्पादन पर केवल एक ही फर्म का नियंत्रण होता है, एकाधिकार कहा जाता है। अतएव एकाधिकार बाजार की वह स्थिति है जिसमें किसी वस्तु या सेवा का केवल एक ही उत्पादक होता है तथा उस वस्तु का कोई निकटतम प्रतिस्थापन नहीं होता।

परिभाषाएं :

1. कोतस्वायिनी के अनुसार, 'एकाधिकार वह बाजार है जिसमें किसी वस्तु का केवल एक ही विक्रेता होता है। वह जिस वस्तु का उत्पादन करता है उसके निकटतम प्रतिस्थापन नहीं होते तथा अन्य फर्मों के प्रवेश पर प्रतिबंध होता है।'

2. प्रो. फर्गुसन के अनुसार, 'शुद्ध एकाधिकार वह स्थिति है जिसमें एक बाजार में केवल एक ही उत्पादक होता है, उसके प्रत्यक्ष प्रतियोगी नहीं होते।'

3. मकौनल के अनुसार, 'शुद्ध एकाधिकार तब पाया जाता है जबकि किसी वस्तु, जिसका कोई निकट प्रतिस्थापन नहीं है, की एकमात्र उत्पादक एक ही फर्म हो।'

विशेषताएं :

1. एक विक्रेता तथा अधिक क्रेता : एकाधिकार में वस्तु का एक ही उत्पादक होना चाहिए। वह अकेला हो या साझेदारों का समूह हो या संयुक्त पूंजी कंपनी या राज्य हो। अत: एकाधिकार में एक ही फर्म होती है। अर्थात फर्म और उद्योग का अंतर खत्म हो जाता है। परंतु वस्तु के क्रेता काफी संख्या में होने चाहिए जिसके फलस्वरूप वस्तु की कीमत को क्रेता प्रभावित न कर सके परन्तु विक्रेता प्रभावित करता है।

2. एकाधिकारी फर्म उद्योग भी है : एकाधिकार की स्थिति में केवल एक ही फर्म होती है। अर्थात एकाधिकारी फर्म तथा उद्योग के अध्ययन में कोई अंतर नहीं होता।

3. नई फर्मों के प्रवेश पर प्रतिबंध : एकाधिकारी क्षेत्र में नई फर्म के बाजार में प्रवेश करने पर प्रतिबंध होता है। एकाधिकारी का कोई प्रतियोगी नहीं होता। जेएस बेन के अनुसार, 'एक फर्म की एकाधिकार की अवस्था उस समय उत्पन्न होती है जब फर्म का कोई भी निकटतम प्रतिद्वंद्वी नहीं होता।'

4. निकटतम स्थानापन्न का अभाव : एकाधिकारी जिस वस्तु का उत्पादन कर रहा है उस वस्तु का निकट स्थानापन्न नहीं होना चाहिए। अन्यथा एकाधिकारी वस्तु का मूल्य अपनी इच्छानुसार निर्धारित नहीं कर सकेगा। प्रो. बोल्डिंग के अनुसार, एक विशुद्ध एकाधिकारी फर्म वह है जो किसी वस्तु का उत्पादन कर रही है जिनका दूसरी फर्मों के उत्पादन में कोई प्रभावशाली स्थानापन्न नहीं है।

5. कीमत निर्धारक : एकाधिकारी का वस्तु की पूर्ति पर पूरा नियंत्रण होता है। इसके विपरीत वस्तु के बहुत सारे क्रेता होने के कारण किसी एक क्रेता की मांग, बाजार मांग का थोड़ा सा भाग होता है। इसलिए क्रेताओं को वह कीमत देनी पड़ती है जो एकाधिकारी तय करता है। वस्तु की कीमत पर एकाधिकारी का नियंत्रण होता है। यदि एकाधिकारी वस्तु की पूर्ति को बढ़ा देता है तो कीमत कम हो जाएगा। यदि वह पूर्ति को कम कर देता है तो कीमत बढ़ जाएगी। एकाधिकारी कीमत विभेद भी कर सकता है। एक ही वस्तु की विभिन्न व्यक्तियों से भिन्न-भिन्न कीमतें ले सकता है।

ग. अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार :

अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वास्तविक अवस्था है। व्यावहारिक जीवन में पूर्ण प्रतियोगिता तथा विशुद्ध एकाधिकार की स्थितियां दुर्लभ होती हैं। वास्तविक बाजार अपूर्ण रूप से प्रतियोगी होते हैं। उनमें पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार दोनों की ही कुछ विशेषताएं पाई जाती हैं। अर्थशास्त्र में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति का अध्ययन सन 1933 के बाद से किया जाने लगा है। इस वर्ष इंग्लैंड की श्रीमती जोन रोबिन्सन की पुस्तक तथा अमेरिका में प्रो. चैम्बरलिन की पुस्तक प्रकाशित हुई। इन पुस्तकों के प्रकाशन के बाद अर्थशास्त्र में अपूर्ण प्रतियोगिता में कीमत

तथा संतुलन निर्धारण का महत्व बहुत बढ़ गया।

प्रो. फेयरचाइल्ड के अनुसार, 'यदि कोई बाजार संगठित नहीं है, यदि खरीदने वालों और बेचने वालों में कठिनाई से संपर्क स्थापित होता है तथा वे एक-दूसरे की खरीदी हुई वस्तुओं तथा दी हुई कीमतों की तुलना नहीं कर सकते तो हम अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति का सामना करेंगे।' इस प्रकार अपूर्ण प्रतियोगिता एक विस्तृत संज्ञा है जिसमें बाजार की निम्न अवस्थाएं सम्मिलित की जाती हैं :

1. एकाधिकारी प्रतियोगिता - बहुत से विक्रेता होते हैं।
2. अल्पाधिकार - कुछ ही विक्रेता होते हैं।
3. द्वैद्धाधिकार - दो विक्रेता होते हैं।

1. एकाधिकारी प्रतियोगिता : अमेरिकन अर्थशास्त्री प्रो. ई. एच. वेम्बरलिन ने अपनी पुस्तक में एकाधिकारी की धारणा प्रस्तुत की थी। यह बाजार की वह स्थिति है जिसमें किसी वस्तु के बहुत से विक्रेता होते हैं परन्तु प्रत्येक विक्रेता की वस्तु दूसरे विक्रेताओं की वस्तुओं से किसी न किसी रूप में भिन्न होती है। वस्तु भिन्नता ब्रांड के नाम, ट्रेडमार्क, गुणभेद अथवा उपभोक्ताओं को प्रदान की जाने वाली सुविधाओं या सेवाओं के अंतर के रूप में हो सकती है। वास्तविक जीवन में इस प्रकार की प्रतियोगिता के बहुत से उदाहरण मिलते हैं। फोरहेन्स, कालगेट, सिबाका, बिनाका, सिगनल आदि टूथपेस्टों का उत्पादन करने वाली फर्में एकाधिकारी प्रतियोगिता के उदाहरण हैं। इस प्रकार के बाजार की स्थिति में फर्म एकाधिकारी भी है तथा प्रतियोगी भी। उदाहरण के लिए हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड का लक्स ट्रेड का मार्क पर एकाधिकार है। कोई दूसरी फर्म इसका प्रयोग नहीं कर सकती। परन्तु इस फर्म के साबुन की बिक्री में टाटा आयल मिल्ज आदि कई अन्य फर्मों से प्रतियोगिता है जो लक्स के स्थानापन्न उत्पन्न कर रही हैं। इस प्रकार की बाजार की स्थिति में एकाधिकार तथा प्रतियोगिता दोनों ही विशेषताएं पाई जाती हैं। बाजार की इस स्थिति में प्रतियोगिता की विशेषता यह है कि वस्तु के बहुत से विक्रेता होते हैं तथा उनकी वस्तुएं निकटतम स्थानापन्न होती हैं। एकाधिकारी की विशेषता यह है कि कोई दूसरा उत्पादक बिल्कुल उसी प्रकार की वस्तु का उत्पादन नहीं कर सकता।

वास्तव में, एकाधिकारी प्रतियोगिता पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के स्थितियों की बीच की स्थिति है। पूर्ण प्रतियोगिता में विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक अर्थात असीमित होती है जबकि एकाधिकारी प्रतियोगिता में फर्मों या विक्रेताओं की संख्या तो अधिक होती है, परन्तु वह संख्या सीमित होती है। उत्पादकों के उत्पादन में अंतर पाया जाता है। प्रत्येक उत्पादक का अपने-अपने उत्पादन में एकाधिकार होता है।

परिभाषाएं :

एकाधिकारी प्रतियोगिता बाजार की कुछ परिभाषाएं इस प्रकार हैं :

1. जेएस बेन के अनुसार, 'एकाधिकारी प्रतियोगिता उस उद्योग में पाई जाती है जहां काफी मात्रा में छोटे-छोटे विक्रेता हो जो विभिन्न पर साथ ही निकट स्थानापन्न बेच रहे हों।'

2. लेफ्टविच के अनुसार, 'एकाधिकारी प्रतियोगिता बाजार की वह स्थिति है जिससे किसी वस्तु के बहुत से विक्रेता होते हैं। परन्तु वस्तु विशेष के एक विक्रेता की वस्तु किसी भी अन्य विक्रेता की वस्तु से उपभोक्ता मस्तिष्क में किसी न किसी प्रकार से भिन्न होती है।'

3. प्रो. लिम चोग याह के अनुसार, 'एकाधिकारी प्रतियोगिता बाजार वह बाजार है जिसमें कई उत्पादक हैं परन्तु उनकी वस्तुओं में कुछ अंतर पाया जाता है।'

एकाधिकारी प्रतियोगिता की मान्यताएं या विशेषताएं :

1. फर्मों तथा क्रेताओं की अधिक संख्या : एकाधिकारी प्रतियोगिता में वस्तु का उत्पादन करने वाली फर्मों तथा क्रेताओं की संख्या पूर्ण प्रतियोगिता की तरह काफी अधिक होती है तथा छोटे–छोटे आकार की होती है। इससे अभिप्राय यह है कि प्रत्येक फर्म का बाजार पर केवल एक सीमित मात्रा में ही नियंत्रण होता है। इसके अतिरिक्त फर्मों की अधिक संख्या होने के कारण प्रत्येक फर्म अपनी कीमत नीति को स्वतंत्रतापूर्वक निर्धारित कर सकती है।

2. वस्तु विभेद : वस्तु विभेद, एकाधिकारी प्रतियोगिता का मुख्य लक्षण है। वस्तु विभेद उस समय होता है जब वस्तुओं के खरीददार एक वस्तु तथा दूसरी वस्तु में अंतर कर सकें। इसमें फर्मों की बहुत सी संख्या होती है। किन्तु उनकी वस्तुएं आपस में किसी न किसी तरह भिन्न होती हैं। परंतु ये वस्तुएं एक–दूसरे की निकटतम स्थानापन्न होती हैं। वस्तु विभेदीकरण, वस्तुओं की विशेषताओं के कारण जैसे आकार, माप, रंग, टिकाऊपन, क्वालिटी आदि से पैदा हो जाता है। वस्तु विभेदीकरण के बहुत उदाहरण हमें मिलते हैं जैसे लक्स, गोदरेज, हमाम, रेक्सोना आदि नहाने के साबुन, लिपटन, ब्रुकबांड आदि चाय, सिबाका, बिनाका, कालगेट आदि टूथपेस्ट।

3. फर्मों के प्रवेश तथा निकासी की स्वतंत्रता : एकाधिकारी प्रतियोगिता में पूर्ण प्रतियोगिता की तरह फर्मों को उद्योग में प्रविष्ट होने तथा उद्योग छोड़ने की स्वतंत्रता होती है परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता की तरह नई फर्मों को उद्योग में प्रवेश करने की निरपेक्ष स्वतंत्रता नहीं होती। उन्हें कई प्रकार की कठिनाइयों जैसे कैंपा कोला के उत्पादन में कानूनी पेटेंट आदि का सामना करना पड़ता है। इनका उत्पादन वे फर्में नहीं कर सकतीं।

4. विक्रय लागत : एकाधिकारी प्रतियोगिता की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसके अंतर्गत प्रत्येक फर्म को अपनी वस्तु का प्रचार करने के लिए विज्ञापन आदि पर बहुत खर्च करना पड़ता है। फर्म अपनी वस्तुओं को अधिक से अधिक मात्रा में बेचने के लिए अखबारों, सिनेमा, पत्रिकाओं, रेडियो, टीवी आदि में विज्ञापन देती हैं। इन सब पर जो खर्च आता है उसी को विक्रय लागत कहते हैं।

5. कीमत नीति : हर फर्म की अपनी कीमत नीति होती है। एकाधिकारी प्रतियोगिता में एक फर्म के औसत आय तथा सीमांत आय वक्र एकाधिकारी बाजार स्थिति की तरह ऊपर से नीचे की ओर गिरते हुए होते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि इस अवस्था में फर्म को अधिक वस्तु बेचने के लिए कीमत कम करनी पड़ेगी तथा कम वस्तु बेचने के लिए वह कीमत बढ़ा सकेगी। फर्म का उद्देश्य अल्पकाल तथा दीर्घकाल में अधिकतम लाभ प्राप्त करना है।

6. कम गतिशीलता : एकाधिकारी प्रतियोगिता में उत्पादन के साधनों तथा वस्तुओं और सेवाओं में पूर्ण गतिशीलता नहीं होती है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक साधन की सीमांत उत्पादकता समान नहीं होती।

7. अपूर्ण ज्ञान : एकाधिकारी प्रतियोगिता की अवस्था में वस्तु के क्रेताओं तथा साधनों के स्वामियों को वस्तु की विभिन्न कीमतों का ज्ञान नहीं होता। इसका कारण यह है कि वस्तु विभेद के कारण विभिन्न फर्मों के उत्पादन में तुलना करनी संभव नहीं होती। ग्राहकों को किसी एक विशेष फर्म के उत्पादन के प्रति रूचि हो जाती है। वे उसी फर्म का उत्पादन खरीदते हैं चाहे कीमत दूसरों से कुछ अधिक ही क्यों न हो। इसी प्रकार उत्पादन के साधनों को भी पूर्ण रूप से ज्ञात नहीं होता कि विभिन्न फर्में साधनों की सेवाओं के लिए क्या कीमत दे रही हैं।

8. गैर कीमत प्रतियोगिता : एकाधिकारी प्रतियोगिता की मुख्य विशेषता यह है कि इसके अंतर्गत विभिन्न फर्म वस्तु की कीमत में परिवर्तन किए बिना एक दूसरे से प्रतियोगिता करती हैं जैसे सर्फ तथा डेट का उत्पादन करने

वाली कंपनियों का उदाहरण लीजिए। यदि आप सर्फ का एक डिब्बा लेंगे तो एक शीशे का गिलास साथ में मिलेगा। इसी तरह डेट का डिब्बा लेने से स्टील का चम्मच साथ मिलेगा। इस प्रकार फर्मों में ग्राहकों को विभिन्न प्रकार की सुविधाएं तथा वस्तुए आदि प्रदान करके अपनी ओर आकर्षित करने की प्रतिद्वंद्विता चलती रहती है। इस प्रकार की प्रतियोगिता को ही कीमत में परिवर्तन किए बिना ही प्रतियोगिता कहा जाता है।

9. उत्पादन के साधनों की कीमत तथा तकनीक को स्थिर माना गया है।

1. एक ग्रुप के सभी उत्पादों की मांग तथा लागत वक्र एक समान हैं।

घ. द्वैद्धाधिकार : द्वैद्धाधिकार बाजार की उस अवस्था को कहते है जिससे एक वस्तु के केवल दो उत्पादक होते हैं। निर्धारित करते समय अपने प्रतियोगी द्वारा निर्धारित करते समय अपने प्रतियोगी द्वारा निर्धारित कीमत को ध्यान में रखती है। यदि दोनों फर्मों के उत्पादन में कोई अंतर न हो तो कीमत निर्धारण उनके बीच पाए जाने वाले संबंध पर निर्भर करेगा। यदि दोनों फर्में आपस में समझौता कर लेती हैं तो उनमें प्रतियोगिता की तरह वस्तु की ऊंची कीमत प्राप्त कर सकती हैं। इसके विपरीत यदि दोनों समझौता नहीं कर पातीं तो उनमें प्रतियोगिता होगी और पूर्ण प्रतियोगिता की तरह दोनों को न्यूनतम कीमत प्राप्त होगी। यदि द्वैद्धाधिकार की स्थिति में दोनों में वस्तु विभेद पाया जाता है अर्थात दोनों के उत्पादन में अंतर होता है तो जिस फर्म का उत्पादन अच्छा होगा, वह अधिक कीमत ले सकेगी।

ङ. अल्पाधिकार : अल्पाधिकार बाजार की वह अवस्था है जिसमें एक वस्तु के कुछ उत्पादक होते हैं। उदाहरण के लिए बाजार में कार का उत्पादन करने वाली केवल पांच फर्में हैं। अतएव कारों के बाजार को अल्पाधिकार कहा जाएगा। अल्पाधिकार की स्थिति में भी प्रत्येक फर्म को इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि दूसरी फर्म वस्तु की क्या कीमत ले रही है। इसलिए अल्पाधिकार की स्थिति में फर्मों में परस्पर निर्भरता पाई जाती है। यदि ये फर्में आपस में समझौता कर लें तो वस्तु की अधिक कीमत ले सकेंगी। इसके विपरीत यदि फर्म समझौता न करें तो उन्हें हानि उठानी पड़ सकती है। अल्पाधिकार की स्थित में कीमत निर्धारण करने का कोई एक निश्चित सिद्धान्त नहीं है।

अल्पाधिकार बाजार मुख्य विशेषताएं :

1. विक्रेताओं की अल्पसंख्या : अल्पाधिकार में विक्रेताओं की संख्या बहुत कम होती है तथा क्रेताओं की संख्या काफी अधिक होती है। विक्रेताओं की संख्या कम होने के कारण प्रत्येक विक्रेता का पूर्ति के एक बड़े भाग पर नियंत्रण रहता है। इसलिए वह बाजार कीमत को प्रभावित कर सकता है।

2. परस्पर निर्भरता : अल्पाधिकार की स्थिति में प्रत्येक फर्म किसी वस्तु के उत्पादन का महत्वपूर्ण भाग बेचती है। इसलिए उस वस्तु की कीमत तथा पूर्ति के संबंध में वह जो निर्णय लेती है, उसका दूसरी फर्मों के निर्णय पर भी प्रभाव पड़ता है। यदि एक फर्म कीमत कम कर देती है तो दूसरी फर्मों को भी कीमत कम करनी पड़ती है। इसके विपरीत यदि कोई फर्म कीमत बढ़ा देती है तो हो सकता है दूसरी फर्में अपने उत्पादन की कीमत में वृद्धि न करें। इसका उस फर्म की बिक्री पर प्रतिकूल असर पड़ेगा। इसलिए प्रत्येक फर्म को फैसले लेने से पहले दूसरों की प्रतिक्रिया को ध्यान में रखना पड़ता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि विभिन्न फर्में एक दूसरे पर निर्भर करती हैं अर्थात उनमें परस्पर निर्भरता पाई जाती है।

3. बिक्री लागत : प्रत्येक अल्पाधिकारी अपने उत्पादन की बिक्री को बढ़ाने के लिए विज्ञापन के विभिन्न प्रकारों पर बहुत अधिक धन खर्च करता है। अपने प्रतियोगियों से अधिक बिक्री करने के लिए वे कीमत में कमी करने के स्थान पर विज्ञापन तथा गैर कीमत प्रतियोगिता पर अधिक खर्च करता पसंद करते हैं। इसके फलस्वरूप उनकी बिक्री लागत बढ़ जाती है, परन्तु समाज को इससे कोई लाभ नहीं होता।

4. ग्रुप व्यवहार : अल्पाधिकार में परस्पर निर्भरता पाई जाती है तथा फर्मों में प्रतियोगिता भी होती है। प्रत्येक फर्म अपने लाभ को अधिकतम करना चाहिती है। फर्म इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए या तो स्वयं ही वस्तु की कीमत तथा मात्रा निर्धारित कर सकती है या ग्रुप के रूप में परस्पर समझौता करके।

5. मांग वक्र की अनिश्चितता : अल्पाधिकार में मांग वक्र अनिश्चित होती है। पूर्ण प्रतियोगिता में मांग वक्र पूर्णतया लोचदार होती है। एक फर्म बाजार में प्रचलित कीमत पर कितनी ही अधिक या कम वस्तु बेच सकती है। वस्तु के कम या अधिक बेचने का मांग वक्र पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। फर्म का मांग वक्र निश्चित होता है। एकाधिकारी का मांग वक्र भी निश्चित होता है क्योंकि उसका कोई प्रतियोगी नहीं होता। एकाधिकारी प्रतियोगिता की स्थिति में भी फर्म का मांग वक्र निश्चित होता है परंतु अल्पाधिकारी का मांग वक्र अनिश्चित होता है क्योंकि उसके द्वारा किए जाने वाले कीमत परिवर्तन पर अन्य प्रतियोगियों द्वारा किए गए परिवर्तनों का भी प्रभाव पड़ता है। इसलिए यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि कीमत के कम होने पर मांग अवश्य बढ़ेगी या कीमत बढ़ने पर मांग अवश्य कम होगी। अल्पाधिकार की स्थिति में मांग वक्र कोनेदार होती है।

७.३ सारांश :

बाजार शब्द अवश्य ही किसी विशेष स्थान की ओर संकेत नहीं करता परन्तु सदा वस्तुओं और उनके क्रेताओं एवं विक्रेताओं की ओर संकेत करता है जिनमें प्रत्यक्ष रूप से एक-दूसरे से प्रतियोगिता पाई जाती है। बाजार वह पद्धति है जिसके द्वारा विक्रेता और क्रेता एक-दूसरे के संपर्क में लाए जाते हैं। इसके लिए निश्चित स्थान होना आवश्यक नहीं है।

बाजार में क्रेता और विक्रेता में से एक नहीं हो तो वह बाजार नहीं कहलाता। यह आवश्यक नहीं है कि क्रेता तथा विक्रेता एक स्थान पर एक-दूसरे के सम्मुख होकर ही वस्तु का मोल-भाव तथा क्रय-विक्रय करें। वे टेलीफोन, तार आदि से भी आपसी संपर्क स्थापित कर सकते हैं।

प्रतियोगिता के आधार पर बाजार को इन भागों में बांटा जा सकता है : पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकारी, अपूर्ण प्रतियोगी, द्वैधिकार, अल्पाधिकार।

आपके शहर में कागज बेचने वाली बहुत सी दुकानें हैं। वे सब एक ही प्रकार का कागज बेचती हैं। आप किसी भी दुकानदार से कागज खरीद लें। आपको एक दस्ते के लिए 1 रुपया कीमत अदा करनी पड़ेगी। यदि कोई भी दुकानदार कागज की कीमत 1 रुपया 5 पैसे प्रति दस्ता लेगा तो कोई भी विद्यार्थी उससे कागज नहीं खरीदेगा। यदि एक दूसरा दुकानदार कागज के प्रति दस्ते के लिए 98 पैसे लेगा तो सभी विद्यार्थी उसी से कागज खरीदेंगे। अत: बाजार में एक ही कीमत निर्धारित होगी।

एकाधिकार, बाजार की वह स्थिति है जिसमें किसी वस्तु का केवल एक ही विक्रेता होता है। इसके एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए आपके शहर में किचन में काम आने वाली गैस बेचने वाली केवल एक ही फर्म इंडेन है। अपने घर या फैक्टरी के लिए बिजली केवल आप बिजली बोर्ड से प्राप्त कर सकते हैं। आप

केवल भारत सरकार की रेलों में यात्रा कर सकते हैं।

अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वास्तविक अवस्था है। व्यावहारिक जीवन में पूर्ण प्रतियोगिता तथा विशुद्ध एकाधिकार की स्थितियां दुर्लभ होती हैं। वास्तविक बाजार अपूर्ण रूप से प्रतियोगी होते हैं। उनमें पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार दोनों की ही कुछ विशेषताएं पाई जाती हैं। अर्थशास्त्र में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति का अध्ययन सन 1933 के बाद से किया जाने लगा है।

द्वैद्धाधिकार बाजार की उस अवस्था को कहते है जिससे एक वस्तु के केवल दो उत्पादक होते हैं। निर्धारित करते समय अपने प्रतियोगी द्वारा निर्धारित करते समय अपने प्रतियोगी द्वारा निर्धारित कीमत को ध्यान में रखती है। यदि दोनों फर्मों के उत्पादन में कोई अंतर न हो तो कीमत निर्धारण उनके बीच पाए जाने वाले संबंध पर निर्भर करेगा। यदि द्वैद्धाधिकार की स्थिति में दोनों में वस्तु विभेद पाया जाता है अर्थात दोनों के उत्पादन में अंतर होता है तो जिस फर्म का उत्पादन अच्छा होगा, वह अधिक कीमत ले सकेगी।

अल्पाधिकार बाजार की वह अवस्था है जिसमें एक वस्तु के कुछ उत्पादक होते हैं। उदाहरण के लिए बाजार में कार का उत्पादन करने वाली केवल पांच फर्में हैं। अतएव कारों के बाजार को अल्पाधिकार कहा जाएगा। अल्पाधिकार की स्थिति में भी प्रत्येक फर्म को इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि दूसरी फर्म वस्तु की क्या कीमत ले रही है।

७.४ सूचक शब्द :

बाजार : बाजार शब्द अवश्य ही किसी विशेष स्थान की ओर संकेत नहीं करता परन्तु सदा वस्तुओं और उनके क्रेताओं एवं विक्रेताओं की ओर संकेत करता है जिनमें प्रत्यक्ष रूप से एक-दूसरे से प्रतियोगिता पाई जाती है। बाजार वह पद्धति है जिसके द्वारा विक्रेता और क्रेता एक-दूसरे के संपर्क में लाए जाते हैं। इसके लिए निश्चित स्थान होना आवश्यक नहीं है।

क्रेता और विक्रेता : बाजार में क्रेता और विक्रेता दोनों ही होने चाहिए। यदि किसी क्षेत्र में उनमें से एक नहीं हो तो वह बाजार नहीं कहलाता। यह आवश्यक नहीं है कि क्रेता तथा विक्रेता एक स्थान पर एक-दूसरे के सम्मुख होकर ही वस्तु का मोल-भाव तथा क्रय-विक्रय करें। वे टेलीफोन, तार आदि से भी आपसी संपर्क स्थापित कर सकते हैं।

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार : आपको अर्थशास्त्र के प्रश्न लिखने के लिए एक दस्ते कागज की आवश्यकता है। आपके शहर में कागज बेचने वाली बहुत सी दुकानें हैं। वे सब एक ही प्रकार का कागज बेचती हैं। आप किसी भी दुकानदार से कागज खरीद लें। आपको एक दस्ते के लिए 1 रुपया कीमत अदा करनी पड़ेगी। यदि कोई भी दुकानदार कागज की कीमत 1 रुपया 5 पैसे प्रति दस्ता लेगा तो कोई भी विद्यार्थी उससे कागज नहीं खरीदेगा। यदि एक दूसरा दुकानदार कागज के प्रति दस्ते के लिए 98 पैसे लेगा तो सभी विद्यार्थी उसी से कागज खरीदेंगे। अत: बाजार में एक ही कीमत निर्धारित होगी।

एकाधिकार : एकाधिकार, बाजार की वह स्थिति है जिसमें किसी वस्तु का केवल एक ही विक्रेता होता है। इसके एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए आपके शहर में किचन में काम आने वाली गैस बेचने वाली केवल एक ही फर्म इंडेन है। अपने घर या फैक्टरी के लिए बिजली केवल आप बिजली बोर्ड से प्राप्त कर सकते हैं। अर्थशास्त्र में बाजार की इस स्थिति को जिसमें किसी वस्तु के उत्पादन पर केवल एक ही फर्म का

नियंत्रण होता है, एकाधिकार कहा जाता है।

अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार : अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वास्तविक अवस्था है। व्यावहारिक जीवन में पूर्ण प्रतियोगिता तथा विशुद्ध एकाधिकार की स्थितियां दुर्लभ होती हैं। वास्तविक बाजार अपूर्ण रूप से प्रतियोगी होते हैं। उनमें पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार दोनों की ही कुछ विशेषताएं पाई जाती हैं। अर्थशास्त्र में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति का अध्ययन सन 1933 के बाद से किया जाने लगा है।

द्वैद्धाधिकार : द्वैद्धाधिकार बाजार की उस अवस्था को कहते है जिससे एक वस्तु के केवल दो उत्पादक होते हैं। निर्धारित करते समय अपने प्रतियोगी द्वारा निर्धारित करते समय अपने प्रतियोगी द्वारा निर्धारित कीमत को ध्यान में रखती है। यदि दोनों फर्मों के उत्पादन में कोई अंतर न हो तो कीमत निर्धारण उनके बीच पाए जाने वाले संबंध पर निर्भर करेगा। यदि दोनों फर्में आपस में समझौता कर लेती हैं तो उनमें प्रतियोगिता की तरह वस्तु की ऊंची कीमत प्राप्त कर सकती हैं। इसके विपरीत यदि दोनों समझौता नहीं कर पातीं तो उनमें प्रतियोगिता होगी और पूर्ण प्रतियोगिता की तरह दोनों को न्यूनतम कीमत प्राप्त होगी।

अल्पाधिकार : अल्पाधिकार बाजार की वह अवस्था है जिसमें एक वस्तु के कुछ उत्पादक होते हैं। उदाहरण के लिए बाजार में कार का उत्पादन करने वाली केवल पांच फर्में हैं। अतएव कारों के बाजार को अल्पाधिकार कहा जाएगा। अल्पाधिकार की स्थिति में भी प्रत्येक फर्म को इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि दूसरी फर्म वस्तु की क्या कीमत ले रही है। इसलिए अल्पाधिकार की स्थिति में फर्मों में परस्पर निर्भरता पाई जाती है।

७.५ स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न :

- बाजार से आप क्या समझते हैं? विस्तार से समझाएं।
- अर्थशास्त्र में बाजार की मुख्य विशेषताएं क्या बताई गई हैं, संक्षिप्त टिप्पणी करें।
- बाजार की विभिन्न परिस्थितियों का वर्णन करें।
- मांग का क्या अर्थ है? मांग के नियम की व्याख्या करें।
- मांग के नियम के अपवाद किन परिस्थितियों को माना गया है?
-व्यक्तिगत पूर्ति तथा बाजार पूर्ति पर विस्तृत टिप्पणी करें।
-पूर्ति फलन क्या है? इसे प्रभावित करने वाले तत्वों का वर्णन करें।

७.६ संदर्भित पुस्तकें :

बिजनेस इकॉनोमिक्स : आर. के. लेखी, एस.एल. अग्रवाल।
दी इंडियन इकॉनोमी : रे।
प्लानिंग ग्रोथ एंड दी इकॉनोमी : रे।
आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था : डा. एससी गुप्ता।
अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र : आर. डी. शर्मा।
अंतरराष्ट्रीय व्यापार : दालचंद्र बागडी।
आर्थिक अवधारणाएं व पद्धतियां : एम. सी. गुप्ता।
भारतीय राजनीतिक अर्थशास्त्र : गिरीश नंदन शर्मा।

बीए मास कम्यूनिकेशन – द्वितीय वर्ष *बीएमसी –१०७* **अर्थशास्त्र**
खंड–ई इकाई – एक अध्याय – आठ

मांग का सिद्धांत

लेखक : डा. वीना शर्मा
एस. आई. एम. शैली में परिवर्तन :

अध्याय संरचना :

इस अध्याय में मांग के नियम की अवधारणा से परिचित होंगे। इस अध्याय में हम मांग का अर्थ, मांग का नियम, मांग तालिका, मांग वक्र, मांग के नियम के अपवाद, मांग विस्तार व मांग में वृद्धि में अंतर, मांग में संकुचन व कमी में अंतर, मांग में परस्पर संबंध आदि विषयों की चर्चा करेंगे। अध्याय की संरचना इस प्रकार होगी:

८.० उद्देश्य
८.१ परिचय
८.२ विषय वस्तु की प्रस्तुति
८.२.१ मांग का अर्थ
८.२.२ मांग का नियम
८.२.३ मांग तालिका
८.२.४ मांग वक्र
८.२.५ मांग के नियम के अपवाद
८.२.६ मांग विस्तार व मांग में वृद्धि में अंतर
८.२.७ मांग में संकुचन व कमी में अंतर
८.२.८ परस्पर संबंधी मांग
८.३ सारांश
८.४ सूचक शब्द
८.५ स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
८.६ संदर्भित पुस्तकें

८.० उद्देश्य :

इस अध्याय के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

- मांग का अर्थ समझना
- मांग के नियम से परिचित होना
- मांग तालिका के बारे में जानना
- मांग वक्र को समझना
- मांग के नियम के अपवादों से परिचित होना

मांग विस्तार व मांग में वृद्धि में अंतर जानना
मांग में संकुचन व कमी में अंतर समझना
परस्पर संबंधी मांग की जानकारी लेना

८.१ परिचय :

मांग किसी पदार्थ की वह मात्रा है जिसे एक उपभोक्ता समय की एक निश्चित अवधि में एक निश्चित कीमत पर खरीदने के लिए केवल इच्छुक या योग्य ही नहीं बल्कि तैयार भी है। अन्य शब्दों में, यह कीमत और मांगी गई मात्रा के बीच संबंध को बतलाती है। यह इस बात का संकेत देती है कि विभिन्न कीमतों पर एक वस्तु की कितनी मात्रा मांगी जाएगी। मांग का नियम यह बतलाता है कि अन्य बातें समान रहने पर किसी वस्तु की कीमत कम होने पर उसकी मांग बढ़ जाती है और कीमत बढ़ने पर उसकी मांग कम हो जाती है।

मांग तालिका किसी वस्तु की उन विभिन्न मात्राओं को प्रकट करती है जिन्हें एक उपभोक्ता किसी निश्चित समय में विभिन्न संभव कीमतों पर खरीदने के लिए इच्छुक होता है। मांग तालिका को रेखाचित्र द्वारा प्रकट करना मांग वक्र कहलाता है।

८.२ विषय वस्तु की प्रस्तुति :

इस अध्याय में मांग का अर्थ, मांग का नियम, मांग तालिका, मांग वक्र, मांग विस्तार व मांग में वृद्धि में अंतर, मांग में संकुचन व कमी में अंतर के बारे में चर्चा करेंगे। अध्याय में विषय वस्तु की प्रस्तुति निम्न प्रकार से होगी :

मांग का अर्थ
मांग का नियम
मांग तालिका
मांग वक्र
मांग के नियम के अपवाद
मांग विस्तार
मांग में वृद्धि में अंतर
मांग में संकुचन व कमी में अंतर
परस्पर संबंधी मांग

८.२.१ मांग का अर्थ : अर्थशास्त्र में मांग शब्द का प्रयोग विशेष अर्थों में किया जाता है। सामान्यतया इच्छा, आवश्यकता तथा मांग शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में किया जाता है, परन्तु अर्थशास्त्र में इन तीनों शब्दों के अर्थ भिन्न होते हैं। इच्छा एक अभिलाषापूर्ण विचार है। यदि आपकी एक रंगीन टीवी लेने की इच्छा है परन्तु आपके पास पर्याप्त धन नहीं है तो इच्छा आर्थिक दृष्टि से केवल एक इच्छा या अभिलाषापूर्ण विचार ही है, मांग नहीं। और यदि पर्याप्त धन होते हुए भी आप इसे रंगीन टीवी पर खर्च नहीं करना चाहते तो यह इच्छा केवल आवश्यकता ही कहलाएगी, मांग नहीं। यह इच्छा उसी स्थिति में मांग का रूप धारण करेगी जिस स्थिति में एक निश्चित समय और एक निश्चित कीमत पर, आप रंगीन टीवी खरीदने के लिए तैयार हैं। इस प्रकार मांग का उल्लेख एक निश्चित

समय और निश्चित कीमत पर किया जाना चाहिए। अत: मांग किसी पदार्थ की वह मात्रा है जिसे एक उपभोक्ता समय की एक निश्चित अवधि में एक निश्चित कीमत पर खरीदने के लिए केवल इच्छुक या योग्य ही नहीं बल्कि तैयार भी है। अन्य शब्दों में, यह कीमत और मांगी गई मात्रा के बीच संबंध को बतलाती है। यह इस बात का संकेत देती है कि विभिन्न कीमतों पर एक वस्तु की कितनी मात्रा मांगी जाएगी। यह बतला देना आवश्यक है कि अर्थशास्त्री मांग और मांगी गई मात्रा के बीच अंतर को बतलाते हैं। मांग वे मात्राएं हैं जो क्रेता समय की एक निश्चित अवधि में विभिन्न या वैकल्पिक कीमतों पर खरीदने के इच्छुक या योग्य होते हैं। इसके विपरीत मांगी गई मात्रा एक विशेष राशि है जो क्रेता एक निश्चित कीमत पर खरीदने के इच्छुक तथा योग्य होते हैं। उदाहरण के लिए, एक रुपया प्रति आइसक्रीम पर उपभोक्ता द्वारा 4 आइसक्रीम खरीदने की इच्छा तथा योग्यता मांगी गई मात्रा का उदाहरण है जबकि उपभोक्ता द्वारा एक रुपय पर चार आइसक्रीम, दो रुपये पर तीन आइसक्रीम तथा तीन रुपये पर दो आइसक्रीम खरीदने की योग्यता तथा इच्छा मांग का उदाहरण हैं।

मांग की परिभाषाएं :

1. फर्गुसन के शब्दों में, 'मांग एक वस्तु की मात्राओं को बतलाती है जो उपभोक्ता, अन्य बातें समान रहने पर, समय की एक निश्चित अवधि में प्रत्येक संभव कीमत पर खरीदने के इच्छुक तथा योग्य होते हैं।'

2. बीआर शिल्लर के विचार में, 'अन्य बातें समान रहने पर किसी दी हुई समय अवधि में वैकल्पिक कीमतों पर एक वस्तु की विशिष्ट मात्रा को खरीदने की योग्यता और इच्छा मांग है। एक व्यक्ति की किसी वस्तु के लिए मांग उस वस्तु की वह मात्रा जो वह एक निश्चित समय अवधि में प्रत्येक संभव कीमत पर खरीदने के लिए इच्छुक तथा योग्य है। जबकि किसी वस्तु के लिए बाजार मांग उपभोक्ताओं द्वारा मांगी गई मात्राओं का वह जोड़ है जो वे संभव कीमत पर खरीदने को तैयार हैं।'

उपरोक्त परिभाषाओं से ज्ञात होता है कि किसी वस्तु की मांग में पांच तत्व होते हैं : वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा, उस इच्छा को पूरा करने के लिए धन, धन खर्च करेन के लिए तत्परता, वस्तु की मांगी गई मात्रा तथा कीमत में संबंध और वस्तु की मांगी गई मात्रा तथा समय में संबंध।

८.२.२ मांग का नियम :

मांग का नियम यह बतलाता है कि अन्य बातें समान रहने पर किसी वस्तु की कीमत कम होने पर उसकी मांग बढ़ जाती है और कीमत बढ़ने पर उसकी मांग कम हो जाती है अर्थात वस्तु की कीमत तथा मांगी गई मात्रा में विपरीत संबंध है।

परिभाषाएं :

कुछ प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों ने मांग के नियम की निम्नलिखित परिभाषाएं दी हैं :

1. बिलास के शब्दों में, 'मांग के नियम के अनुसार, अनय बातें समान रहने पर एक निश्चित समय में कीमत कम होने पर वस्तु की मांग अधिक होगी तथा कीमत अधिक होने पर वस्तु की मांग होगी।'

2. सैम्युअलसन के अनुसार, 'मांग का नियम यह बतलाता है कि अन्य बातें समान रहने पर लोग कम कीमतों पर अधिक मात्रा खरीदेंगे तथा अधिक कीमतों पर कम मात्रा खरीदेंगे।'

3. मार्शल के विचार में, 'मांग का यह सामान्य नियम है कि अन्य बातें समान रहने पर, कीमत में कमी होने के कारण वस्तु की मांग बढ़ जाती है तथा इसमें वृद्धि होने के कारण वस्तु की मांग कम हो जाती है।'

मान्यताएं :

मांग का नियम तभी लागू होता है 'जब अन्य बातें समान हों'। इससे अभिप्राय यह है कि मांग को प्रभावित करने वाले, कीमत के अतिरिक्त अन्य तत्वों को स्थिर मान लिया जाता है। इन्हें इस नियम की मान्यताएं कहा जाता है। इन मान्यताओं को निम्नलिखित मांग फलन से स्पष्ट किया जा सकता है :

मांग के नियम की मान्यताएं कीमत के अतिरिक्त मांग फलन के अन्य सभी निर्धारक तत्व हैं। अन्य शब्दों में, मांग के नियम की निम्नलिखित मान्यताएं हैं :

1. संबंधित वस्तुओं की कीमत में परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
2. उपभोक्ता आय में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
3. उपभोक्ता की रुचियों तथा पसंदों में परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
4. उपभोक्ता द्वारा निकट भविष्य में वस्तु की कीमत में और अधिक परिवर्तन की संभावना नहीं होनी चाहिए।

मांग के नियम की व्याख्या :

मांग के नियम के अनुसार कीमत तथा मांग में विपरीत संबंध पाया जाता है, परन्तु यह संबंध आनुपातिक नहीं है अर्थात यह आवश्यक नहीं कि कीमत के आधी हो जाने पर वस्तुओं की मांग दुगुनी हो जाएगी। मांग का नियम तो कीमत में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप मांग में होने वाले परिवर्तन की दिशा को पकट करता है। नियम की व्याख्या मांग तालिका और मांग वक्र की सहायता से की जा सकती है।

८.२.३ मांग तालिका :

मकौनल के शब्दों में, 'मांग तालिका वह तालिका है जो एक वस्तु की विभिन्न कीमतों को दर्शाती है और प्रत्येक कीमत पर उस वस्तु की मांगी गई मात्रा को बतलाती है।'

अन्य शब्दों में, मांग तालिका किसी वस्तु की उन विभिन्न मात्राओं को प्रकट करती है जिन्हें एक उपभोक्ता किसी निश्चित समय में विभिन्न संभव कीमतों पर खरीदने के लिए इच्छुक होता है। इसके दो पक्ष हैं :

क. व्यक्तिगत मांग तालिका और

ख. बाजार मांग तालिका

क. व्यक्तिगत मांग तालिका : व्यक्तिगत मांग तालिका वह तालिका है जिससे यह प्रकट होता हे कि किसी निश्चित समय में एक उपभोक्ता किसी वस्तु की विभिन्न संभव कीमतों पर उसकी कितनी मात्राओं की मांग करेगा। तालिका नंबर 1 व्यक्तिगत मांग तालिका है। इस तालिका द्वारा एक समय में विभिन्न कीमतों पर एक उपभोक्ता द्वारा आइसक्रीम की खरीदी जाने वाली विभिन्न मात्राओं को प्रकट किया गया है।

तालिका नं. 1 : व्यक्तिगत मांग तालिका

प्रति इकाई कीमत (रुपये)	**मांगी गई मात्रा (इकाइयां)**
1	4
2	3
3	2
4	1

उपभोक्ता तालिका से पता चलता है कि जैसे-जैसे कीमत बढ़ती जाती है, उसकी मांग कम होती जाती है। जब आइसक्रीम की कीमत एक रुपये प्रति इकाई है तो 4 इकाइयों की मांग की जाती है जबकि कीमत 4 रुपये होने पर मांग एक इकाई की रह जाती है।

ख. बाजार मांग तालिका :

लीभाफस्की के शब्दों में, 'बाजार मांग तालिका की परिभाषा किसी वस्तु की उन मात्राओं के रूप में दी जाती है जो उस वस्तु के सभी उपभोक्त किसी निश्चित समय पर सभी संभव कीमतों पर खरीदेंगे।' प्रत्येक बाजार में किसी वस्तु जैसे चीनी के बहुत से क्रेता होते हैं। जिस तालिका द्वारा विभिन्न कीमतों पर उस वस्तु की बाजार में सब क्रेताओं की कुल मांग को प्रकट किया जाएगा, उसे बाजार मांग तालिका कहा जाएगा। अन्य शब्दों में यह किसी निश्चित समय में किसी एक विशेष वस्तु की विभिन्न कीमतों पर सभी उपभोक्ताओं की कुल मांग को दर्शाती है। तालिका नंबर 2 बाजार मांग तालिका है। यह तालिका सरलता की दृष्टि से इस मान्यता पर आधरित है कि एक्स वस्तु के ए व बी दो क्रेता हैं। उनकी व्यक्तिगत मांग को जोड़कर बाजार मांग तालिका का निर्माण किया गया है।

तालिका नं. 2 : बाजार मांग तालिका

एक्स की कीमत (रुपये में)	ए की मांग	बी की मांग	बाजार मांग (इकाइयां)
1	4	5	9
2	3	4	7
3	2	3	5
4	1	2	3

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि जब एक्स वस्तु की कीमत 1 रुपये प्रति इकाई है तो ए उपभोक्ता की मांग 4 इकाइयां और बी उपभोक्ता की मांग 5 इकाइयां हैं। अत: बाजार मांग 9 इकाइयां हैं। जब कीमत बढ़कर 4 रुपये प्रति इकाई हो जाती है तो मांग घटकर मात्र 7 इकाइयां रह जाती है।

८.२.४ मांग वक्र :

मांग तालिका को रेखाचित्र द्वारा प्रकट करना मांग वक्र कहलाता है। प्रो. लेफ्टविच के शब्दों में, 'मांग वक्र वस्तु की उन अधिकतम मात्राओं को प्रकट करती है जिन्हें उपभोक्ता समय की एक अवधि में विभिन्न कीमतों पर खरीदेंगे।' लिप्सी के अनुसार, 'वह वक्र जो किसी वस्तु की कीमत और वस्तु की मात्रा, जिसे उपभोक्ता खरीदना चाहता है, में संबंध दिखाता है, मांग वक्र कहलाता है।' मांग तालिका की भांति मांग वक्र भी दो प्रकार का हो सकता है :

क. व्यक्तिगत मांग वक्र :

व्यक्तिगत मांग वक्र वह वक्र है जो किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर एक उपभोक्ता द्वारा उस वस्तु की मांगी गई मात्रा को प्रकट करती है। इस मांग वक्र का प्रत्येक बिन्दु कीमत तथा मांग में संबंध प्रकट करता है। जब कीमत 4 रुपये है तो मांग 1 इकाई है। जब कीमत 1 रुपया है तो मांग 4 इकाइयां हैं। इस मांग वक्र का ढलान ऊपर बाईं ओर से नीचे दाईं ओर को है। जो यह दर्शाता है कि कीमत अधिक होने पर मांग कम होती है तथा कीमत कम होने पर मांग अधिक होती है।

ख. बाजार मांग वक्र :

बाजार मांग वक्र किसी वस्तु विशेष की विभिन्न कीमतों पर विभिन्न उपभोक्ताओं द्वारा मांगी गई मात्राओं के जोड़ को प्रकट करता है। इस मांग वक्र को व्यक्तिगत मांग वक्रों के समस्त जोड़ द्वारा खींचा जाता है। जब कीमत 4 रुपये प्रति इकाई है तो ए की मांग 1 इकाई और बी की मांग 2 इकाइयां हैं। यदि बाजार में केवल दो उपभोक्ता हैं तो बाजार मांग 1+2=3 इकाइयां होगी। व्यक्तिगत मांग वक्रों के समस्त द्वारा बाजार मांग वक्र प्राप्त हो जाता है, इसलिए इसका ढलान भी ऋणात्मक होता है।

–मांग वक्र का ढलान ऋणात्मक क्यों होता है ?

ऊपर दिए गए रेखाचित्रों से ज्ञात होता है कि मांग वक्र का ढलान बाएं से दाएं नीचे की ओर ऋणात्मक है। अर्थात कीमत कम होने पर मांग बढ़ती है तथा कीमत अधिक होने पर मांग घटती है। मांग वक्र के नीचे की ओर झुके होने, जो कि मांग के नियम का चित्रण करता है, के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :

1. सीमांत उपभोक्ता ह्रास नियम : कोई उपभोक्ता किसी वस्तु की मांग इसलिए कम करता है, क्योंकि उसमें उपयोगिता होती है। उपभोक्ता किसी निश्चित समय में, जैसे–जैसे एक वस्तु की इकाइयों का उपभोग करता जाता है, प्रत्येक अगली इकाई से प्राप्त होने वाली उपयोगिता कम होती जाती है। अन्य शब्दों में उसके उपभोग पर सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम लागू होना शुरू हो जाता है। सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम उस तथ्य को बतलाता है जिसके द्वारा किसी वस्तु की सीमांत उपयोगिता घटती जाती है, जब उस वस्तु की अधिक से अधिक इकाइयां खरीदी या उपभोग की जाती हैं। वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई के उपभोग करने से कुल अतिरिक्त इकाई तभी खरीदेगा जब पिछली इकाई की तुलना में उसे उस इकाई की कम कीमत देनी पड़ेगी। उपभोक्ता अपनी खरीद को उस बिन्दु पर रोक देगा जिस पर वस्तु से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता उस पर दी गई कीमत के बराबर हो जाएगी। अत:

कीमत= सीमांत उपयोगिता

मांग के नियम तथा सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम के संबंध को निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

उपयोग तालिका

आइसक्रीम इकाइयां	**सीमांत उपयोगिता (रुपयों में)**
1	8
2	6
3	4
4	2

यदि आइसक्रीम की कीमत 4 रुपये प्रति इकाई है तो उपभोक्ता 3 इकाई खरीदेगा। यदि कीमत बढ़कर 6 रुपये हो जाती है तो उपभोक्ता नई कीमत तथा सीमांत उपयोगिता में संतुलन बनाए रखने के लिए 2 आइसक्रीम खरीदेगा। अन्य शब्दों में, आइसक्रीम की कीमत बढ जाने पर उसकी मांग कम हो जाएगी। इसके विपरीत कीमत कम होकर 2 रुपये पर आ जाती है तो उपभोक्ता संतुलन बनाए रखने के लिए 4 आइसक्रीम खरीदेगा। अर्थात कीमत के कम

होने पर उसकी मांग बढ़ जाएगी। इससे स्पष्ट होता है कि सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम के लागू होने के कारण कीमत बढ़ने पर वस्तु की कम मात्रा के मांग तथा कीमत कम होने पर वस्तु की अधिक मात्रा में मांग की जाएगी। अत: सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम मांग के नियम का आधार है।

2. आय प्रभाव : एक वस्तु की कीमत में होने वाले परिवर्तन के कारण उपभोक्ता की वास्तविक आय में होने वाले परिवर्तन का वस्तु की मांग पर जो प्रभाव पड़ता है, उसे आय प्रभाव कहा जाता है। वास्तविक आय वह आय है जो उन वस्तुओं तथा सेवाओं के रूप में मांपी जाती है, जिन्हें एक व्यक्ति एक निश्चित मौद्रिक आय के द्वारा खरीद सकता है। जब वस्तु की सापेक्षिक कीमत घटती है तो वस्तु की पहले जितनी मात्रा खरीदने के लिए एक व्यक्ि को अपनीकम आय खर्च करनी पड़ेगी। अत: उस व्यक्ति के लिए यह संभव होगा कि क्रय शक्ति या वास्तविक आय बढ़ने के कारण वह उस वस्तु की अधिक मात्रा शरीद सके।

मान लीजिए आपकी प्रतिदिन की आय 15 रुपये है। आप सेब खरीदना चाहते हैं जिनकी कीमत 5 रुपये प्रति किलोग्राम है। आप अपनी निश्चित आय अर्थात 15 रुपये से 3 किलोग्राम सेब खरीद सकते हैं। यदि सेब की कीमत कम होकर 3 रुपये रह जाती है तो 3 किलो सेब खरीदने के बाद भी आपके पास 6 रुपये बच जाएंगे। इसके फलस्वरूप आपकी वास्तविक आय बढ़ जाएगी। इस बढ़ी हुई वास्तविक आय के कारण, वस्तु की मांग बढ़ जाती है और कीमत बढ़ने पर वास्तविक आय कम होने के कारण वस्तु की मांग कम हो जाती है।

3. प्रतिस्थापन प्रभाव : प्रतिस्थापन प्रभाव से अभिप्राय यह है कि जब एक वस्तु की कीमत में दूसरी वस्तु की तुलना में, परिवर्तन होता है तो कम कीमत वाली वस्तु की अधिक मात्रा तथा अधिक कीमत वाली वस्तु की कम मात्रा खरीदने की प्रेरणा मिलती है। अन्य शब्दों में, अपेक्षाकृत सस्ती वस्तु की महंगी वस्तु के स्थान पर प्रतिस्थापन किया जाता है। उदाहरण के लिए चाय व काफी तथा कोकाकोला और पेप्सीकोला प्रतिस्थापन वस्तुएं हैं। अपनी निश्चित आय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता उस वस्तु की अधिक इकाइयां खरीदेगा जिसकी कीमत दूसरी प्रतिस्थापन वस्तु की तुलना में कम हो गई है। अन्य शब्दों में, संबंधित वस्तु की कीमत में परिवर्तन के कारण कम खर्चीली वस्तु का अधिक खर्चीली वस्तु से प्रतिस्थापन किया जाता है। इस प्रकार कम खर्चीली या सस्ती वस्तु की मांग बढ जाती है। इसके विपरीत जब दो प्रतिस्थापनों में एक की कीमत बढ़ती है तो प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण उसकी मांग कम हो जाती है।

चाय और कॉफी एक दूसरे की प्रतिस्थापन वस्तुएं हैं। प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण कॉफी की मांग कम हो जाती है और उपभोक्ता चाय अधिक खरीदेंगे। हालांकि कॉफी की कीमत में कोई परिवर्तन नहीं आया है। अत: चाय की मांग इसलिए बढ़ी क्योंकि कीमत कम होने के कारण यह सस्ती है। इसके विपरीत यदि चाय की कीमत बढ़ जाती है तो उपभोक्ता चाय के स्थान पर कॉफी की अधिक मांग करेंगे क्योंकि कॉफी अब चाय की तुलना में सस्ती हो गई है।

अधिक संतुष्टि प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता उस वस्तु की अधिक इकाइयां खरीदेगा जिसकी कीमत उसके प्रतिस्थापन की तुलना में कम है। अन्य शब्दों में, उपभोक्ता उस वस्तु के स्थान पर सस्ती वस्तु का प्रतिस्थापन करेगा जिसकी कीमत में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। अत: सस्ती वस्तु की मांग में विस्तार होगा। इसके विपरीत, प्रतिस्थापनों में से जब एक की कीमत बढ़ती है तो इसकी मांग प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण अन्य वस्तु की तुलना में कम हो जाती है।

4. विभिन्न उपयोग : कई वस्तुओं के एक से अधिक उपयोग होते हैं। उदाहरण के लिए दूध का प्रयोग पीने के

लिए, दही व पनीर बनाने के लिए किया जा सकता है। दूध की कीमत अधिक होने पर उपभोक्ता उसका प्रयोग केवल पीने के लिए ही करेगा। परन्तु दूध की कीमत कम होने पर दूध की कुल मांग बढ़ जाएगी। अत: विभिन्न उपयोग वाली वस्तुओं की कीमत कम होने पर उसकी मांग में विस्तार हो जाता है।

5. उपभोक्ता समूह का आकार : जब किसी वस्तु की कीमत कम हो जाती है तब कई दूसरे उपभोक्ता, जो पहले वस्तु को पहली कीमत पर खरीद नहीं रहे थे, अब खरीदने लगेंगे। इसके फलस्वरूप उपभोक्ताओं की कुल संख्या या कुल बाजार मांग बढ़ जाएगी। उदाहरण के लिए यदि आमों की कीमत 3 रुपये प्रति किलो है तब केवल कुछ व्यक्ति ही आम खरीद सकेंगे। यदि आमों की कीमत कम होकर 15 रुपये प्रति किलो हो जाती है तो कुछ और उपभोक्ता भी आम खरीद सकेंगे। इस कारण आमों की मांग बढ जाएगी। इसके विपरीत यदि आमों की कीमत बढ़कर 4 रुपये प्रति किलो हो जाती है तो कुछ उपभोक्ता आम खरीदना बंद कर देंगे और मांग घट जाएगी। इस प्रकार कीमत परिवर्तन के साथ-साथ उपभोक्ता के समूह में परिवर्तन आता रहेगा जिनका वस्तु की कुल मांग पर प्रभाव पड़ेगा।

८.२.५ मांग के नियम के अपवाद या असामान्य मांग वक्र :

मांग के नियम के कुछ अपवाद भी हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि कुछ वस्तुओं की कीमत अधिक होने पर उनकी मांग बढ़ जाती है और कीमत कम होने पर उनकी मांग कम हो जाती है। ऐसी वस्तुओं का मांग वक्र डीडी जैसा कि चित्र में दिखाया गया है, नीचे से ऊपर की ओर उठ रहा है। इसे धनात्मक ढलान कहा जाता है। मांग वक्र के असामान्य होने के मुख्य कारण निम्न हैं :

1. प्रतिष्ठासूचक वस्तुएं या वेबलन वस्तुएं : वेबलन वस्तुएं (जिनका नाम वेबलन से जुड़ा है), प्रतिष्ठासूचक या विलासिता की वस्तुएं जैसे हीरे, जवाहरात, जेवर, बड़े कलाकारों की मौलिक कलाकृतियां, कीमती कालीन आदि की मांग तभी अधिक होती है जब उनकी कीमत अधिक होती है। हीरे और जवाहरात समाज में प्रतिष्ठासूचक वस्तुएं नहीं रहतीं तो इनकी मांग कम हो जाती है। वाटसन के शब्दों में, 'यदि उपभोक्ता एक वस्तु की वांछनीयता केवल उसकी कीमत द्वारा ही मापते हैं और उपभोक्ताओं को अन्य कुछ भी प्रभावित नहीं करता तब वे कम कीमत पर वस्तु की कम मात्रा और अधिक कीमत पर अधिक मात्रा खरीदते हैं।'

2. अज्ञानता : कई बार उपभोक्ता केवल अज्ञानता या भ्रम के कारण किसी वस्तु की नीची कीमत पर उसको कम महत्वपूर्ण मानते हैं और उसकी कम मात्रा खरीदते हैं। परन्तु कीमत अधिक होने पर उसे अधिक महत्वपूर्ण या उच्च कोटि की मानने लगते हैं। प्रो. बेन्हम ने इसके लिए एक रोचक उदाहरण बतलाया है कि प्रथम महायुद्ध में तस्वीरों वाली एक किताब छापी गई जिसकी कीमत केवल साढ़े दस शिलिंग रखी गई। परंतु इस कीत पर ग्राहक आकर्षित नहीं हुए। युद्ध के बाद वही किताब फिर छापी गई। अब इसकी कीमत साढ़े तीन पौंड रखी गई। इस बार किताब हाथों-हाथ बिक गई। किताब की अधिक कीमत होने से लोगों ने यह समझा कि महंगी होने के कारण किताब उच्च कोटी की है और उसकी माग भी बढ़ गई।

3. गिफ्फन पदार्थ : गिफ्फन पदार्थ (जिनका नाम 19वीं शताब्दी के अर्थशास्त्री राबर्ट गिफ्फन से जुड़ा है) निम्नकोटि के वे पदार्थ हैं जिनकी कीमत में कमी होने पर मांग कम हो जाती है। इस प्रकार मांग का नियम इस पर लागू नहीं होता।

उदाहरण के लिए एक साधारण उपभोक्ता के लिए बाजरा निम्न कोटी की वस्तु है। बाजरा की कीमत जैसे ही

गिरती है, उपभोक्ता की वास्तविक आय वैसे ही बढ़ जाती है। वह अपनी बढ़ी हुई वास्तविक आय से गेहूं अधिक खरीदेगा और इस प्रकार बाजरा की मांग कम हो जाएगी। इस प्रकार निम्न कोटी के पदार्थ की कीमत कम होने पर उनकी मांग कम हो जाती है। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि यह आवश्यक नहीं कि मांग का नियम सभी निम्न कोटी के पदार्थों पर लागू न हो।

4. भविष्य में कीमत वृद्धि या कमी की आशा : कई वस्तुओं की कीमतों के भविष्य में अधिक होने की आशा होती है, इसलिए लोग वर्तमान में ही कीमतें अधिक होने पर वस्तु की अधिक इकाइयां खरीदने लगते हैं। इसी प्रकार यदि भविष्य में कीमतें कम होने की आशा हो तो उपभोक्ता वर्तमान समय में कीमतें कम होने पर भी वस्तु की कम मात्रा खरीदेंगे। अत: इस स्थिति में मांग वक्र का ढलान ऊपर की ओर होगा। मांग के नियम का यह अपवाद तभी लागू होता है जब इसे नियम की मान्यता न माना जाए।

5. मांग के निर्धारक तत्व या मांग फलन : एक निश्चित समय पर किसी उपभोक्ता की किसी वस्तु विशेष के लिए मांग निम्नलिखित तत्वों पर निर्भर करती है :

क. वस्तु की सभी कीमत।

ख. संबंधित वस्तुओं की कीमतें।

ग. उपभोक्ता की आय।

घ. उपभोक्ता की रूचियां एवं प्राथमिकताएं।

ङ. कीमत परिवर्तन की संभावनाएं

इन तत्वों के अतिरिक्त बाजार मांग पर दो अन्य बातों का प्रभाव पड़ता है :

च. जनसंख्या का आकार तथा रचना

छ. आय का वितरण।

बेशक बाजार मांग फलन के मामले में एक विशेष वस्तु के लिए बाजार में सभी उपभोक्ताओं की आय, रूचियों तथा आशाओं को ध्यान में रखा जाता है। बाजार मांग फलन को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है :

$Dx = (Px, Pr, Y, T, P, Yd)$

यहां Dx एक्स वस्तु के लिए मांग, Px एक्स वस्तु की कीमत, Pr संबंधित वस्तुओं की कीमत, Y वस्तु के लिए बाजार में सभी उपभोक्ताओं की आय, T उपभोक्ताओं की रूचियां, E उपभोक्ताओं की संभावनाएं, आशाएं, P जनसंख्या का आकार और रचना तथा Yd आय का वितरण।

बाजार में मांग के विभिन्न निर्धारक तत्वों का विस्तारपूर्वक विवरण नीचे दिया गया है।

1. वस्तु की कीमत : सामान्यतया किसी भी वस्तु की मांग उसकी कीमत द्वारा निर्धारित होती है। यदि अन्य निर्धारक तत्व समान रहें या अन्य बातें समान रहें तो किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन आने से उसकी मांग में भी विपरीत परिवर्तन आता है। साधारणतया वस्तु की कीमत बढ़ने पर वस्तु की मांग घटती है। कीमत और मांग के इस संबंध को मांग का नियम कहा जाता है।

2. संबंधित वस्तुओं की कीमतें : किसी वस्तु की मांग न केवल उस वस्तु की अपनी बल्कि संबंधित वस्तुओं की कीमतों पर भी निर्भर करती है। वस्तुओं को व्यापक रूप से प्रतिस्थापन तथा पूरक वस्तुओं में वर्गीकृत किया जाता है।

क. प्रतिस्थापन वस्तुएं : प्रतिस्थापन वस्तुएं वे वस्तुएं होती हैं जिनका एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग किया जाता

है। जैसे चाय और कॉफी, लिमका और कोकाकोला। कोकाकोला की मांग का संबंध लिमका से है। यदि लिमका की कीमत बढ़ जाती है तो लोग कोकाकोला की मांग अधिक करेंगे और लिमका की कीमत कम होने पर कोकाकोला की मांग भी कम हो जाएगी। अन्य शब्दों में प्रतिस्थापन वस्तुओं के मामले में एक वस्तु की मांगी गई मात्रा का दूसरी वस्तु की कीमत से प्रत्यक्ष संबंध है। यदि एक वस्तु की कीमत मान लो कोकाकोला, बढ़ती है तो उसकी प्रतिस्थापन वस्तु लिमका की मांग बढ जाएगी। इसके विपरीत यदि कोकाकोला की कीमत घट जाती है तो इसके प्रतिस्थापन लिमका की मांग भी कम हो जाएगी।

ख. पूरक वस्तुएं : पूरक वस्तुएं वे वस्तुएं हैं जिनका प्रयोग एक साथ किया जाता है तथा जिनकी उपयोगिता एक दूसरे पर निर्भर करती है। जैसे कार और पेट्रोल तथा पैन और स्याही।

पूरक वस्तुओं की कीमत तथा मांग में विपरीत या ऋणात्मक संबंध होता है। एक पूरक वस्तु जैसे पैन की कीमत बढ़ने पर स्याही की मांग मे कमी हो जाती है। अन्य शब्दों में यदि दो वस्तुएं एक-दूसरे की पूरक हैं और यदि एक की कीमत बढ़ती है तो अन्य पूरक वस्तु की मांग कम हो जाएगी। अत: प्रतिस्थापन वस्तुओं के मामले में मांग वक्र का ढलान धनात्मक होता है जबकि पूरक वस्तुओं के मामले में मांग वक्र का ढलान ऋणात्मक होता है।

3. उपभोक्ता की आय : अनुभव यह बतलाता है कि संख्यात्मक दृष्टि से उपभोक्ता की आय तथा वस्तु की मांग में प्रत्यक्ष संबंध है। अन्य शब्दों में आय में वृद्धि वस्तुओं की मांग में वृद्धि लाती है और अर्थशास्त्री ऐसी वस्तुओं को सामान्य वस्तुएं कहते हैं। सामान्य वस्तुएं वे वस्तुएं हैं जिनकी मांग उपभोक्ता की आय बढ़ने के साथ बढ़ती है। कुछ वस्तुएं ऐसी भी हैं जिनकी मांग उपभोक्ता की आय बढ़ने पर कम हो जाती है, इन्हें निम्न कोटी की वस्तुएं कहा जाता है। अत: एक वस्तु की मांग तथा उपभोक्ता की आय के बीच के संबंध की व्याख्या तीन वर्गों के संदर्भ में की जाती है :

क. सामान्य वस्तुएं : सामान्य वस्तुएं वे वस्तुएं हैं जिनकी मांग उपभोक्ता की आय बढ़ने पर बढ़ती है और आय घटने पर घटती है। इस प्रकार उपभोक्ता की आय तथा मांगी गई मात्रा में प्रत्यक्ष या धनात्मक संबंध होता है।

ख. निम्नकोटि या घटिया वस्तुएं : निम्न कोटी या घटिया वस्तुएं वे वस्तुएं हैं जिनकी मांग उपभोक्ता की आय बढने पर घट जाती है और आय कम होने पर बढ जाती है। इस प्रकार की उपभोक्ता की कुल आय तथा वस्तु की मांग में विपरीत संबंध है।

ग. आवश्यक वस्तुएं तथा सस्ती वस्तुएं : उपभोक्ता की आय तथा आवश्यक व सस्ती वस्तुओं के बीच के संबंध का अध्ययन भी आवश्यक है। आवश्यक तथा सस्ती वस्तुओं जैसे नमक, माचिस, दालें, आलू आदि की मांग पर उपभोक्ता की आय में एक सीमा के बाद होने वाली वृद्धि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

4. रूचि तथा प्राथमिकता : किसी भी वस्तु या सेवा की मांग व्यक्ति की रूचियों तथा प्राथमिकताओं पर निर्भर करती है। इन शब्दों का प्रयोग काफी विस्तृत अर्थों में किया जाता है। इसके अंतर्गत फैशन, आदत, रीति-रिवाज आदि को शामिल किया जाता है। उपभोक्ताओं की रूचियों एवं प्राथमिकताओं पर विज्ञापन, फैशन में परिवर्तन, मौसम, नए आविष्कारों आदि का प्रभाव पड़ता है। अन्य बाते समान रहने पर उपभोक्ताओं की जिन वस्तुओं की लिए रूचि व प्राथमिकता बढ़ जाती है। उनकी मांग बढ जाती है। इसके विपरीत उपभोक्ता की प्राथमिकताओं एवं रूचियों में प्रतिकूल परिवर्तन होने पर वस्तु की मांग कम हो जाती है।

5. संभावनाएं : उपभोक्ता की संभावनाओं में परिवर्तन जैसे वस्तु की कीमतें, वस्तु की उपलब्धता और भावी आय आदि मांग के अन्य निर्धारक तत्व हैं। यदि उपभोक्ता को संभावना है कि भविष्य में कीमत बढ जाएगी तो

वह वर्तमान में वस्तु अधिक मात्रा में खरीदेगा चाहे उसकी कीमत अधिक ही क्यों न हो।

इसी प्रकार यदि उपभोक्ता को यह आशा है कि भविष्य में वस्तु की कीमत घट जाएगी तो वह वर्तमान में वस्तु की मांग कम या स्थगित कर देगा। भविष्य में आय बढ़ने या घटने का भी वर्तमान मांग पर प्रभाव पड़ता है। आय में वृद्धि की संभावना और वस्तु की मांग में साधारणतया सीधा संबंध होता है। भविष्य में आय बढ़ने की संभावना से मांग में वृद्धि होती है और भविष्य में आय के कम हो जाने का डर मांग को कम कर देता है।

6. जनसंख्या का आकार तथा रचना : बाजार मांग जनंसख्या के आकार तथा रचना में परिवर्तन होने से भी प्रभावित होती है। जनंसख्या में वृद्धि होने से सभी प्रकार की वस्तुओं की मांग बढ जाती है और जनसंख्या में कमी इनकी मांग को भी कम कर देती है।

जनसंख्या की रचना से अभिप्राय है कि जनसंख्या में बच्चे, नवयुवक, पुरुष, स्त्रियां आदि कितने हैं। यदि जनसंख्या की रचना में परिवर्तन आता है जैसे स्त्रियों की संख्या पुरूषों की तुलना में बढ जाए तो उन वस्तुओं की मांग बढ जाएगी, जिन्हें स्त्रियां खरीदती हैं।

7. आय का वितरण : समाज में होने वाले आय के वितरण का भी बाजार मांग पर प्रभाव पड़ता है। यदि आय का वितरण असमान है तो धनी व्यक्तियों के प्रयोग में आने वाली विलासिता की वस्तुओं जैसे रंगीन टीवी, वाशिंग मशीन, वीडियो कैमरा आदि की मांग अधिक हो जाएगी। दूसरी ओर यदि आय का वितरण समान है तो विलासिता की वस्तुओं की मांग कम होगी और आवश्यकता तथा आरामदायक वस्तुओं की मांग अधिक होगी।

8. मांगी गई मात्रा में परिवर्तन और मांग में परिवर्तन अथवा मांग वक्र का संचालन और मांग वक्र का खिसकाव : अर्थशास्त्री सामान्यतया उस समय विभिन्न अर्थ लेते हैं जब वे मांगी गई मात्रा में परिवर्तन तथा मांग मे परिवर्तन के बारे में बात करते हैं। मांगी गई मात्रा में परिवर्तन वस्तु की कीमत में होने वाले परिवर्तन का मांग पर पड़ने वाला प्रभाव बतलाता है जबकि मांग के अन्य निर्धारक तत्व स्थिर रहें। चूंकि एक निश्चित कीमत पर मांगी गई मात्रा को मांग वक्र के एक बिन्दु द्वारा दर्शाया जाता है। अत: मांगी गई मात्रा में परिवर्तन एक ही मांग वक्र के विभिन्न बिन्दुओं या मांग वक्र पर संचालन द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। इसके विपरीत मांग में परिवर्तन वस्तु की कीमत में परिवर्तन के कारण नहीं होता। यह आय, रूचियों, संबंधित वस्तुओं की कीमतों आदि में परिवर्तन के कारा वस्तु के लिए उपभोक्ता की मांग पर पड़ने वाले प्रभाव को व्यक्त करते हैं।

मांग में परिवर्तन संपूर्ण मांग वक्र पर बाईं ओर अथवा दाईं ओर खिसकाव तथा स्थानांतरण को प्रदर्शित करता है। मांग परिवर्तन के दोनों प्रकारों में अंतर बहुत महत्वपूर्ण है। एक ही मांग वक्र पर संचलन बाजार कीमत में परिवर्तन के कारण उपभोक्ताओं के समन्वय को बतलाता है। इसके विपरीत मांग वक्र का खिसकाव बाहरी तत्वों के फलस्वरूप उपभोक्ता द्वारा समन्वय को बतलाता है और अपनी बारी में संतुलन कीमत और मात्रा में परिवर्तन को बतलाता है।

1. मांगी गई मात्रा में परिवर्तन या मांग वक्र पर संचलन : यदि अन्य बातें समान रहें, जब मांगी गई मात्रा में केवल कीमत में परिवर्तन के कारण परिवर्तन होता है। तब मांग में होने वाले परितर्वतन को एक ही मांग वक्र के विभिन्न बिन्दुओं द्वारा प्रकट किया जाता है। कीमत के कम होने से मांग में होने वाली वृद्धि में होने वाली कीमत को मांग का संकुचन कहा जाता है। संक्षेप में, एक ही मांग वक्र पर संचलन वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप संभव होता है। इन संचलनों में यह मान लिया जाता है कि मांग के निर्धारण तत्व अपरिवर्तनीय हैं। एक दी गई मांग वक्र पर संचलन वस्तु की कीमत में परिवर्तन के कारण मांगी गई मात्रा में परिवर्तन को दर्शाता है।

मांगी गई मात्रा में परिवर्तन दो प्रकार के हो सकते हैं :

1. मांग का विस्तार : अन्य बातें समान रहने पर, जब किसी वस्तु की कीमत में कमी के फलस्वरूप उसकी मांग अधिक हो जाती है तो इसे मांग का विस्तार कहा जाता है। जैसा कि नीचे बनी तालिका में दिखाया गया है कि जब सेबों की कीमत 5 रुपये प्रति किलो है तो सेबो की मांग 1 किलो है। जब कीमत कम होकर 1 रुपया प्रति किलो हो जाती है तो मांग का विस्तार होकर नई मांग 5 किलो हो जाता है :

मांग का विस्तार

कीमत (रु.)	**मांग**	**वर्णन**
5 .``	1 किलो	कीमत में कमी
1 .``	5 किलो	मांग में विस्तार

१. मांग का संकुचन : अन्य बातें समान रहने पर मांग का संकुचन कीमत में वृद्धि के फलस्वरूप मांग की मात्रा में कमी को बतलाता है। जैसे कि निम्न तालिका में दिखाया गया है कि जब सेबों की कीमत 1 रुपया प्रति किलोग्राम है तो सेबों की मांग 5 किलो है। यदि सेबों की कीमत बढ़कर 5 रुपये प्रति किलो हो जाती है तो मांग का संकुचन होकर नई मांग 1 किलो ही रह जाती है।

मांग का संकुचन

कीमत	**मांग**	**वर्णन**
1 .``	5 किलो	कीमत में वृद्धि
5 .``	1 किलो	मांग में संकुचन

जब सेबों की कीमत 1 रुपये प्रति किलो है तो मांग 5 किलो है। सेबों की कीमत बढकर 5 रुपये प्रति किलो होने पर मांग घटकर 1 किलो हो जाती है और उपभोक्ता ए बिन्दु पर पहुंच जाता है।

3. मांग में परिवर्तन या मांग वक्र का खिसकाव : कीमत के अतिरिक्त मांग के किसी भी निर्धारक तत्व में परिवर्तन संपूर्ण मांग वक्र को दाईं या बाईं ओर खिसका देता है। मांग में वृद्धि दाईं ओर खिसकाव द्वारा और मांग में कमी को बाईं ओर खिसकाव द्वारा पूरी मांग वक्र पर दिखाया जाता है। अर्थशास्त्री इसे मांग में परिवर्तन कहते हैं। आय, अधिमान या संबंधित वस्तु की कीमत में परिवर्तन मांग में ऐसा परिवर्तन लाता है।

मांग में कमी या बाईं ओर मांग के खिसकाव के कारणों को संक्षेप में निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है :

1. उपभोक्ता की आय में कमी।
2. प्रतिस्थापन वस्तु की कीमत में कमी।
3. पूरक वस्तु की कीमत में वृद्धि।
4. वस्तु के लिए उपभोक्ता की रूचि तथा प्राथमिकता में प्रतिकूल परिवर्तन।
5. भविष्य में वस्तु की कीमत कम होने की संभावना।
6. जनसंख्या में कमी।

इसी भांति मांग में वृद्धि या दाईं ओर मांग के खिसकाव के कारण हैं :

1. उपभोक्ता की आय में वृद्धि।

2. प्रतिस्थापन वस्तु की कीमत में वृद्धि।
3. पूरक वस्तु की कीमत में कमी।
4. वस्तु के लिए उपभोक्ता की रूचि तथा प्राथमिकता में अनुकूल परिवर्तन।
5. भविष्य में वस्तु की कीमत बढने की संभावना।
6. जनसंख्या में वृद्धि।

1. मांग में वृद्धि : मांग में वृद्धि से अभिप्राय है वस्तु की कीमत के अतिरिक्त मांग के अन्य निर्धारक तत्वों में परिवर्तन के फलस्वरूप मांग का बढ़ना। मांग में वृद्धि मांग वक्र में बाहर की ओर या दाईं ओर खिसकाव को व्यक्त करती है।

क. समान कीमत–अधिक मांग : जब आइसक्रीम की कीमत 3 रुपये प्रति इकाई है तो मांग 3 इकाइयां हैं। यदि कीमत समान रहती है परन्तु मांग बढ़कर अधिक हो जाती है तो इसे मांग में वृद्धि कहा जाएगा।

ख. अधिक कीमत–समान मांग : जब आइसक्रीम की कीमत 3 रुपये प्रति इकाई है तो मांग 3 इकाइयां हैं। यदि कीमत बढकर 4 रुपये प्रति इकाई हो जाती है परन्तु मांग में कोई कमी न आए तो इसे भी मांग में वृद्धि कहा जाएगा।

मांग में वृद्धि

आइसक्रीम की कीमत	**खरीदी गई मात्रा**
समान कीमत	अधिक खरीद/मांग
3 रुपये	3
3 रुपये	4
अधिक कीमत	समान मांग
3 रुपये	3
4 रुपये	3

2. मांग में कमी : मांग में कमी से अभिप्राय वस्तु की कीमत के अतिरिक्त अन्य निर्धारक तत्वों में परिवर्तन के फलस्वरूप मांग में गिरावट आना है। मांग में कमी, मांग वक्र के अंदर की ओर अथवा बाईं ओर खिसकाव को व्यक्त करती है। अत: मांग में दो प्रकार से कमी आ सकती है :

क. समान कीमत कम खरीद: जब कीमत 3 रुपये है तब आइसक्रीम की खरीद 3 इकाइयों की है। यदि कीमत समान अर्थात 3 रुपये प्रति इकाई ही रहे परन्तु मांग कम होकर 2 इकाइयां हो जाए तब यह मांग में कमी का उदाहरण है।

ख. कम कीमत समान मांग : जब कीमत 3 रुपये है, तब आइसक्रीम की मांग 3 इकाइयां है। जब कीमत घटकर 2 रुपये हो जाती है तो मांग पहले जितनी रहती है तो यह मांग में कमी का उदाहरण है। इसे निम्न तालिका द्वारा दर्शाया जा सकता है :

मांग में कमी

आइसक्रीम की कीमत	**मांग**
समान कीमत	कम मांग

3 रुपये	3
3 रुपये	2
कम कीमत	समान मांग
3 रुपये	3
2 रुपये	3

संक्षेप में जब वस्तु की कीमत में परिवर्तन आता है तो अन्य बातें समान रहने पर मांग वक्र पर संचलन होता हे और मांगी गई मात्रा में परिवर्तन आता है। मांगी गई मात्रा के बढने को विस्तार तथा कमी को संकुचन कहा जाता है। इसके विपरीत जब वस्तु की कीमत स्थिर रहती है परन्तु मांग के अन्य निर्धारक तत्वों में परिवर्तन आता है तो मांग वक्र में खिसकाव आता है। मांग वक्र का दाईं ओर सरकना मांग में वृद्धि कहलाता है जबकि मांग वक्र का बाईं ओर खिसकना मांग में कमी कहलाता है।

८.२.६ मांग में विस्तार व वृद्धि में अंतर :

मांग में विस्तार से अभिप्राय है, अन्य बातें समान रहने पर एक वस्तु की कीमत में गिरावट के कारण मांग का बढ़ना। इसको एक ही मांग वक्र के ऊंचे व नीचे बिन्दु पर संचलन या हरकत द्वारा व्यक्त किया जाता है। दूसरी ओर मांग में वृद्धि से अभिप्राय है कीमत में नहीं बल्कि मांग के अन्य निर्धारक तत्वों में परिवर्तन के कारण मांग का बढ़ना। इसे संपूर्ण मांग वक्र के ऊपर की ओर खिसकाव या सरकने द्वारा व्यक्त किया जाता है।

८.२.७ मांग में संकुचन तथा कमी में अंतर :

मांग में संकुचन से अभिप्राय है, अन्य बातें समान रहने पर, एक वस्तु की कीमत बढ़ने के कारण मांग का कम हो जाना। इसको एक ही मांग वक्र के निचले बिन्दु से ऊंचे बिन्दु पर संचलन या हरकत द्वारा व्यक्त किया जाता है। दूसरी ओर, मांग में कमी से अभिप्राय है कीमत में नहीं बल्कि मांग के अन्य निर्धारक तत्वों में परिवर्तन के कारण मांग का कम हो जाना। इसे संपूर्ण मांग वक्र के नीचे या पीछे की ओर खिसकाव द्वारा व्यक्त किया जाता है।

८.२.८ परस्पर संबंधी मांग : जब किसी वस्तु की मांग दूसरी वस्तु की मांग पर निर्भर करती है तो उसे परस्पर संबंधित मांग कहते हैं। ये निम्न प्रकार की हो सकती है :

क. संयुक्त या पूरक मांग : जब किसी आवश्यकता की संतुष्टि के लिए दो या दो से अधिक वस्तुओं की मांग एक साथ की जाती है तो इसे संयुक्त या पूरक मांग कहते हैं। जैसे फोटो लेने के लिए फिल्म तथा कैमरे की मांग, मोटर चलाने के लिए कार तथा पेट्रोल की मांग, चाय के लिए दूध-चीनी तथा चाय की पत्ती की मांग। संयुक्त मांग वाली वस्तुओं को पूरक वस्तुएं कहा जाता है।

ख. सामूहिक मांग : जब किसी वस्तु से कई आवश्यकताएं पूरी की जा सकती हों तो उसकी मांग सामूहिक मांग कहलाती है जैसे दूध की मांग, दही, पनीर, खोआ आदि कई कार्यों के लिए की जाती है तो इसकी कुल मांग सामूहिक मांग कहलाएगी।

ग. प्रत्यक्ष तथा व्युत्पन्न मांग : जब किसी वस्तु की मांग उसका प्रत्यक्ष उपभोग करने के लिए की जाती है तो उसे प्रत्यक्ष मांग कहते हैं। जैसे कोयले की मांग कमरा गर्म करने के लिए की जाए या दूध की मांग दूध पीने के लिए की जाए तो यह प्रत्यक्ष मांग कहलाएगी। इसके विपरीत यदि एक वस्तु की मांग किसी दूसरी वस्तु को बनाने के लिए की जाती है तो यह व्युत्पन्न मांग कहलाती है। अन्य शब्दों में व्युत्पन्न मांग से अभिप्राय उस मांग से है जो किसी उत्पाद के साधन को व्यक्त करे जिसका प्रयोग किसी अन्य वस्तु के उत्पादन में किए जाने के कारण उसमें मांग से उव्युत्पन्न हो। जैसे फैक्टरी में कोयले की मांग, मकान बनाने के लिए ईंट, सीमेंट, लकड़ी आदि की मांग।

घ. प्रतियोगी मांग : जब दो वस्तुएं एक दूसरे की प्रतिस्थापन होती हैं । इनमें से एक की मांग बढ़ने पर दूसरे की मांग कम हो जाती है, इसलिए इन वस्तुओं की मांग को प्रतियोगी मांग कहा जाता है। इन वस्तुओं को प्रतिस्थापन वस्तुएं भी कहा जाता है। प्रतिस्थाापन वस्तुएं वे वस्तुएं होती हैं जो एक–दूसरे के लिए प्रयोग की जा सकती हैं। निश्चि आय पर एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर दूसरी की मांग में परिवर्तन आता है जैसे कोका कोला और पेप्सी कोला। यदि कोका कोला की कीमत बढ़ जाती है तो पेप्सी कोला की मांग में वृद्धि हो जाएगी।

८.३ सारांश :

मांग किसी पदार्थ की वह मात्रा है जिसे एक उपभोक्ता समय की एक निश्चित अवधि में एक निश्चित कीमत पर खरीदने के लिए केवल इच्छुक या योग्य ही नहीं बल्कि तैयार भी है। अन्य शब्दों में, यह कीमत और मांगी गई मात्रा के बीच संबंध को बतलाती है। यह इस बात का संकेत देती है कि विभिन्न कीमतों पर एक वस्तु की कितनी मात्रा मांगी जाएगी।

किसी वस्तु की मांग में पांच तत्व होते हैं : वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा, उस इच्छा को पूरा करने के लिए धन, धन खर्च करेन के लिए तत्परता, वस्तु की मांगी गई मात्रा तथा कीमत में संबंध और वस्तु की मांगी गई मात्रा तथा समय में संबंध।

मांग का नियम यह बतलाता है कि अन्य बातें समान रहने पर किसी वस्तु की कीमत कम होने पर उसकी मांग बढ़ जाती है और कीमत बढ़ने पर उसकी मांग कम हो जाती है। मांग तालिका वह तालिका है जो एक वस्तु की विभिन्न कीमतों को दर्शाती है और प्रत्येक कीमत पर उस वस्तु की मांगी गई मात्रा को बतलाती है। मांग तालिका को रेखाचित्र द्वारा प्रकट करना मांग वक्र कहलाता है।

जब एक वस्तु की कीमत में दूसरी वस्तु की तुलना में, परिवर्तन होता है तो कम कीमत वाली वस्तु की अधिक मात्रा तथा अधिक कीमत वाली वस्तु की कम मात्रा खरीदने की प्रेरणा मिलती है। अन्य शब्दों में, अपेक्षाकृत सस्ती वस्तु की महंगी वस्तु के स्थान पर प्रतिस्थापन किया जाता है।

वेबलन वस्तुएं , प्रतिष्ठासूचक या विलासिता की वस्तुएं जैसे हीरे, जवाहरात, जेवर, बड़े कलाकारों की मौलिक कलाकृतियां, कीमती कालीन आदि की मांग तभी अधिक होती है जब उनकी कीमत अधिक होती है। हीरे और जवाहरात समाज में प्रतिष्ठासूचक वस्तुएं नहीं रहतीं तो इनकी मांग कम हो जाती है। गिफ्फन पदार्थ (जिनका नाम 19वीं शताब्दी के अर्थशास्त्री राबर्ट गिफ्फन से जुड़ा है) निम्नकोटि के वे पदार्थ हैं जिनकी कीमत में कमी होने पर मांग कम हो जाती है।

प्रतिस्थापन वस्तुएं वे वस्तुएं होती हैं जिनका एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग किया जाता है। जैसे चाय और कॉफी, लिमका और कोकाकोला। कोकाकोला की मांग का संबंध लिमका से है। यदि लिमका की कीमत बढ़ जाती है

तो लोग कोकाकोला की मांग अधिक करेंगे और लिमका की कीमत कम होने पर कोकाकोला की मांग भी कम हो जाएगी।

जिनका प्रयोग एक साथ किया जाता है तथा जिनकी उपयोगिता एक दूसरे पर निर्भर करती है वे पूरक वस्तुएं हैं। जैसे कार और पेट्रोल तथा पैन और स्याही। पूरक वस्तुओं की कीमत तथा मांग में विपरीत या ऋणात्मक संबंध होता है।

८.४ सूचक शब्द :

मांग : मांग किसी पदार्थ की वह मात्रा है जिसे एक उपभोक्ता समय की एक निश्चित अवधि में एक निश्चित कीमत पर खरीदने के लिए केवल इच्छुक या योग्य ही नहीं बल्कि तैयार भी है। अन्य शब्दों में, यह कीमत और मांगी गई मात्रा के बीच संबंध को बतलाती है। यह इस बात का संकेत देती है कि विभिन्न कीमतों पर एक वस्तु की कितनी मात्रा मांगी जाएगी।

मांग तालिका :मांग तालिका वह तालिका है जो एक वस्तु की विभिन्न कीमतों को दर्शाती है और प्रत्येक कीमत पर उस वस्तु की मांगी गई मात्रा को बतलाती है। मांग तालिका किसी वस्तु की उन विभिन्न मात्राओं को प्रकट करती है जिन्हें एक उपभोक्ता किसी निश्चित समय में विभिन्न संभव कीमतों पर खरीदने के लिए इच्छुक होता है।

मांग वक्र : मांग तालिका को रेखाचित्र द्वारा प्रकट करना मांग वक्र कहलाता है। मांग वक्र वस्तु की उन अधिकतम मात्राओं को प्रकट करती है जिन्हें उपभोक्ता समय की एक अवधि में विभिन्न कीमतों पर खरीदेंगे।

प्रतिस्थापन प्रभाव : प्रतिस्थापन प्रभाव से अभिप्राय यह है कि जब एक वस्तु की कीमत में दूसरी वस्तु की तुलना में, परिवर्तन होता है तो कम कीमत वाली वस्तु की अधिक मात्रा तथा अधिक कीमत वाली वस्तु की कम मात्रा खरीदने की प्रेरणा मिलती है। अन्य शब्दों में, अपेक्षाकृत सस्ती वस्तु की महंगी वस्तु के स्थान पर प्रतिस्थापन किया जाता है।

वेबलन वस्तुएं : वेबलन वस्तुएं (जिनका नाम वेबलन से जुड़ा है), प्रतिष्ठासूचक या विलासिता की वस्तुएं जैसे हीरे, जवाहरात, जेवर, बड़े कलाकारों की मौलिक कलाकृतियां, कीमती कालीन आदि की मांग तभी अधिक होती है जब उनकी कीमत अधिक होती है। हीरे और जवाहरात समाज में प्रतिष्ठासूचक वस्तुएं नहीं रहतीं तो इनकी मांग कम हो जाती है।

गिफ्फन पदार्थ : गिफ्फन पदार्थ (जिनका नाम 19वीं शताब्दी के अर्थशास्त्री राबर्ट गिफ्फन से जुड़ा है) निम्नकोटि के वे पदार्थ हैं जिनकी कीमत में कमी होने पर मांग कम हो जाती है।

प्रतिस्थापन वस्तुएं : प्रतिस्थापन वस्तुएं वे वस्तुएं होती हैं जिनका एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग किया जाता है। जैसे चाय और कॉफी, लिमका और कोकाकोला। कोकाकोला की मांग का संबंध लिमका से है। यदि लिमका की कीमत बढ़ जाती है तो लोग कोकाकोला की मांग अधिक करेंगे और लिमका की कीमत कम होने पर कोकाकोला की मांग भी कम हो जाएगी।

पूरक वस्तुएं : पूरक वस्तुएं वे वस्तुएं हैं जिनका प्रयोग एक साथ किया जाता है तथा जिनकी उपयोगिता एक दूसरे पर निर्भर करती है। जैसे कार और पेट्रोल तथा पैन और स्याही। पूरक वस्तुओं की कीमत तथा मांग में विपरीत या ऋणात्मक संबंध होता है।

८.५ स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न :

- मांग से आप क्या समझते हैं? उदाहरण सहित वर्णन करें।
- मांग के नियम के बारे में विस्तार से बताएं।
- मांग तालिका व मांग वक्र का वर्णन करें।
- मांग के नियम के अपवाद कौन-कौन से हैं? व्याख्या करें।
- मांग विस्तार व मांग में वृद्धि तथा मांग में संकुचन व कमी में अंतर का वर्णन करें।

८.६ संदर्भित पुस्तकें :

बिजनेस इकॉनोमिक्स : आर. के. लेखी, एस.एल. अग्रवाल।

दी इंडियन इकॉनोमी : रे।

प्लानिंग ग्रोथ एंड दी इकॉनोमी : रे।

आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था : डा. एससी गुप्ता।

अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र : आर. डी. शर्मा।

अंतरराष्ट्रीय व्यापार : दालचंद्र बागडी।

आर्थिक अवधारणाएं व पद्धतियां : एम. सी. गुप्ता।

भारतीय राजनीतिक अर्थशास्त्र : गिरीश नंदन शर्मा।

बीए मास कम्यूनिकेशन – द्वितीय वर्ष *बीएमसी –१०७* **अर्थशास्त्र**
खंड–ई इकाई – एक अध्याय – नौ

उपभोक्ता व्यवहार

लेखक : डा. वीना शर्मा
एस. आई. एम. शैली में परिवर्तन :

अध्याय संरचना :

इस अध्याय में उपभोक्ता व्यवहार से परिचित होंगे। इस अध्याय में हम गणनावाचक उपयोगिता विश्लेषण, उपयोगिता की अवधारणाएं, उपयोगिता विश्लेषण के नियम के अपवाद, उपयोगिता विश्लेषण के नियम की आधुनिक व्याख्या, उपभोक्ता संतुलन क्या है आदि विषयों की चर्चा करेंगे। अध्याय की संरचना इस प्रकार होगी:

९.० उद्देश्य
९.१ परिचय
९.२ विषय वस्तु की प्रस्तुति
९.२.१ उपभोक्ता व्यवहार की अवधारणा
९.२.२ गणनावाचक उपयोगिता विश्लेषण
९.२.३ उपयोगिता की अवधारणाएं
९.२.४ उपयोगिता विश्लेषण के नियम
९.२.५ उपयोगिता विश्लेषण के नियम की आधुनिक व्याख्या
९.२.६ उपभोक्ता संतुलन क्या है
९.३ सारांश
९.४ सूचक शब्द
९.५ स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
९.६ संदर्भित पुस्तकें

९.० उद्देश्य :

इस अध्याय के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

- उपभोक्ता व्यवहार की अवधारणा समझना
- गणनावाचक उपयोगिता विश्लेषण के बारे में जानना
- उपयोगिता की अवधारणाओं से परिचित होना
- उपयोगिता विश्लेषण के नियमों के बारे में जानना
- उपयोगिता विश्लेषण के नियम की आधुनिक व्याख्या की जानकारी लेना
- उपभोक्ता संतुलन के बारे में जानना

९.१ परिचय :

उपभोक्ता किसी वस्तु को इसलिए खरीदता है, क्योंकि इससे उसकी कोई न कोई आवश्यकता पूरी होती है। अपनी आवश्यकता संतुष्टि के लिए उपभोक्ता कौन सी वस्तु खरीदेगा, उसके बदले में कितना पैसा खर्च करने को तैयार होगा, प्रतिस्थापन उपलब्ध होने पर उपभोक्ता वस्तु का चयन कैसे करेगा तथा उसका क्रय कितनी मात्रा में किया जाएगा आदि को उपभोक्ता व्यवहार किया जाता है। अत: विभिन्न परिस्थितियों में क्रय के समय उपभोक्ता कैसा व्यवहार करेगा, वही उपभोक्ता व्यवहार कहलाता है। इसके लिए गणनावाचक उपयोगिता, क्रमवाचक उपयोगिता तथा प्रकट अधिमान विश्लेषण नामक सिद्धांत अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित किए गए हैं। इनके द्वारा अर्थशास्त्रियों ने वर्णन किया है कि कोई उपभोक्ता किसी विशेष परिस्थिति में विशेष वस्तु खरीदने के लिए कौन से तरीके अपनाएगा।

९.२ विषय वस्तु की प्रस्तुति :

इस अध्याय में हम गणनावाचक उपयोगिता विश्लेषण, उपयोगिता की अवधारणाएं, उपयोगिता विश्लेषण के नियम के अपवाद, उपभोक्ता संतुलन के बारे में चर्चा करेंगे। अध्याय में विषय वस्तु की प्रस्तुति निम्न प्रकार से होगी :

उपभोक्ता व्यवहार की अवधारणा
गणनावाचक उपयोगिता विश्लेषण
उपयोगिता की अवधारणाएं
उपयोगिता विश्लेषण के नियम
उपयोगिता विश्लेषण के नियम की आधुनिक व्याख्या
उपभोक्ता संतुलन क्या है

९.२.१ उपभोक्ता व्यवहार की अवधारणा : :

मांग सिद्धांत के संबंध में दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं : 1. एक उपभोक्ता किसी वस्तु या सेवा की मांग क्यों करता है। इसका उत्तर यह है कि एक उपभोक्ता किसी वस्तु या सेवा की मांग इसलिए करता है, क्योंकि उसके लिए इस पदार्थ में उपयोगिता होती है। किसी पदार्थ की आवश्यकता संतुष्ट करने की शक्ति को उपयोगिता कहा जाता है। दूसरा प्रश्न यह है कि एक उपभोक्ता को अपनी निश्चित आय विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं पर किस प्रकार खर्च करनी चाहिए जिससे वह अधिकतम संतुष्टि प्राप्त कर सके अर्थात उपभोक्ता संतुलन की स्थिति प्राप्त कर सके। अर्थशास्त्रियों ने इस संबंध में मुख्य रूप से तीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है :

1. गणनावाचक उपयोगिता विश्लेषण
2. क्रमवाचक उपयोगिता विश्लेषण
3. प्रकट अधिमान विश्लेषण

इस अध्याय में गणनावाचक उपयोगिता विश्लेषण का अध्ययन किया जाएगा।

९.२.२ गणनावाचक उपयोगिता विश्लेषण :

यूरोप के विभिन्न देशों के अर्थशास्त्रियों ने 19वीं शताब्दी में गुणवाचक उपयोगिता विश्लेषण का प्रतिपादन

परंपरावादी अर्थशास्त्रियों जैसे एडम स्मिथ, रिकार्डो आदि के विचारों की आलोचना के रूप में किया था। इस धारणा का विकास ड्यूपिट, गोसेन, वालरस, मेंजर तथा जवेन्स ने किया था। बीसवीं शताब्दी में मार्शल तथा पीगू ने गणनावाचक उपयोगिता विश्लेषण की विवेचना की है। इस विश्लेषण के अनुसार उपयोगिता को गणनावाचक संख्याओं जैसे 1, 2, 3, 4 में मापा जा सकता है। गणनावाचक संख्याएं वे संख्याएं हैं जिन्हें थोड़ा घटाया या बढाया जा सकता है प्रो फिशर ने उपयोगिता के माप के व्यक्त करने के लिए यूटिल मापदंड का प्रयोग किया है। अत: गणनावाचक उपयोगिता विश्लेषण के अनुसार यह कहा जा सकता है कि हमें एक कप चाय से 1 यूटिल, एक कॉफी से 5 यूटिल तथा एक रसगुल्ले से 2 यूटिल उपयोगिता प्राप्त होती है।

उपयोगिता के अर्थ : अर्थशस्त्र में उपयोगिता शब्द का प्रयोग किसी भी वस्तु अथवा सेवा के उस गुण के लिए किया जाता है जिसके फलस्वरूप हमारी आवश्यकताओं की संतुष्टि होती है। उपयोगिता किसी वस्तु की वह शक्ति है जो आवश्यकता को पूरा करती है।

परिभाषाएं :

1. प्रो. जेवन्स के अनुसार, 'उपयोगिता से हमारा अभिप्राय किसी वस्तु के उस अमूर्त गुण से है जिसके द्वारा हमारे उद्देश्यों की पूर्ति होती है।'

2. प्रो. हिब्डन के अनुसार, 'उपयोगिता किसी पदार्थ का वह गुण है जो आवश्यकता को संतुष्ट करता है।'

3. श्रीमती रोबिन्सन के अनुसार, 'उपयोगिता वस्तुओं का वह गुण है जिसके फलस्वरूप लोग उन्हें खरीदना चाहते हैं।'

विशेषताएं :

1. उपयोगिता भावगत है : उपयोगिता भावगत है, इसका संबंध मनुष्य की मानसिक संतुष्टि से है। एक वस्तु की भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिए विभिन्न उपयोगिता होती है। एक शराबी के लिए शराब की उपयोगिता होती है परन्तु जो व्यक्ति शराब नहीं पीता, उसके लिए शराब की कोई उपयोगिता नहीं। हरियाणा के किसानों को कॉफी पीने से कम उपयोगिता प्राप्त होती है, इसलिए उपयोगिता को भावगत कहा जाता है।

2. उपयोगिता सापेक्षिक है : इसका अर्थ है कि एक वस्तु की उपयोगिता सदैव एक समान नहीं रहती। वह समय तथा स्थान के साथ बदलती रहती है। जून की गर्मियों में कूलर की हमारे लिए उपयोगिता है, परन्तु दिसंबर की सर्दियों में कूलर की हमारे लिए कोई उपयोगिता नहीं रह जाती।

3. उपयोगिता का लाभदायक होना आवश्यक नहीं : एक उपयोगी वस्तु का लाभकारी होना आवश्यक नहीं है। शराब या सिगरेट लाभकारी नहीं हैं। परन्तु इनसे यदि किसी व्यक्ति की आवश्यकता पूरी होती है तो उस व्यक्ति के लिए इनमें उपयोगिता है।

4. उपयोगिता नैतिकता से स्वतंत्र है : उपयोगिता का नैतिकता से कोई संबंध नहीं है। अफीम या शराब का सेवन नैतिक दृष्टि से उचित नहीं माना जाता है परन्तु ये वस्तुएं एक शराबी या अफीमची की आवश्यकताएं पूरी करती हैं, इसलिए इनमें उपयोगिता पाई जाती है।

९.२.३ उपयोगिता की धारणाएं :

किसी वस्तु के उपभोग के आधर पर उपयोगिता की तीन धारणाएं हो सकती हैं :

1. प्रारंभिक उपयोगिता

2. कुल उपयोगिता तथा

3. सीमांत उपयोगिता

1. प्रारंभिक उपयोगिता : जब किसी वस्तु का उपभोग आरंभ किया जाता है तो उस वस्तु की पहली इकाई से जो उपयोगिता प्राप्त होती है उसे प्रारंभिक उपयोगिता कहते हैं। जैसे यदि कोई व्यक्ति रोटी खाना आरंभ करता है तो पहली रोटी से मिलने वाली उपयोगिता प्रारंभिक उपयोगिता कहलाएगी। अत: प्रारंभिक उपयोगिता वह उपयोगिता है जो उपभोग की जाने वाली वस्तु की पहली इकाई से प्राप्त होती है।

2. कुल उपयोगिता : किसी वस्तु की विभिन्न मात्राओं के उपभोग से प्राप्त उपयोगिता की इकाइयों के जोड़ को कुल उपयोगिता कहा जाता है। कुल उपयोगिता किसी वस्तु की मात्रा के उपभोग पर निर्भर करती है। अर्थात इसे पढ़ा जाएगा : कुल उपयोगिता वस्तु की मात्रा का फलन है।

प्रो. लेफ्टविच के अनुसार, 'कुल उपयोगिता एक वस्तु की विभिन्न मात्राओं के उपभोग से प्राप्त होने वाले संपूर्ण संतोष के बारे में बताती है।' मान लीजिए आप एक समय में 1 रसगुल्ले खा लेते हैं। इन 1 रसगुल्लों से मिलने वाली उपयोगिता के जोड़ को कुल उपयोगिता कहा जाएगा।

3. सीमांत उपयोगिता : सीमांत उपयोगिता की धारणा का प्रतिपादन सबसे पहले प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जेवन्स ने किया था। उनके अनुसार एक उपभोक्ता एक अतिरिक्त इकाई की वृद्धि से जो अतिरिक्त उपयोगिता प्राप्त करता है उसे अंतिम उपयोगिता अथवा सीमांत उपयोगिता कहा जाता है। जेवन्स ने सीमांत उपयोगिता के लिए अंतिम उपयोति शब्द का प्रयोग किया था। बीजर ने सबसे पहले इस धारणा के लिए सीमांत उपयोगिता शब्द का प्रयोग किया था।

किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई का उपभोग करने से कुल उपयोगिता में जो वृद्धि होती है उसे सीमांत उपयोगिता कहते हें। मान लीजिए पहली रोटी खने से आपको 15 इकाई उपयोगिता प्राप्त होती है, दूसरी रोटी खाने के फलस्वरूप दोनों रोटियों से मिलने वाली कुल उपयोगिता 25 इकाई हो जाती है। इस उदाहरण से आपको ज्ञात हो जाएगा कि दूसरी रोटी खाने से कुल उपयोगिता में 25–15=1 इकाइयों की वृद्धि होगी। अत: दूसरी रोटी की सीमांत उपयोगिता 1 इकाई होगी। प्रो. चैपमैन ने ठीक ही कहा है कि किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने से कुल उपयोगिता में जो वृद्धि होती है उसे सीमांत उपयोगिता कहते हैं। प्रो. बोल्डिंग के अनुसार सीमांत उपयोगिता कुल उपयोगिता में होने वाली वह वृद्धि है जो उपभोग में एक इकाई की वृद्धि के कारण होती है।

सीमांत उपयोगिता को निम्नलिखित समीकरण की सहायता से मापा जा सकता है :

$MUnth = Tn - Tn\text{-}1$ or

यहां $MUnth = nth$ इकाई की सीमांत उपयोगिता, $Tn = n$ इकाइयों की कुल उपयोगिता, $Tn\text{-}1 = n\text{-}1$ इकाई की उपयोगिता है।

सीमांत उपयोगिता धनात्मक, शून्य तथा ऋणात्क हो सकती है:

1. धनात्मक सीमांत उपयोगिता : किसी वस्तु की अतिरिक इकायो का उपभोक्ता करने से यदि कुल उपयोगिता बढ़ती जाती है तो इन इकायों की सीमांत उपयोगिता धनात्मक कहलाएगी। मान लीजिए अपनी भूख को संतुष्ट करने के लिए आप रोटी खाते हैं। पहली रोटी से आप 8 इकाई, दूसरी रोटी से 6 इाकई सीमांत उपयोगिता प्राप्त करते हैं। इस प्रकार दो रोटियों से 14 इकाइयां कुल उपयोगिता प्राप्त करते हैं। रोटियों की अतिरिक इकायों केा खाने के

फलस्वरूप कुल उपयोगिता बढ़ती जा रही है। दूसरी रोटी से प्राप्त सीमांत उपयोगिता को धनात्मक उपयोगिता कहा जाएगा।

2. शून्य सीमांत उपयोगिता : यदि किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई का उपभोग करने से कुल उपयोगिता में कोई परिवर्तन नहीं आता तो उस वस्तु की इस इकाई की सीमांत उपयोगिता शून्य होगी। सीमांत उपयोगिता उस समय शून्य होती है जब वस्तु के उपभोग के इसी स्तर पर कुल उपयोगिता अधिकतम हो जाती है। यदि उपभोक्त को वस्तु की इससे अधिक मात्रा लेने के लिए मजबूर यिा जाता है वह अधिक संतोष प्राप्त नहीं कर सकेगा। उस वस्तु के लिए यह उसका पूर्ण संतुष्टि या पूर्ण तृप्ति बिन्दु कहलाएगा। मान लीजिए 4 रोटियां खाने के पश्चात उपभोक्ता की रोटियों से प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता, जो 2 इकाई है, अधिकतम हो जाती है तथा पांचवीं रोटी को खाने से कुल उपयोगिता में कोई परिवर्तन नहीं आता, वह 2 ही रहती है तो पांचवीं रोटी से प्राप्त होने वाली सीमांत उपयोगिता शून्य हो जाएगी।

3. ऋणात्मक सीमांत उपयोगिता : किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाई का उपभोग करने से यदि कुल उपयोगिता घट जाती हे तो इस इकाई की सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक कहलाएगी। मान लीजिए पूर्ण संतुष्टि प्राप्त करने के बाद भी आपको छठी रोटी खने के लिए मजबूर होना पड़ता है। आवश्यकता से अधिक रोटी खाने के कारण शायद आपके पेट में दर्द हो जाए या उल्टी आने लगे तो छह रोटियां खाने के कारण कुल उपयोगिता कम होकर 18 रह जाएगी। छठी रोटी की सीमांत उपयोगिता –2 होगी। यह ऋणात्मक संख्या है।

कुल उपयोगिता तथा सीमांत उपयोगिता में संबंध : नवपरंपरावादी अर्थशास्त्री जेवन्स ने सबसे पहले कुल उपयोगिता तथा सीमांत उपयोगिता के संबंध और अंतर के महत्व की व्याख्या की थी। कुल उपयोगिता किसी वस्तु की विभिन्न इकाइयों से प्राप्त सीमांत उपयोगिताओं का जोड़ है।

उपयोगिता की इन धारणाअें के संबंध को निम्न तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है :

कुल तथा सीमांत उपयोगिता में संबंध

मात्रा	**कुल उपयोगिता**	**सीमांत उपयोगिता**	**वर्णन**
1	8	--	----
2	14	8–8=8	प्रारंभिक
3	18	14–8=6	धनात्मक
4	2	18–14=4	धनात्मक
5	2	2 – 2 =	शून्य
6	18	2–18=–2	ऋणात्मक

क. वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों का जैसे–जैसे अधिक उपयोग किया जाता है उनसे मिलने वाली सीमांत उपयोगिता कम होती है परन्तु एक सीमा तक कुल उपयोगिता बढ़ती जाती है।

ख. वस्तु की पहली चार इकाइयों से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता धनात्मक है, इसलिए कुल उपयोगिता में वृद्धि होती गई। अत: जब तक वस्तु की सीमांत उपयोगिता धनात्मक रहती है, कुल उपयोगिता बढ़ती जाती है।

ग. वस्तु की पांचवीं इकाई से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता शून्य है। इस स्थिति में कुल उपयोगिता अधिकतम अर्थात 2 होगी। यह अवस्था पूर्ण संतुष्टि के बिन्दु की अवस्था कहलाती है। अत: जब वस्तुओं की सीमांत

उपयोगिता शून्य होती है तो कुल उपयोगिता अधिकतम अर्थात 2 इकाई से कम होकर 18 रह जाती है। अत: जब सीमांत उपयोगिता ऋणात्मक होती है तो कुल उपयोगिता कम हो जाती है।

कुल तथा सीमांत उपयोगिता में अंतर का महत्व : सीमांत तथा कुल उपयोगिता के अंतर का महत्व निम्नलिखित है :

1. मूल्य का विरोधाभास : कई अर्थशास्त्रियों की यह मान्यता थी कि किसी वस्तु का मूल्य उससे प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता के बराबर होता है। अत: जिन वस्तुओं के उपभोग से कुल उपयोगिता अधिक प्राप्त होती है उनका मूल्य अधिक होना चाहिए और जिन वस्तुओं के कुल उपयोगिता कम प्राप्त होती है उनका मूल्य कम होना चाहिए। परन्तु वास्तविक जीवन में ऐसा नहीं पाया जाता। पानी के उपभोग से प्राप्त उपयोगिता हीरों के उपभोग से प्राप्त कुल उपयोगिता से अधिक होती है। परन्तु पानी मूल्य हीरों की अपेक्षा नगण्य है। इस परिस्थिति को ही मूल्य विरोधाभास कहा जाता है। जेवन्स ने इस विरोधाभास की सीमांत तथा कुल उपयोगिता के अंतर द्वारा व्याख्या की है। किसी वस्तु की कीमत कुल उपयोगिता के स्थान पर सीमांत उपयोगिता द्वारा निर्धारित होती है। पानी बहुत अधिक मात्रा में प्राप्त होता है। इसलिए पानी से मिलने वाली कुल उपयोगिता शीघ्र ही पूर्णता बिन्दु तक पहुंच जाती है। इस अवस्था में सीमांत उपयोगिता शून्य के लगभग हो जाती है। परन्तु हीरे बहुत कम मात्रा में मिलते हैं, उनकी कुल उपयोगिता पूर्णता बिन्दु तक नहीं पहुंच पाती इसलिए हीरों की सीमांत उपयोगता काफी अधिक तथा धनात्मक होती है। इसी कारण हीरों की कीमत अधिक होती है।

2. उपभोक्ता की बचत : एक उपभोक्ता किसी वस्तु के लिए जितनी कीमत देने को तैयार होता है यदि उसे वास्तव में उससे कम कीमत देनी पड़े, तो इन दोनों कीमतों के अंतर को उपभोक्ता की बचत कहा जाता है। इसका कारण यह है कि कुल उपभोक्ता वस्तु की विभिन्न इकाइयों से मिलने वाली कुल उपयोगिता के बराबर सीमांत उपयोगिता के बराबर कीमत देने को तैयार होता है, परन्तु उसे वस्तु की सीमांत इकाई से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता के बराबर कीमत देनी पड़ती है। सीमांत इकाई से अभिप्राय उस अंतिम इकाई से है जिसे वह खरीदने के लिए तैयार है। इस अंतिम इकाई से पहले उपभोक्ता जितनी इकाइयां लेगा उनकी सीमांत उपयोगिता अंतिम इकाई की सीमांत उपयोगिता से अधिक होगी। इन इकाइयों की सीमांत उपयोगिता के जोड़ को कुल उपयोगिता कहते हैं। वस्तु की एक निश्चित मात्रा की कुल उपयोगिता जितनी मुद्रा के बराबर होती है वह कुल मुद्रा उस वस्तु की सीमांत उपयोगिता के बराबर दी जाने वाली मुद्रा अर्थात कीमत तथा वस्तु की मात्रा की गुणा से अधिक होती है। इस आधिक्य को ही उपभोक्ता की बचत कहा जाता है। अत: इस धारणा का आधार कुल उपयोगिता तथा सीमांत उपयोगिता में पाया जाने वाला अंतर है।

९.२.४ उपयोगिता विश्लेषण के नियम :

उपयोगिता विश्लेषण के निम्न दो मुख्य नियम हैं :

1. घटती सीमांत उपयोगिता का नियम
2. सम सीमांत उपयोगिता का नियम

इन नियकों का विस्तृत अध्ययन निम्नलिखित ढंग से किया जा सकता है :

१. घटती सीमांत उपयोगिता का नियम : घटती सीमांत उपयोगिता का नियम उपयोगिता विश्लेषण की

आधारशिला है। हम सब इस नियम का अपने प्रतिदिन के जीवन में अनुभव करते हैं। जब आपने पहला पैन लिया होगा तो आपको उससे बहुत अधिक उपयोगिता प्राप्त हुई होगी। यदि आप दूसरा पैन और खरीद लें तो आपको पहले की तुलना में कम उपयोगिता प्राप्त होगी। इसी प्रकार जैसे-जैसे आपके पास पैनों की संख्या बढ़ती जाएगी उनसे मिलने वाली सीमांत उपयोगिता कम होती जाएगी। मनुष्य के जीवन की इस वास्तविकता को ही अर्थशास्त्र में घटती सीमांत उपयोगिता का नियम कहा जाता है।

19वीं शताब्दी के कई अर्थशस्त्री जैसे बैन्थम, गौसिन, जेवन्स, मेजर तथा वालरस इस नियम के प्रतिपादन के लिए उत्तरदायी हैं। जेवन्स के अनुसार यह नियम वैनर-फैशनर के मनोवैज्ञानिक नियम पर आधारित है जिसके अनुसार किसी वस्तु की मात्रा बढ़ने पर उसकी अतिरिक्त इकाइयों का महत्व कम होता जाता है। नव परंपरावादी अर्थशास्त्री मार्शल ने भी इस नियम की विस्तुत व्यसख्या की है। प्रो. बोल्डिंग ने इस नियम को "The Law of Eventually Diminishing Marginal Utility" के नाम से पुकारा है। इस नियम को गौसेन का प्रथम नियम भी कहा जाता है।

परिभाषाएं :

1. मार्शल के अनुसार, 'एक मनुष्य के पास किसी वस्तु की जितनी मात्रा हो उसमें निश्चित वृद्धि के फलस्वरूप उस व्यक्ति को जो अतिरिक्त उपयोगिता प्राप्त होती है वह उसकी मात्रा में होने वाली प्रत्येक वृद्धि के समय कम होती जाती है।'

2. चैपमैन के अनुसार, 'कोई वस्तु जितनी अधिक हमारे पास होती है, उसकी हम उतनी ही कम अतिरिक्त वृद्धि करना चाहते हैं अथवा हम उसकी अधिक अतिरिक्त वृद्धि करना ही नहीं चाहते।'

3. प्रो. बोल्डिंग का विचार है कि जब हम किसी वस्तु का उपभोग आरंभ करते हैं तो शुरू-शुरू में सीमांत उपयोगिता बढ़ सकती है, परन्तु एक सीमा के बाद सीमांत उपयोगिता अवश्य कम होनी शुरू हो जाएगी। प्रो. बोल्डिंग के अनुसार कोई उपभोक्ता जब किसी वस्तु का उपभोग बढ़ाता चला जाता है और बाकी वस्तुक्ओं का उपभोग पहले जैसा बना रहता है तो उस वस्तु की सीमांत उपयोगिता अंतत: घटती चलली जाती है।

4. प्रो. सैम्युअलसन के अनुसार जैसे-जैसे किसी वस्तु के उपभोग की मात्रा बढ़ती है, उस वस्तु की सीमांत उपयोगिता कम होने की प्रवृत्ति प्रकट होती है।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि किसी निश्चित काल में जब हम किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग करते हैं तो वस्तु की प्रत्येक अगली आने वाली इकाई से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता अन्य बातें समान रहने पर पिछली इकाई की तुलना में कम होती जाती है। सीमांत उपयोगिता घटने की इस प्रवृत्ति को ही घटती सीमांत उपयोगिता का नियम कहा गया है।

मान्यताएं :

अर्थशास्त्र का प्रत्येक नियम तभी लागू होता है जब उससे संबंधित कुछ शर्तें पूरी होती हैं। इन शर्तों को उस नियम की मान्यताएं कहा जाता है। प्रत्येक नियम की परिभाषा में अन्य बातें समान रहने पर वाक्य उन शर्तों को ही प्रकट करता है। इन मान्यताओं के अभाव में यह नियम लागू नहीं होता। इस नियम की मुख्य मान्यताएं निम्न हैं :

1. उपयोगिता का गणनावाचक माप संभव है।
2. मुद्रा की सीमांत उपयोगिता स्थिर रहती है।
3. प्रत्येक वस्तु की सीमांत उपयोगिता स्वतंत्र है।

4. उपभोग की जाने वाली वस्तु की प्रत्येक इकाई समान गुण तथा आकार की होती है।

5. वस्तु का उपभोग निरंतर होता है अर्थात उपभोग समय की निश्चित अवधि में होता है।

6. वस्तु की उचित मात्रा का उपयोग किया जाता है।

7. उपभोक्ता की आय में परिवर्तन नहीं होता है।

8. वस्तु तथा इसके प्रतिस्थापन की कीमत में परिवर्तन नहीं होता।

9. उपभोक्ता की रूचि, स्वभाव, फैशन तथा आदतों में परिवर्तन नहीं होता।

व्याख्या :

घटती सीमांत उपयोगिता के नियम की व्याख्या नीचे दी गई तालिका की सहायता से की जाती है। तालिका से ज्ञात होता है कि पहली आइसक्रीम खाने से आपको चार इकाई सीमांत उपयोगिता प्राप्त होती है। एक आइसक्रीम खाने के फलस्वरूप आपकी आवश्यकता की कुछ संतुष्टि होगी। आवश्यकता पहले जितनी तीव्र नहीं रहेगी। इसलिए दूसरी आइसक्रीम से पहले की तुलना में कम सीमांत उपयोगिता अर्थात तीन इकाई प्राप्त होगी। तीसरी आईसक्रीम से और भी कम अर्थात दो इकाई तथा चौथी आइसक्रीम खाने से पूरी तरह संतुष्टि हो जाएगी। इस प्रकार पांचवीं आइसक्रीम खाने आपको कोई उपयोगिता प्राप्त नहीं होगी। यदि आपको छठी आइसक्रीम खाने के लिए भी मजबूर होना पड़े तो शायद आपकी तबियत खराब हो जाएगी तथा आपको ऋणात्मक उपयोगिता प्राप्त होगी। छठी आइसक्रीम से आपको असंतुष्टि मिलेगी। इस तालिका से प्रकट होता है कि जैसे-जैसे हम अतिरिक्त आइसक्रीमों का सेवन करते जाते हैं, उनसे मिलने वाली सीमांत उपयोगिता कम होती जाती है।

तालिका : घटती सीमांत उपयोगिता का नियम

आइसक्रीम की संख्या	**सीमांत उपयोगिता**
1	4
2	3
3	2
4	1
5	`
6	-1

अपवाद :

कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार घटती सीमांत उपयोगिता के नियम के निम्न अपवाद हैं। परन्तु इनका अध्ययन करने से हमें ज्ञात होगा कि ये वास्तविक नहीं हैं :

1. दुर्लभ तथा विचित्र वस्तुएं : यह कहा जाता है कि दुर्लभ तथा विचित्र वस्तुओं के संबंध में यह नियम लागू नहीं होता। जो व्यक्ति पुराने सिक्के, डाक टिकट या दुर्लभ चित्र आदि एकत्र करते हैं, उनके पास इन वस्तुओं का जितना स्टॉक बढ़ता जाता है उतनी ही उनकी सीमांत उपयोगिता बढ़ती जाती है। वे इनकी और अधिक मात्रा प्राप्त करना चाहते हैं। परन्तु यह अपवाद सच्चा नहीं है। यदि टिकट एकत्र करने वाले के पास एक ही प्रकार के टिकटों की संख्या बढ जाए तो अतिरिक्त टिकटों की सीमांत उपयोगिता अवश्य ही कम होगी।

2. कंजूस व्यक्ति : यह कहा जाता है कि यह नियम कंजूस व्यक्तियों पर लागू नहीं होता। उनके पास जितना

धन बढता जाता है, वे उतना ही और अधिक धन प्राप्त करना चाहते हैं, परन्तु मेयर्स के अनुसार यह अपवाद सही नहीं है। इसका कारण यह है कि एक कंजूस व्यक्ति भोजन तथा कपड़ों के लिए जो मुद्रा खर्च करता है वह मुद्रा की उस राशि को सोने-चांदी पर खर्च नहीं कर पाता। इससे यह सिद्ध होता है कि कंजूस व्यक्ति के लिए भी जिसके पास सोना-चांदी अधिक है, सोने-चांदी की उपयोगिता कम हो जाती है तथा भोजन आदि की उपयोगिता जो उसके पास कम है, बढ़ जाती है।

3. अच्छी पुस्तक या कविता : यह कहा जाता है कि अच्छी पुस्तकें, मधुर गीत या सुंदर कविता को बार-बार पढ़ने या सुनने से पहले से अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है। इसलिए इन्हें इस नियम का अपवाद माना जात है, लेनिक यह अपवाद भी सही नहीं है। यह तो संभव है कि किसी सीमा तक उस पुस्तक या गीत को बार-बार पढ़ने या सुने से उसकी सीमांत उपयोगिता बढ़ेगी। परन्तु एक ही समय में बार-बार एक ही पुस्तक को पढने या गीत सुनने से मन भर जाता है। इसके फलस्वरूप इनकी सीमांत उपयोगिता कम होने लगती है।

4. शराबी व्यक्ति : यह कहा जाता है कि जब कोई शराबी व्यक्ति नशा करने के लिए शराब पीता है तो जैसे-जैसे अधिक शराब पीता जाता है, शराब की और अधिक मांग करता है। इस प्रकार शराबी व्यक्ति को इस नियम का अपवाद माना जाता है।

5. प्रारंभिक इकाइयां : जब किसी वस्तु की प्रारंभिक इकाइयों को उपयुक्त मात्रा से कम मात्रा में प्रयोग किया जाता है तो अतिरिक्त इकाइयों से प्राप्त होने वाली सीमांत उपयोगिता बढ़ने लगती है। जैसे प्रो. बेन्हम के अनुसार यदि हम एक अंगीठी में एक-एक कोयला जलाएंगे तो कोयल की सीमांत उपयोगिता बढती जाएगी। परन्तु यह सही नहीं है। हम जैसे ही उनकी पर्याप्त मात्रा का प्रयोग करने लगेंगे, इनकी अतिरिक्त इकाइयों की सीमांत उपयोगिता कम हो जाएगी।

संक्षेप में टोंजिंग ने ठीक कहा है कि घटती सीमांत उपयोगिता के नियम की प्रवृत्ति इतनी व्यापक है कि इस नियम को सर्वव्यापी कहना गलत न होगा।

नियम के लागू होने के कारण :

घटते सीमांत तुष्टिगुण के नियम के लागू होने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :

1. वस्तुएं अपूर्ण स्थानापन्न होती हैं : प्रो. बोल्डिंग के अनुसार इस नियम के लागू होने का पहला कारण यह है कि वस्तुएं अपूर्ण स्थानापन्न होती हैं। यदि वस्तुएं एक दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न होतीं तो घटते सीमांत तुष्टिगुण का नियम कभी भी लागू न होता। जैसे चाय और दूध एक दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न नहीं हैं। चाय और दूध के एक निश्चित अनुपात से ही अधिकतम संतुष्टि प्राप्त की जा सकती है। यदि चाय में दूध की मात्रा बढ़ाते चले जाएं तो उस दूधनुमा चाय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त नहीं हो सकेगी। अत: किसी वस्तु की एक परिवर्तनशील मात्रा का दूसरी वस्तु की एक निश्चित मात्रा के साथ प्रयोग करने से परिवर्तनशील वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों से घटती सीमांत उपयोगिता प्राप्त होगी।

2. विशेष आवश्यकताओं की संतुष्टि : घटती सीमांत उपयोगिता के नियम लागू होने का दूसरा कारण यह है कि कोई भी ऐसी विशेष आवश्यकता नहीं होती जिसे पूर्णतया संतुष्ट नहीं किया जा सकता। पूर्णतया संतुष्टि के बिन्दु तक पहुंचने के बाद उस वस्तु की एक इकाई का भी अधिक उपयोग करने से सीमांत उपयोगिता शून्य हो जाती है। अत: पूर्णतया संतुष्टि बिन्दु से पहले कुल उपयोगिता घटती दर पर बढ़ती जाती है तथा संतुष्टि बिन्दु पर उसमें कोई वृद्धि नहीं होती। कुल उपयोगिता घटती दर पर तभी बढ़ेगी जब सीमांत उपयोगिता कम होती जाएगी।

3. वैकल्पिक प्रयोग : प्रत्येक वस्तु के कई प्रयोग होते हैं। कुछ प्रयोग अधिक महत्वपूर्ण तथा कुछ कम महत्वपूर्ण होते हैं। बामोल के अनुसार, यह नियम इसलिए लागू होता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अधिकतम महत्व वाले प्रयोग को पहला स्थान देता है। यदि हमारे पास दूध की थोड़ी मात्रा है तो हम उसे बच्चे को पिलाने में प्रयोग करेंगे तथा यदि दूध ज्यादा है तो बाकी दूध से घर में बड़ों के लिए चाय या दही बनाने के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि जैसे-जैसे वस्तु की मात्रा बढती जाती है उसका कम महत्व वाली वस्तुतों में किया जाने लगता है।

नियम का महत्व : घटती सीमांत उपयोगिता नियम का अर्थशास्त्र में बहुत अधिक सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक महत्व है। इस नियम के मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं :

1. उपभोग के नियमों का आधार : घटती सीमांत उपयोगिता का नियम उपभोग के सभी नियमों का आधार है। उपभोग के तीन मुख्य नियम हैं : क. सम सीमांत उपयोगिता का नियम, ख. मांग का नियम तथा ग. उपभोक्ता की बचत। सम सीमांत उपयोगिता के नियम के अनुसार उपभोक्ता एक ही वस्तु पर अपना सारा धन खर्च नहीं करता है। इसका कारण यह है कि किसी वस्तु की अधिक इकाइयां खरीदने से उसकी सीमांत उपयोगिता कम हो जाती है। इसलिए उपभोक्ता अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करने के लिए अपनी आय इस प्रकार व्यय करता है कि विभिन्न वस्तुओं पर खर्च की जाने वाली रुपये की अंतिम इकाई के समान सीमांत उपयोगिता प्राप्त हो। मांग के नियम के अनुसार उपभोक्ता किसी वस्तु की अधिक इकाइयां कम कीमत पर खरीदेगा। इसका कारण मांग वक्र नीचे की ओर झुका होता है। उपभोक्ता की बचत का सिद्धान्त भी इसी नियम पर आधारित है। इस सिद्धान्त के अनुसार सीमान्त इकाई से पूर्व वाली इकाइयों से अधिक उपयोगिता प्राप्त होगी। इस आधिक्य को ही उपभोक्ता की बचत कहा जाएगा।

2. उत्पादन तथा उपभोग में विविधता : घटती सीमांत उपयोगिता के नियम के कारण ही उत्पादन तथा उपभोग में विविधता पाई जाती है। एक ही वस्तु का निरंतर उपभोग करने से उपभोक्ता को उससे प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता कम होती जाएगी। इसलिए प्रत्येक उपभोक्ता एक सीमा के बाद उस वस्तु का उपभोग बंद कर देगा। वह दूसरी वस्तुओं की मांग करेगा। इसलिए उत्पादकों को विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करना पड़ेगा। प्रो. टॉजिंग के अनुसार, घटती हुई उपयोगिता, वस्तुओं की बढ़ती हुई विविधता तथा उत्पादन और उपभोग की बढ़ती हुई जटिलता की व्याख्या करती है।

3. प्रयोग मूल्य तथा विनिमय मूल्य में अंतर : प्रसिद्ध अर्थशास्त्री एडम स्मिथ यह नहीं बता सके थे कि हीरों की उपयोगिता पानी की उपयोगिता से कम होने पर भी पानी की कीमत हीरों की कीमत से कम क्यों है। इस विरोधाभास की व्याख्या करने के लिए उन्होंने मूल्य को दो भगों में बांट दिया था : क. प्रयोग मूल्य तथा ख. विनिमय मूल्य। उनके अनुसार जिन वस्तुओं का प्रयोग मूल्य अधिक होता है उनकी कीमत कम होती है तथा जिनका विनिमय मूल्य अधिक होता है उनकी कीमत अधिक होती है। परन्तु वे यह नहीं बता सके थे कि ऐसा क्यों होता है। इसका उत्तर नवपरंपरावादी अर्थशास्त्रियों ने घटती सीमांत उपयोगिता के आधार पर दिया था। उनके अनुसार पानी, हवा आदि वस्तुओं की पूर्ति बहुत अधिक होती है। इनका उपयोग काफी अधिक मात्रा में किया जाता है। इसलिए इनकी सीमांत उपयोगिता कम होने के कारण उनकी कीमत भी कम होती है। अत: जिन वस्तुओं का प्रयोग मूल्य अधिक होता है उनकी सीमांत उपयोगिता तेजी से कम होती है। इसके विपरीत सोने, चांदी, हीरे आदि कीमती वस्तुएं जिनका विनिमय मूल्य अधिक होता है, कम मात्रा में पाई जाती हैं। ऐसी वस्तुओं का उपयोग कम होने के

कारण सीमांत उपयोगिता में कमी बहुत धीरे-धीरे आती है। जिस कारण इनकी कीमत अधिक होती है।

4. कीमत निर्धारण: प्रत्येक वस्तु की कीमत उसकी मांग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। किसी वस्तु की मांग उसकी सीमांत उपयोगिता पर निर्भर करती है। यदि कोई विक्रेता किसी वस्तु की अधिक बिक्री करना चाहता है तो वह उस वस्तु कीमत कम कर देगा। इसका कारण यह है कि वस्तु की अधिक मात्रा की सीमांत उपयोगिता कम होती है। इसलिए उपभोक्ता वस्तु की अधिक मात्रा तभी खरीदेगा जब उसकी कीमत कम होगी। इसके विपरीत यदि किसी वस्तु की कीमत अधिक निर्धारित की जाएगी तो उसकी कम मात्रा बिकेगी।

5. प्रगतिशील करों का आधार : एक वित्तमंत्री प्रगतिशील कर लगाते समय इस नियम को ध्यान में रखता है। इस प्रणाली के अनुसार आय में वृद्धि होने पर मुद्रा की सीमांत उपयोगिता कम हो जाती है। इसलिए यदि अधिक आय वाले व्यक्तियों से अधिक दर पर कर लिया जाएगा तो उन्हें उतना ही त्याग करना पड़ेगा। इसका कारण यह है कि गरीबों के लिए मुद्रा की सीमांत उपयोगिता, अमीर लोगों के लिए मुद्रा की सीमांत उपयोगिता से अधिक होती है।

6. उपभोक्ता को लाभ : प्रत्येक उपभोक्ता के लिए यह नियम काफी महत्वपूर्ण है। इस नियम के अनुसार एक उपभोक्ता को किसी वस्तु के उपभोग से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करने के लिए उस वस्तु की केवल उतनी ही इकाइयां खरीदनी चाहिए जिनकी सीमांत उपयोगिता उस वस्तु की कीमत के बराबर है।

7. समाजवाद का आधार : समाजवाद उस आर्थिक प्रणाली को कहते हैं जिसके अनुसार लोगों में धन का समान बंटवारा होना चाहिए। उसका कारण यह है कि अमीरों के लिए धन की सीमांत उपयोगिता कम होती है तथा गरीबों के लिए यह अधिक होती है। इसलिए यदि अमीरों से धन लेकर गरीबों में बांट दिया जाए तो धन की सीमांत उपयोगिता बढ़ेगी। इसका सारे समाज को लाभ होगा।

घटती सीमांत उपयोगिता नियम द्वारा मांग वक्र की व्युत्पत्ति : एक उपभोक्ता किसी वस्तु की जो कीमत देने को तैयार होता है वह उसकी सीमांत उपयोगिता के बराबर होती है। घटती सीमांत उपयोगिता के नियम के अनुसार एक उपभोक्ता किसी वस्तु की जितनी अधिक मात्रा खरीदता जाएगा, उस वस्तु की सीमांत उपयोगिता कम होती जाएगी। इसलिए उपभोक्ता उस वस्तु की अधिक मात्रा तब ही खरीदेगा जब उसकी कीमत कम हो जाएगी। यदि सीमांत उपयोगिता को मुद्रा के रूप में व्यक्त किया जाए तो ऐसी अवस्था में सीमांत उपयोगिता वक्र का धनात्मक भाग ही मांग वक्र हो जाएगा।

मान्यताएं :

1. मुद्रा की सीमांत उपयोगिता स्थिर रहती है।
2. वस्तुओं की कीमत स्थिर रहती है।
3. उपभोक्ता की रूचि व प्राथमिका आदि में कोई परिवर्तन नहीं होता।
4. वस्तु को छोटी इकाइयों में बांटा जा सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि उपभोक्ता अपनी आय को एक-एक रुपया करके खर्च कर सकता है।

व्याख्या :

इस नियम की व्याख्या निम्न तालिका द्वारा की जा सकती है। मान लीजिए एक व्यक्ति की आय पांच रुपये है। वह अपनी इस सीमित आय को दो वस्तुओं आम तथा दूध पर खर्च करना चाहता है। यह भी मान लीजिए कि दोनों वस्तुओं की कीमत एक रुपया प्रति किलो है। दूध तथा आम की सीमांत उपयोगिता इस प्रकार होगी :

तालिका : समान सीमांत उपयोगिता

रुपये	आम की सी. उ.	दूध की सीमांत उपयोगिता
1	12 प्रथम	1 तृतीय
2	1 द्वितीय	8 पंचम
3	8 चतुर्थ	6
4	6	4
5	4	2

मान लीजिए उपभोक्ता अपनी आमदनी को एक-एक रुपया करके खर्च करता है। आमों पर खर्च किए गए पहले रुपये से उसे 12 इकाइयां सीमांत उपयोगिता प्राप्त होगी तथा दूध पर खर्च किए गए पहले रुपये से 1 इकायइयां सीमांत उपयोगिता प्राप्त होगी। इसलिए वह पहला रुपया आमों पर खर्च करेगा। दूसरे तथा तीसरे रुपयों में से एक दूध पर तथा दूसरा आमों पर खर्च करेगा। इस प्रकार अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करने के लिए उपभेक्ता अपनी पांच रुपये की आय में से तीन रुपये आमों पर तथा दो रुपये दूध पर खर्च करेगा। आमों पर खर्च किए गए तीसरे रुपये से 8 इकाई सीमांत उपयोगिता प्राप्त होती है। दूध पर खर्च किए गए दूसरे रुपये से भी 8 इकाई सीमांत उपयोगिता प्राप्त होती है। इस प्रकार दोनों वस्तुओं पर खर्च किए गए रुपये की अंतिम इकाई से उपभोक्ता को समान उसीमान्त उपयोगिता प्राप्त होगी। उपभोक्ता की आय का यह वितरण उसकी कुल संतुष्टि को अधिकतम करता है। उपभोक्ता को आमों से 3 तथा दूध से 18 इकाइयां प्राप्त होंगी।

यदि उपभोक्ता दूसरे प्रकार से अपनी आय का व्यय करेगा तो कुल उपयोगिता कम हो जाएगी। मान लीजिए वह आमों पर एक रुपया अधिक अर्थात 4 रुपये तथा दूध पर एक रुपया कम यानी कुल एक रुपया खर्च करता है। आमों पर एक रुपया अधिक खर्च करने पर उपभोक्ता को 6 इकाई अधिक प्राप्त होगी परन्तु दूध पर एक रुपया कम खर्च करने से उसे उपयोगिता की 8 इकाइयों की हानि उठानी पड़ेगी। आय का इस प्रकार वितरण करने से उपभोक्ता को आमों पर खर्च किए गए चार रुपयों से कुल उपयोगिता 36 इकाई प्राप्त होगी तथा दूध पर खर्च किए जाने वाले एक रुपये से 1 इकाई प्राप्त होगी। इस प्रकार पांच रुपये खर्च करने पर 46 इकाइयां प्राप्त होंगी जो पहले वितरण से प्राप्त कुल इकाइयों से दो कम हैं। अत: उपभोक्ता की आय का कोई दूसरा वितरण उतनी संतुष्टि नहीं देगा जितनी उस वितरण से प्राप्त होगी जिसमें विभिन्न वस्तुओं पर खर्च की गई रुपये की अंतिम इकाइयों से समान सीमांत उपयोगिता प्राप्त होती है।

९.२.५ नियम की आधुनिक व्याख्या :

आधुनिक अर्थशास्त्री इस नियम को आनुपातिकता के नियम के नाम से पुकारते हैं। उनके अनुसार एक उपभोक्ता अधिकतम संतुष्टि उस समय प्राप्त कर सकता है जब भिन्न-भिन्न वस्तुओं से प्राप्त सीमांत उपयोगिता तथा उनकी कीमत के अनुपात में समानता हो जाए। मान लीजिए एक सेब की कीमत 5 पैसे है। उपभोक्ता दस सेब खरीदता है। दसवे सेब से उसे 6 यूटिल उपयोगिता प्राप्त होती है। इसलिए दसवीं सेब से प्रति रुपया सीमांत उपयोगिता निम्न सूत्र की सहायता से ज्ञात हो सकती है :

$MUa / Pa = 6/0.50 = 12$ यूटिल प्रति रुपया

यहां MUa सेब की सीमांत उपयोगिता तथा Pa सेब की कीमत को प्रकट कर रहा है।

इस प्रकार यदि केले की कीमत 25 पैसे प्रति केला है तो उपभोक्ता 12 केले खरीदता है। 12वें केले से उसे 3 यूटिल उपयोगिता प्राप्त होती है। अत: 12वें केले से प्रति रुपया सीमांत उपयोगिता 12 यूटिल होगी।

उपरोक्त उदाहरण में उपभोक्ता को दोनों वस्तुओं से प्रति रुपया समान सीमांत उपयोगिता प्राप्त हो रही है, इसलिए उसे एक पर कम तथा दूसरे पर अधिक धन खर्च करने से कोई लाभ नहीं होगा। वह इस खर्च में कोई परिवर्तन करना पसंद नहीं करेगा। इसलिए यह कहा जाता है कि उपभोक्ता निम्न अवस्था में संतुलन की स्थिति में होता है :

MUa / Pa = MUb/Pb or

MUa/MUb = Pa/Pb

संक्षेप में उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं की इतनी मात्रा खरीदेगा कि उनसे मिलने वाली सीमांत उपयोगिता तथा उनकी कीमत का अनुपात बराबर हो। इस प्रकार आय का व्यय करने में उपभोक्ता को अधिकतम संतुष्टि प्राप्त होगी। यदि उपभोक्ता n वस्तुएं खरीद रहा है तो इस सूत्र के अनुसार :

MUa/Pa=MUb/Pb *or*

MUc/Pc=MUn/Pn

व्यय करेगा जिससे उसे अधिकतम संतुष्टि प्राप्त होगी।

नियम का महत्व : इस नियम का अर्थशास्त्र में बहुत अधिक महत्व है। रोबिन्स ने इसे अर्थशास्त्र का आधार कहा है। मार्शल के अनुसार, प्रतिस्थापन का नियम आर्थिक जांच के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में लागू होता है :

1. उपभोग : प्रत्येक उपभोक्ता अपने सीमित साधनों से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है। यदि उपभोक्ता इस ढंग से व्यय करे कि उन पर खर्च किए जाने वाले रुपये की अंतिम इकाई से उसे समान सीमांत उपयोगिता प्राप्त हो तो उपभोक्ता अपनी आय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करेगा।

2. उत्पादन : एक उत्पादक को अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए उत्पादन के विभिन्न साधनों जैसे भूमि, श्रम, पूंजी आदि का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए कि विभिन्न साधनों से मिलने वाली सीमांत उत्पादकता बराबर हो। उत्पादक को उत्पादन के साधनों का तब तक प्रतिस्थापन करते रहना चाहिए जब तक कि सभी साधनों से मिलने वाली सीमांत उत्पादकता बराबर न हो जाए। इस तरह सीमित साधनों का समायोजन करने से ही उत्पादक को अधिकतम लाभ प्राप्त हो सकते हैं।

3. विनिमय : विनिमय के क्षेत्र में भी यह नियम महत्वपूर्ण है। विनिमय का अर्थ है कि हम कम उपयोगिता वाली वस्तु को अधिक उपयोगिता वाली वस्तु से बदल लें। प्रत्येक व्यक्ति इस नियम के अनुसार विनिमय करते समय कम उपयोगिता वाली वस्तु को अधिक उपयोगिता वाली वस्तु से उस समय तक बदलता रहेगा जब तक दोनों से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता बराबर नहीं हो जाती। जहां दोनों से प्राप्त सीमांत उपयोगिता बराबर हो जाती है वहीं विनिमय रोक दिया जाता है। मुद्रा का भी दूसरी वस्तुओं या सेवाओं के बदले में तब तक ही विनिमय करना चाहिए जब तक उनसे मिलने वाली सीमांत उपयोगिता उन पर खर्च किए जाने वाली मुद्रा की सीमांत उपयोगिता के बराबर नहीं हो जाती।

4. वितरण : वितरण का अर्थ है उत्पादन के साधनों में राष्ट्रीय आय का बंटवारा। यह बंटवारा इस प्रकार होता है कि प्रत्येक साधन को लंबे समय में अपनी सीमांत उत्पादकता के बराबर राष्ट्रीय आय में से भाग प्राप्त हो जाता

है। ऐसा बंटवारा करने के लिए साधनों का जैसे श्रम के लिए पूंजी का प्रतिस्थापन करना पड़ता है और यह प्रतिस्थापन तब तक होता रहता है, जब तक उत्पादन के साधनों की सीमांत उत्पादकता उनको मिलने वाली आय के बराबर न हो जाए तथा विभिन्न साधनों की सीमांत उत्पादकता आपस में बराबर न हो जाए।

5. राजस्व : इस नियम का राजस्व अर्थात राज्य की आय तथा व्यय के संबंध में भी बड़ा महत्व है। वित्तमंत्री टैक्स लगाते समय इस नियम की सहायता लेता है। वह कर इस ढंग से लगाता है कि प्रत्येक करदाता का सीमांत त्याग बराबर हो, तभी करदाताओं पर उस कर का कम से कम बोझ पड़ेगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वित्त मंत्री को एक कर के स्थान पर दूसरा कर प्रतिस्थापन करना पड़ता है। इसी प्रकार सरकारी व्यय करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि प्रत्येक प्रकार के व्यय से प्राप्त होने वाला सीमांत लाभ जनता के लिए बराबर हो। जब किसी देश में करों के रूप में किया गया सीमांत सामाजिक त्याग तथा व्यय से प्राप्त सीमांत सामाजिक लाभ बराबर हो जाएं तो अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त होगा।

6. बचत तथा उपभोग में आय का वितरण : इस नियम के अनुसार बचत तथा उपभोग पर आय का इस प्रकार वितरण करना चाहिए कि वर्तमान आवश्यकता पर खर्च की जाने वाली मुद्रा की अंतिम इकाई से उतनी उपयोगिता प्राप्त हो जो बचत के लिए रखी गई मुद्रा की अंतिम इकाई की उपयोगिता के बराबर हो। इसी प्रकार का वितरण आदर्श वितरण होता है।

7. वस्तुओं का आदर्श वितरण : मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था में इस नियम की सहायता से समाज के व्यक्तियों में वस्तुओं का आदर्श वितरण किया जा सकता है। आदर्श वितरण वस्तुओं का वह वितरण है जिसमें थोड़ा सा भी परिवर्तन समाज द्वारा प्राप्त कुल उपयोगिता को कम कर देगा। आदर्श वितरण उस समय संभव होता है जब किसी वस्तु का विभिन्न व्यक्तियों में इस प्रकार वितरण किया जाए कि प्रत्येक व्यक्ति को मिलने वाली सीमांत उपयोगिता बराबर हो जाए।

8. संपत्ति वितरण : इस नियम की सहायता से व्यक्तियों को अपनी संपत्ति विभिन्न कार्यों में वितरण करने में सहायता प्रदान होती है। मान लीजिए किसी व्यक्ति के पास एक लाख रुपये हैं। वह इस रुपये को विभन्न प्रकार की संपत्तियों में जैसे नकदी, बैंक जमा, बॉन्डस, स्टॉक, शेयर तथा मकान आदि में निवेश करना चाहता है। इस नियम के अनुसार संपत्ति को विभिन्न साधनों पर इस प्रकार निवेश करना चाहिए कि प्रत्येक साधन पर खर्च की गई रुपये की आखिरी इकाई से समान सीमांत उपयोगिता प्राप्त हो। इस प्रकार उसे सब साधनों से लगभग समान रूप से मनोवैज्ञानिक लाभ प्राप्त होगा और वह अधिकतम संतुष्टि प्राप्त कर सकेगा।

9. समय का वितरण : हम में से प्रत्येक के पास 24 घंटे का सीमित समय है। यह नियम हमें समय का अधिकतम लाभ उठाने में भी सहायक सिद्ध होता है। एक विद्यार्थी को अपने समय का वितरण – सोने, पढ़ने, घर का काम करने और सिनेमा आदि देखने में इस प्रकार करना चाहिए कि प्रत्येक घंटे से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता समान हो जाए।

नियम की आलोचनाएं :

1. उपभोक्ता पूरी तरह विवेकशील नहीं होते : इस नियम की यह मान्यता भी उचित नहीं है कि उपभोक्ता पूर्ण विवेकशील होते हैं। कई उपभोक्ता आलसी स्वभाव के होते हैं। वे अपनी आदतों, रीति–रिवाजों को संतुष्ट करने के लिए कई बार कम उपयोगिता वाली वस्तुओं को भी खरीद लेते हैं। इसके कारण उनकी संतुष्टि अधिकतम

नहीं होती।

2. उपभोक्ता का हिसाबी न होना : यह नियम इस गलत मान्यता पर आधारित है कि उपभोक्ता अपनी आय खर्च करते समय यह हिसाब लगाता रहता है कि रुपये की प्रति इकाई से उसे कितनी सीमांत उपयोगिता प्राप्त हो रही है। इस नियम की यह मान्यता भी उचित नहीं है कि उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं पर खर्च किए जाने वाले रुपयों की इकाइयों से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता की तुलना करता रहता है। वास्तविक जीवन में शायद ही कोई उपभोक्ता इतना अधिक हिसाबी होता है कि वह प्रत्येक वस्तु से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता की तुलना करता है। इस प्रकार यह नियम लागू होना कठिन हो जाता है।

3. वस्तुओं की कमी : यदि बाजार में वे वस्तुएं नहीं मिलती जिनके उपभोग से उपभोक्ता को अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है तो उसे कम उपयोगिता वाली वस्तुओं का उपभोग करना पड़ेगा। उदाहरण के लिए यदि बाजार में ईंधन गैस की कमी है तो हमें कोयला या मिट्टी का तेल जलाना पड़ेगा। यदि इनकी उपयोगिता ईंधन गैस की तुलना में कम होती है तो उपभोक्ता अधिकतम संतुष्टि प्राप्त नहीं कर सकेगा।

4. फैशन, रीति रिवाज तथा आदतों का प्रभाव : प्रत्येक उपभोक्ता के वास्तविक खर्चे पर फैशन, रीति-रिवाजों तथा आदतों का प्रभाव पड़ता है। इनके प्रभाव के कारण कई बार उपभोक्ता ऐसी वस्तुएं अधिक खरीद लेता है जिनकी उपयोगिता कम होती है। इस कारण वह उन वस्तुओं की खरीद कम कर सकेगा जिनकी उपयोगिता अधिक होती है। इस प्रकार वह अपनी आय को इस नियम के अनुसार खर्च नहीं कर सकेगा।

5. उपभोक्ता की अज्ञानता : उपभोक्ता को उपभोग के संबंध में कई बातों का ज्ञान नहीं होता। उसे कई बार वस्तुओं की उचित कीमत का ज्ञान नहीं होता कि वस्तु के सस्ते स्थानापन्न कौन से हैं। उसे वस्तु के विभिन्न उपयोगों का ज्ञान नहीं होता। इस अज्ञानता के कारण उपभोक्ता अपने खर्च को इस ढंग से नहीं कर पाता कि उसे अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो।

6. पदार्थों की अविभाज्यता : यह नियम उन वस्तुओं पर लागू नहीं होता जिन्हें छोटे-छोटे भागों में बांटना संभव नहीं है। कार, टेलीविजन, स्कूटर की हमें कम से कम एक इकाई तो अवश्य खरीदनी पड़ेगी। यदि हमें विभिन्न वस्तुओं से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता को समान करने के लिए इन अविभाजित वस्तुओं की एक से अधिक इकाईकी आवश्यकता हो तो हो सकता है कि हमारे लिए उसे खरीदना असंभव हो, इसलिए यह नियम उन वस्तुओं पर लागू नहीं होता।

7. आम तथा कीमतों का स्थिर होना : प्रो. लैफ्टिविच के अनुसार इस नियम की एक मुख्य सीमा उपभेक्ता की आय का सीमित होना तथा कीमतों का स्थिर होना है। उपभोक्ता की आय सीमित होती है, इसलिए वह अपनी संतुष्टि एक सीमा से अधिक नहीं बढ़ा सकता है। ससी प्रकार कीमतें स्थिर होने के कारण वह अपनी सीमित आय से जिस मात्रा में वस्तुएं खरीद सकता है उतनी ही उसे संतुष्टि प्राप्त होती है। वह अपनी संतुष्टि इस सीमा से अधिक नहीं बढ़ा सकता है।

8. अनिश्चित बजट काल : सम-सीमांत उपयोगिता सिद्धान्त की एक सीमा यह है कि हमारा बजट काल निश्चित नहीं है। हम अपनी आय को विभिन्न प्रयोगों में खर्च करने के लिए जिस समयावधि का ध्यान रखते हैं उसे बजट काल कहा जाता है। यह एक महीना या एक वर्ष भी हो सकता है। बहुत सी वस्तुएं जैसे टेलीविजन, फ्रिज आदि एक बजट अवधि में खरीदी जाती हैं परन्तु उनसे कई बजट अवधियों में उपयोगिता प्राप्त होती रहती है। इन वस्तुओं की सीमांत उपयोगिता की तुलना अन्य वस्तुओं की सीमांत उपयोगिता से नहीं की जा सकती।

9. उपयोगिता गा गणनावाचक माप संभव नहीं है : इस नियम की यह मान्यता वास्तविक नहीं है कि उपयोगिता को गणनावाचक संख्याओं में मापा जा सकता है। उपयोगिता को मापना संभव नहीं है। आप यह कैसे कह सकते हैं कि आप को पहले आम से 12 इकाई उपयोगिता तथा दूसरे आम से 1 इकाई उपयोगिता प्राप्त होगी। सीमांत उपयोगिता का अनुमान लगाए बिना इस नियम को लागू नहीं किया जा सकता।

10. मुद्रा की सीमांत उपयोगिता में परिवर्तन : इस नियम की यह मान्यता भी वास्तविक नहीं है कि मुद्रा की सीमांत उपयोगिता में परिवर्तन नहीं होता। वास्तविक जीवन में मुद्रा की सीमांत उपयोगिता कम या अधिक हो सकती है। जब कोई उपभोक्ता वस्तु की अधिक मात्रा खरीदता है तो उसके पास मुद्रा की मात्रा कम हो जाती है। मुद्रा की मात्रा जितनी कम होगी उसकी सीमांत उपयोगिता उतनी ही बढ़ जाएगी। मुद्रा की सीमांत उपयोगिता के बढ़ने के कारण हमें अपने खर्च की योजना में परिवर्तन करना पड़ेगा जिसके कारण इस नियम का लागू होना कठिन हो जाएगा।

11. पूरक वस्तुएं : यह नियम पूरक वस्तुओं के संबंध में लागू नहीं होता। इसका कारण यह है कि पूरक वस्तुओं का प्रयोग एक निश्चित अनुपात में किया जाता है। एक वस्तु का उपयोग कम करके दूसरी वस्तु का उपयोग नहीं बढ़ाया जा सकता। उदाहरण के लिए कैमरे के साथ रील तथा टेप-रिकार्डर के साथ टेप अवश्य खरीदनी पड़ेंगी।

संक्षेप में प्रो. चैपमैन ने इस नियम के विषय में ठीक ही कहा है कि, 'सम-सीमांत उपयोगिता के नियम के अनुसार हम अपनी आय को वितरण करने के लिए उस प्रकार मजबूर नहीं होते जिस प्रकार एक पत्थर को ऊपर फैंके जाने पर नीचे गिरने के लिए मजबूर होना पड़ता है। परन्तु चूंकि हम विवेकशील हैं, इसलिए हम इस नियम के अनुसार काम करते हैं।'

उपभोक्ता संतुलन-उपयोगिता विश्लेषण : उपयोगिता विश्लेषण की सहायता से एक उपभोक्ता अपनी संतुलन शर्तों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है :

९.२.४ उपभोक्ता संतुलन क्या है :

उपभोक्ता संतुलन एक ऐसी स्थिति है जिसमें एक उपभोक्ता अपनी सीमित आय को व्यय करके अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करता है। ऐसी स्थिति में उपभोक्ता अपनी आय को खर्च करने के वर्तमान ढंग में किसी प्रकार का परिवर्तन करना पसंद नहीं करता। प्रो. टाइबर स्टिवास्की के अनुसार, एक उपभोक्ता उस समय संतुलन की अवस्था में होता है जब वह अपने व्यवहार की वर्तमान परिस्थितियों में सबसे अच्छा मानता है तथा उसमें, जब तक परिस्थितियों में परिवर्तन न हो, कोई परिवर्तन करना पसंद नहीं करता।

मान्यतांए :

1. विचारवान उपभेक्ता : उपयोगिता विश्लेषण की यह मान्यता है कि उपभोक्ता विचारवान है। विचारवान उपभोक्ता उस उपभोक्ता को कहते हैं जो अपनी सीमित आय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है।

2. गणनावाचक उपयोगिता : प्रत्येक वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता को गणनावाचक संख्याओं जैसे - 1,2,3,4 आदि में मापा जा सकता है।

3. प्रत्येक वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिगता स्वतंत्र होती है : एक उपभोक्ता किसी वस्तु से जो उपयोगिता प्राप्त करता है वह उसी वस्तु की मात्रा पर निर्भर करती है, उस पर दूसरी वस्तुओं से प्राप्त उपयोगिता का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

4. मुद्रा की सीमांत उपयोगिता स्थिर है : उपयोगिता को मापने का पैमाना मुद्रा को माना गया है। जिस प्रकार दूसरे पैमानों का मूल्य स्थिर रहता है, उसी प्रकार मुद्रा की प्रत्येक इकाई से प्राप्त होने वाली उपयोगिता भी स्थिर रहनी चाहिए।

5. उपभेक्ता की रूचि स्थिर रहती है : उपभोक्ता की रूचि स्थिर रहती है। रूचि शब्द का प्रयोग विस्तृत अर्थों में कियागया है। इसके अंतर्गत फैशन, जलवायु, प्रकृति आदि को सम्मलित किया गया हे।

6.आय तथा कीमत स्थिर रहती है : इस विश्लेषण की यह मान्यता है कि उपभोक्ता की आय तथा वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहती हैं।

7. पूर्ण ज्ञान : उपभोक्ता को इस बात का पूर्ण ज्ञान है कि वह अपनी आय को कौन-कौन सी वस्तुओं पर खर्च कर सकता है तथा उस खर्च से उसे कितनी उपयोतिा प्राप्त होगी।

उपभोक्ता संतुलन का निर्धारण : उपयोगिता विश्लेष्ण के द्वारा एक उपभेक्ता संतुलन की स्थिति को तीन अवस्थाओं में ज्ञात किया जा सकता है :

1. एक ही वस्तु जिसका केवल एक ही प्रयोग किया जाए।
2. एक वस्तु जिसके विभिन्न उपयोग किए जाएं।
3. विभिन्न वस्तुंएं।

1. एक ही वस्तु जिसका केवल एक ही प्रयोग किया जाए : सबसे पहले हम एक ऐसे उपभोक्ता के संतुलन की स्थिति का अध्ययन करेंगे जो केवल एक ही वस्तु का जिसका केवल एक ही प्रयोग किया जा सकता है, उपभोग करके अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है।

जब कोई उपभोक्ता किसी विशेष वस्तु को खरीदता है तो उसे उसके लिए कुछ कीमत देनी पड़ती है। इस प्रकार उपभोक्ता वस्तु की प्रत्येक इकाई के लिए कीमत के रूप में कुछ त्यागता है जिसके बदले में उसे वस्तु के उपभोग से कुछ उपयोगिता प्राप्त होती है। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम के अनुसार वस्तु की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के उपभोग से प्राप्त होने वाली संतुष्टि घटती जाती है। दूसरी ओर इस नियम की मान्यताओं के अनुसार उन इकाइयों के बदले में चुकाई गई मुद्रा की उपयोगिता स्थिर रहती है। विचारवान उपभोक्ता उस वस्तु का उपभोग उस सीमा तक बढ़ाएगा जहां अंतिम इकाई से प्राप्त की गई सीमांत उपयोगिता मुद्रा की सीमांत उपयोगिता के बराबर होगी। ऐसी स्थिति में उस उपभोक्ता की उस वस्तु के उपभोग से प्राप्त कुल उपयोगिता अधिकतम होगी। यदि उपभोक्ता एक और इकाई खरीदे तो सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम के अनुसार वस्तु की अतिरिक्त इकाई की सीमांत उपयोगिता घटेगी तथा कीमत के रूप में त्यागी जाने वाली उपयोगिता से कम होगी। अत: कुल उपयोगिता इष्टतम से कम होनी शुरू हो जाएगी। दूसरी ओर यदि वह एक इकाई कम खरीदे तो उस वस्तु की सीमांत उपयोगिता, मुद्रा की सीमांत उपयोगिता से अधिक होगी, फलस्वरूप उपभोक्ता इस उपयोगिता के अंतर का लाभ नहीं उठा सकेगा। इस स्थिति में उपयोगिता इष्टतम से कम होगी। उपभोक्ता संतुलन की स्थिति को तालिका के माध्यम से स्पष्ट किया गया है :

एक प्रयोग वाली वस्तु के लिए उपभोक्ता संतुलन

वस्तु की इकाइयां	**प्राप्त उपयोगिता**	**कीमत के रूप में त्यागी उपयोगिता**	**त्यागी गई उपयोगिता का आधिक्य**
(1)	(2)	(3)	(4)

1	5`	2`	3`
2	4`	2`	2`
3	3`	2`	1`
4	2`	2`	`
5	1`	2`	– 1`

मान लीजिए उपरोक्त वस्तु की बाजार कीमत एक रुपया प्रति इकाई है। 1 रुपये की सीमांत उपयोगिता 2 इकाइयां हैं तथा जो स्थिर मानी गई हैं। जब उपभोक्ता उस वस्तु की चार इकाइयां खरीदता है तो उससे मिलने वाली सीमांत उपयोगिता तथा कीमत के रूप में त्याग की जाने वाली उपयोगिता एक-दूसरे के बराबर होती है। अत: इस स्थिति में उपभोक्ता संतुलन की स्थिति में होगा। अन्य शब्दों में उपभोक्ता संतुलन की स्थिति वहां होगी जहां

Mux = Px

जहां Mux = x वस्तु की सीमांत उपयोगिता, Px=x वस्तु की कीमत के बराबर हो। उपरोक्त तालिका में यह स्थिति वस्तु की चौथी इकाई से प्राप्त हो रही है।

यदि उपभोक्ता एक और अधिक इकाई अर्थात पांच इकाइयां खरीदेगा तो उसे 2 इकाई उपयोगिता का त्याग करना पड़ेगा जबकि वस्तु की पांचवीं इकाई से केवल 1 इकाई के बराबर उपयोगिता प्राप्त होगी। अत: उपभोक्ता की कुल उपयोगिता इष्टतम से कम होगी। इसी प्रकार यदि उपभोक्ता चार से कम इकाइयां खरीदता है तो भी उसकी कुल उपयोगिता इष्टतम से कम होगी।

2. एक वस्तु जिसके कई उपयोग हैं : अब हम एक ऐसे उपभोक्ता के संतुलन की स्थिति का अध्ययन करेंगे जो एक वस्तु का विभिन्न उपयोगों में इस प्रकार बंटवारा करना चाहता है कि उसे अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो। उपभोक्ता संतुलन की स्थिति में उस समय होगा जब वह उस वस्तु की मात्रा का विभिन्न उपयोगों में इस प्रकार बंटवारा करेगा कि प्रत्येक उपभोग से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता बराबर हो जाए।

MUa Use = MUb Use

यहां MUa Use = प्रयोग a की सीमांत उपयोगिता, MUb Use = प्रयोग b की सीमांत उपयोगिा।

इसे तालिका तथा चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :

एक वस्तु-कई उपभोग की स्थिति में उपभोक्ता संतुलन

तेल की इकाई	**स्टोव में तेल की सीमांत उपयोगिता**	**लालटेन में तेल की सी. उ.**
1	1`	8
2	8	6
3	6	4
4	4	2
5	2	1

यह तालिका इस मान्यता पर बनाई गई है कि उपभोक्ता के पास 5 गैलन मिट्टी का तेल है। उसका उपयोग वह दो विभिन्न उपयोगों के लिए कर सकता है - एक तो वह मिट्टी के तेल से स्टोव जलाकर खाना बना सकता है

और दूसरा लालटेन जला सकता है। तालिका से ज्ञात होता है कि यदि मिट्टी के तेल के पहले गैलन का प्रयोग स्टोव जलाने के लिए किया जाएगा तो 1 इकाई सीमांत उपयोगिता प्राप्त होगी और यदि पहले गैलन का प्रयोग लालटेन जलाने के लिए किया जाता है तो सीमांत उपयोगिता 8 इकाई प्राप्त होगी। इसलिए उपभोक्ता पहले गैलन का प्रयोग स्टोव जलाने के लिए, दूसरे गैलन का प्रयोग लालटेन जलाने के लिए करेगा तथा तीसरे गैलन का प्रयोग स्टोव जलाने के लिए करेगा। इस प्रकार दूसरे तथा तीसरे गैलन से 8-8 इकाई सीमांत उपयोगिता प्राप्त होगी। इसी प्रकार चौथे व पांचवे गैलन का प्रयोग क्रमश: स्टोव जलाने व लालटेन में करेगा तो उसे दोनों प्रयोगों से सीमांत उपयोगिता 6, 6 इकाई प्राप्त होगी। उपभोक्ता को तेल का इस प्रकार विभिन्न उपयोगों में बंटवारा करने से उपरोक्ता तालिका के अनुसार 38 इकाइयां कुल उपयोगिता प्राप्त होगी। इस प्रकार उपभोग करने से उपभोक्ता को अधिकतम संतुष्टि मिलेगी। इसका कारण यह है कि उपभोक्ता तेल का विभिन्न उपयोगों में इस प्रकार उपयोग कर रहा है कि प्रत्येक उपभोग से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता बराबर है। यदि उपभोक्ता ऐसा न करके स्टोव में चार गैलन तथा लालटेन में एक गैलन तेल का प्रयोग करेगा तो इन दोनों प्रयोगों से मिलने वाली उपयोगिता 36 इकाइयां होगी। यह पहले प्रकार के उपयोगों से मिलने वाली कुल उपयोगिता से 2 इकाई कम होगी।

3. विभिन्न वस्तुएं : जब एक उपभोक्ता अपनी निर्धारित आय को एक से अधिक वस्तुओं पर व्यय करता है तो इष्टतम संतुष्टि के लिए वह विभिन्न वस्तुओं से मिलने वाली सीमांत उपयोगिताओं का तुलनात्मक अध्ययन करता है। वह मुद्रा की इकाई को उस वस्तु पर खर्च करता है जो बदले में उसे सबसे अधिक सीमांत उपयोगिता देती है। वह मुद्रा की प्रत्येक इकाई, जैसे एक रुपया, के बदले में विभिन्न वस्तुओं से जो उपयोगिता मिलेगी उनकी आपस में तुलना करेगा और इस रुपये को उस वस्तु पर व्यय करेगा जिससे उसे अधिकतम सीमांत उपयोगिता प्राप्त हो रही होगी। परन्तु सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम के अनुसार जब उपभोक्ता किसी एक वस्तु की अधिकाधिक मात्रा खरीदता है तो उस वस्तु की सीमांत उपयोगिता गिरने लगती है तथा किसी दूसरी वस्तु से मुद्रा की एक इकाई के बदले में मिलने वाली सीमांत उपयोगिता से कम हो सकती है, जिससे उपभोक्ता अब पहली वस्तु की बजाय दूसरी वस्तु पर मुद्रा की इकाई खर्च करेगा। इस प्रकार उपभोक्ता लगातार कम सीमांत उपयोगिता देने वाली वस्तुओं से हटकर मुद्रा की इकाई को अधिक सीमांत उपयोगिता देने वाली वस्तु पर व्यय करेगा। उपभोक्ता इस प्रकार विभिन्न वस्तुओं के बीच समायोजन करता रहेगा और अंत में एक ऐसी स्थिति में आ जाएगा जहां प्रत्येक वस्तु पर खर्च की गई मुद्रा की अंतिम इकाई से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता बराबर होगी। इस स्थिति को उपभोक्ता संतुलन की स्थिति कहते हैं।

उपभोक्ता संतुलन की इस स्थिति को तालिका तथा चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :

मान लीजिए उपभोक्ता के पास पांच रुपये हैं। वह दो वस्तुएं X और Y खरीदना चाहता है। प्रत्येक की कीमत 1 रुपया प्रति इकाई है :

उपभोक्ता संतुलन : विभिन्न वस्तुएं

रुपये	**X वस्तु**	**Y वस्तु**
1	12	1`
2	1`	8
3	8	6
4	6	4

5 4 2

इस तालिका से ज्ञात होता है कि उपभोक्ता संतुलन की स्थिति में X वस्तु पर तीन रुपये तथा Y वस्तु पर दो रुपये खर्च करेगा। इस प्रकार खर्च किए गए रुपये की अंतिम इकाई से उपभोक्ता को समान सीमांत उपयोगिता इकाई प्राप्त होगी। दूसरे शब्दों में उपभोक्ता संतुलन की स्थिति में तब होगा जब प्रत्येक वस्तु से प्राप्त होने वाली सीमांत उपयोगिता समान हो। अर्थात

MUx=MUy=8 इकाई

इस स्थिति का दूसरा दृष्टिकोण यह है कि उपभोक्ता अपने सीमांत व्यय का अर्थात पांचवें रुपये का इस प्रकार व्यय करेगा कि उसको प्रत्येक वस्तु से समान सीमांत उपयोगिता प्राप्त हो। अर्थात

MUx = MUy =MU money

यदि उपरोक्त उदाहरण में X तथा Y वस्तुओं की Px तथा Py कीमत है तो उपभोक्ता का संतुलन निम्न समीकरण द्वारा स्पष्ट हो जाता है :

MUx / Px = MUy / Py = MU money

or

MUx / MUy = Px/Py = MU money

इससे अभिप्राय यह है कि उपभोक्ता हर वस्तु से प्राप्त प्रति रुपया सीमांत उपयोगिता की आपस में तुलना करता है तथा संतुलन केवल तब होगा जबकि प्रत्येक वस्तु पर खर्च की जाने वाली रुपये की अंतिम इकाई से समान सीमांत उपयोगिता प्राप्त होगी।

९.३ सारांश :

एक उपयोगी वस्तु का लाभकारी होना आवश्यक नहीं है। शराब या सिगरेट लाभकारी नहीं हैं। परन्तु इनसे यदि किसी व्यक्ति की आवश्यकता पूरी होती है तो उस व्यक्ति के लिए इनमें उपयोगिता है।

जब किसी वस्तु का उपभोग आरंभ किया जाता है तो उस वस्तु की पहली इकाई से जो उपयोगिता प्राप्त होती है उसे प्रारंभिक उपयोगिता कहते हैं। किसी वस्तु की विभिन्न मात्राओं के उपभोग से प्राप्त उपयोगिता की इकाइयों के जोड़ को कुल उपयोगिता कहा जाता है। एक उपभोक्ता एक अतिरिक्त इकाई की वृद्धि से जो अतिरिक्त उपयोगिता प्राप्त करता है उसे अंतिम उपयोगिता अथवा सीमांत उपयोगिता कहा जाता है।

एक उपभोक्ता किसी वस्तु की जो कीमत देने को तैयार होता है वह उसकी सीमांत उपयोगिता के बराबर होती है। घटती सीमांत उपयोगिता के नियम के अनुसार एक उपभोक्ता किसी वस्तु की जितनी अधिक मात्रा खरीदता जाएगा, उस वस्तु की सीमांत उपयोगिता कम होती जाएगी। इसलिए उपभोक्ता उस वस्तु की अधिक मात्रा तब ही खरीदेगा जब उसकी कीमत कम हो जाएगी।

एक उपभोक्ता अधिकतम संतुष्टि उस समय प्राप्त कर सकता है जब भिन्न-भिन्न वस्तुओं से प्राप्त सीमांत उपयोगिता तथा उनकी कीमत के अनुपात में समानता हो जाए। मान लीजिए एक सेब की कीमत 5 पैसे है। उपभोक्ता दस सेब खरीदता है। दसवे सेब से उसे 6 यूटिल उपयोगिता प्राप्त होती है।

उपभोक्ता संतुलन एक ऐसी स्थिति है जिसमें एक उपभोक्ता अपनी सीमित आय को व्यय करके अधिकतम

संतुष्टि प्राप्त करता है। ऐसी स्थिति में उपभोक्ता अपनी आय को खर्च करने के वर्तमान ढंग में किसी प्रकार का परिवर्तन करना पसंद नहीं करता।

उपयोगिता विश्लेष्ण के द्वारा एक उपभेक्ता संतुलन की स्थिति को तीन अवस्थाओं में ज्ञात किया जा सकता है : एक ही वस्तु जिसका केवल एक ही प्रयोग किया जाए, एक वस्तु जिसके विभिन्न उपयोग किए जाएं व विभिन्न वस्तुएं।

९.४ सूचक शब्द :

प्रारंभिक उपयोगिता : जब किसी वस्तु का उपभोग आरंभ किया जाता है तो उस वस्तु की पहली इकाई से जो उपयोगिता प्राप्त होती है उसे प्रारंभिक उपयोगिता कहते हैं। जैसे यदि कोई व्यक्ति रोटी खाना आरंभ करता है तो पहली रोटी से मिलने वाली उपयोगिता प्रारंभिक उपयोगिता कहलाएगी।

कुल उपयोगिता : किसी वस्तु की विभिन्न मात्राओं के उपभोग से प्राप्त उपयोगिता की इकाइयों के जोड़ को कुल उपयोगिता कहा जाता है। कुल उपयोगिता किसी वस्तु की मात्रा के उपभोग पर निर्भर करती है। अर्थात इसे पढ़ा जाएगा : कुल उपयोगिता वस्तु की मात्रा का फलन है।

सीमांत उपयोगिता : सीमांत उपयोगिता की धारणा का प्रतिपादन सबसे पहले प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जेवन्स ने किया था। उनके अनुसार एक उपभोक्ता एक अतिरिक्त इकाई की वृद्धि से जो अतिरिक्त उपयोगिता प्राप्त करता है उसे अंतिम उपयोगिता अथवा सीमांत उपयोगिता कहा जाता है।

आनुपातिकता का नियम : एक उपभोक्ता अधिकतम संतुष्टि उस समय प्राप्त कर सकता है जब भिन्न-भिन्न वस्तुओं से प्राप्त सीमांत उपयोगिता तथा उनकी कीमत के अनुपात में समानता हो जाए। मान लीजिए एक सेब की कीमत 5 पैसे है। उपभोक्ता दस सेब खरीदता है। दसवे सेब से उसे 6 यूटिल उपयोगिता प्राप्त होती है।

उपभोक्ता संतुलन क्या है :

उपभोक्ता संतुलन एक ऐसी स्थिति है जिसमें एक उपभोक्ता अपनी सीमित आय को व्यय करके अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करता है। ऐसी स्थिति में उपभोक्ता अपनी आय को खर्च करने के वर्तमान ढंग में किसी प्रकार का परिवर्तन करना पसंद नहीं करता।

विचारवान उपभेक्ता : उपयोगिता विश्लेषण की यह मान्यता है कि उपभोक्ता विचारवान है। विचारवान उपभोक्ता उस उपभोक्ता को कहते हैं जो अपनी सीमित आय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है।

एक वस्तु -कई उपयोग : अब हम एक ऐसे उपभोक्ता के संतुलन की स्थिति का अध्ययन करेंगे जो एक वस्तु का विभिन्न उपयोगों में इस प्रकार बंटवारा करना चाहता है कि उसे अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो। उपभोक्ता संतुलन की स्थिति में उस समय होगा जब वह उस वस्तु की मात्रा का विभिन्न उपयोगों में इस प्रकार बंटवारा करेगा कि प्रत्येक उपभोग से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता बराबर हो जाए।

९.५ स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न :

- उपभोक्ता व्यवहार से आप क्या समझते हैं? उदाहरण सहित वर्णन करें।
- गणनावाचक उपयोगिता के बारे में विस्तार से बताएं।
- प्रारंभिक उपयोगिता, कुल उपयोगिता व सीमांत उपयोगिता की अवधारणा का वर्णन करें।

- उपभोक्ता संतुलन-उपयोगिता विश्लेषण की व्याख्या करें।
- घटती व बढती सीमांत उपयोगिता का वर्णन करें।

९.६ संदर्भित पुस्तकें :

बिजनेस इकॉनोमिक्स : आर. के. लेखी, एस.एल. अग्रवाल।
दी इंडियन इकॉनोमी : रे।
प्लानिंग ग्रोथ एंड दी इकॉनोमी : रे।
आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था : डा. एससी गुप्ता।
अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र : आर. डी. शर्मा।
अंतरराष्ट्रीय व्यापार : दालचंद्र बागडी।
आर्थिक अवधारणाएं व पद्धतियां : एम. सी. गुप्ता।
भारतीय राजनीतिक अर्थशास्त्र : गिरीश नंदन शर्मा।

बीए मास कम्यूनिकेशन – द्वितीय वर्ष *बीएमसी –१०७* **अर्थशास्त्र**
खंड–ई इकाई – एक अध्याय – दस

पूर्ति

लेखक : डा. वीना शर्मा
एस. आई. एम. शैली में परिवर्तन :

इस अध्याय में पूर्ति की अवधारणा से परिचित होंगे। इस अध्याय में हम पूर्ति का अर्थ, पूर्ति तालिका, पूर्ति वक्र, पूर्ति के नियम के अपवाद, पूर्ति विस्तार व संकुचन, पूर्ति में वृद्धि व कमी, पूर्ति की लोच आदि विषयों की चर्चा करेंगे। अध्याय की संरचना इस प्रकार होगी:

१०.० उद्देश्य
१०.१ परिचय
१०.२ विषय वस्तु की प्रस्तुति
१०.२.१ पूर्ति का अर्थ
१०.२.२ पूर्ति तालिका
१०.२.३ पूर्ति वक्र
१०.२.४ पूर्ति के नियम के अपवाद
१०.२.५ पूर्ति विस्तार व संकुचन
१०.२.६ पूर्ति में वृद्धि व कमी
१०.२.७ पूर्ति की लोच
१०.३ सारांश
१०.४ सूचक शब्द
१०.५ स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
१०.६ संदर्भित पुस्तकें

१०.० उद्देश्य :

इस अध्याय के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

- पूर्ति का अर्थ जानना
- पूर्ति तालिका से परिचित होना
- पूर्ति वक्र के बारे में जानना
- पूर्ति के नियम के अपवाद जानना
- पूर्ति विस्तार व संकुचन से परिचित होना
- पूर्ति में वृद्धि व कमी के बारे में जानना

पूर्ति की लोच से परिचित होना

१०.१ परिचय :

किसी वस्तु की पूर्ति की मात्रा से अभिप्राय वस्तु की उस मात्रा से है जिसे उस वस्तु का विक्रेता एक निश्चित कीमत पर एक निश्चित बाजार में निश्चित समय पर बेचने को तैयार है। किसी वस्तु का स्टॉक उस वस्तु की कुल मात्रा को बतलाता है जो किसी समय में बाजार में विक्रेता के पास मौजूद होती है। पूर्ति तालिका दो प्रकार की होती है : व्यक्तिगत पूर्ति तालिका व बाजार पूर्ति तालिका।

पूर्ति वक्र पूर्ति तालिका को ग्राफ के रूप में प्रकट करता है। इसके द्वारा किसी वस्तु की कीमत तथा उसकी पूर्ति में धनात्मक संबंध प्रकट होता है। पूर्ति का नियम यह बतलाता है कि अन्य बातें समान रहने पर जितनी कीमत अधिक होती है उतनी ही पूर्ति अधिक होती है या जितनी कीमत कम होती है, उतनी ही पूर्ति कम होती है।

१०.२ विषय वस्तु की प्रस्तुति :

इस अध्याय में हम पूर्ति का अर्थ, पूर्ति तालिका, पूर्ति वक्र, पूर्ति के नियम के अपवाद, पूर्ति विस्तार व संकुचन, पूर्ति में वृद्धि व कमी, पूर्ति की लोच के बारे में चर्चा करेंगे। अध्याय में विषय वस्तु की प्रस्तुति निम्न प्रकार से होगी :

पूर्ति का अर्थ
पूर्ति तालिका
पूर्ति वक्र
पूर्ति के नियम के अपवाद
पूर्ति विस्तार व संकुचन
पूर्ति में वृद्धि व कमी
पूर्ति की लोच

१०.२.१ पूर्ति का अर्थः

किसी वस्तु की पूर्ति से अभिप्राय उस वस्तु की उन मात्राओं से है जिन्हें एक विक्रेता विभिन्न संभव कीमतों पर निश्चित समय में बेचने के लिए तैयार होता है।

परिभाषाएं :

थामस के अनुसार, 'वस्तुओं की पूर्ति वह मात्रा है जो एक बाजार में किसी निश्चित समय पर विभिन्न कीमतों पर बिकने के लिए प्रस्तुत की जाती है।'

प्रो. एनातोल मुराद के अनुसार, 'किसी वस्तु की पूर्ति की मात्रा से अभिप्राय वस्तु की उस मात्रा से है जिसे उस वस्तु का विक्रेता एक निश्चित कीमत पर एक निश्चित बाजार में निश्चित समय पर बेचने को तैयार है।'

पूर्ति तथा स्टॉक में अंतर : आम बोलचाल की भाषा में पूर्ति तथा स्टॉक शब्द का प्रयोग एक ही अर्थ में लिया जाता है, लेकिन अर्थशास्त्र में इन शब्दों के विभिन्न अर्थ होते हैं। किसी वस्तु का स्टॉक उस वस्तु की कुल मात्रा को बतलाता है जो किसी समय में बाजार में विक्रेता के पास मौजूद होती है, जबकि पूर्ति स्टॉक का वह भाग है जो कि विक्रेता एक निश्चित समय तथा निश्चित कीमत पर बेचने को तैयार है। मान लीजिए मंडी में जून 2

को गेहूं का स्टॉक 1 टन है तथा कीमत 5 रुपये प्रति क्विंटल है। अगर इस कीमत पर विक्रेता 1 टन गेहूं बेचने को तैयार है तो गेहूं की पूर्ति केवल 1 टन होगी। इसी प्रकार यदि कीमत 6 रुपये प्रति क्विंटल हो जाती है तो विक्रेता 5 टन गेहूं बेचने को तैयार हो तो पूर्ति केवल 5 टन होगी।

पूर्ति तथा पूर्ति की मात्रा में अंतर :

जिस प्रकार मांग तथा मांगी गई मात्रा में अंतर होता है उसी प्रकार पूर्ति तथा पूर्ति की मात्रा में अंतर किया जा सकता है। पूर्ति की मात्रा से अभिप्राय किसी वस्तु की उस विशेष मात्रा से है जो एक निश्चित मात्रा निश्चित कीमत पर बिक्री के एि प्रस्तुत की जाती है।

व्यक्गित पूर्ति तथा बाजार पूर्ति : व्यक्तिगत पूर्ति से अभिप्राय है किसी वस्तु की एक फर्म द्वारा बाजार में की गई पूर्ति। परन्तु इसके विपरीत बाजार पूर्ति से अभिप्राय है वस्तु की बाजार में उन सभी फर्मों द्वारा की गई पूर्ति जो उस वस्तु की बिक्री या उत्पादन करती हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी निश्चित कीमत पर एक फर्म किसी वस्तु की 1 इकाइयों की पूर्ति करती है तथा दूसरी फर्म 2 इकाइयों की पूर्ति करती है तो बाजार पूर्ति 3 इकाई होगी।

व्यक्तिगत पूर्ति तथा बाजार पूर्ति के अंतर की व्याख्या आगे पूर्ति तालिका व पूर्ति वक्र की सहायता से की गई है।

१०.२.२ पूर्ति तालिका :

पूर्ति तालिका वह तालिका है जो किसी वस्तु की विभिन्न संभव कीमतों पर बिक्री के लिए प्रस्तुत की जाने वाली पूर्ति की मात्राओं को प्रकट करती है। यह दो प्रकार की होती है :

क. व्यक्तिगत पूर्ति तालिका

ख. बाजार पूर्ति तालिका

क. व्यक्तिगत पूर्ति तालिका :

व्यक्तिगत पूर्ति तालिका से अभिप्राय बाजार में किसी एक फर्म की पूर्ति तालिका से है। व्यक्तिगत पूर्ति तालिका एक फर्म द्वारा विभिन्न कीमतों पर की जाने वाली पूर्ति को प्रकट करती है। नीचे दी गई तालिका व्यक्तिगत पूर्ति तालिका है।

इस तालिका से स्पष्ट है कि जैसे-जैसे वस्तुओं की कीमत बढ़ रही है, उसकी पूर्ति भी बढ़ रही है। 5 रुपये प्रति इकाई कीमत पर उत्पादक आइसक्रीम की कोई मात्रा बेचने को तैयार नहीं होगा। यदि कीमत 1 रुपये है तो आइसक्रीम की पूर्ति 1 इकाई होगी। इसी प्रकार कीमत 2 रुपये होने पर आपूर्ति बढ़कर 3 इकाई हो जाएगी। अत: व्यक्तिगत पूर्ति तालिका वह है जो अन्य बातें समानरहने पर एक फर्म द्वारा किसी वस्तु की कीमत या बेची जाने वाली मात्रा के संबंध को प्रकट करती है।

व्यक्तिगत पूर्ति तालिका

आइसक्रीम की कीमत	**मात्रा**
5	`
1`	1`
15	2`

2`  3`

ख. बाजार पूर्ति तालिका : बाजार पूर्ति तालिका से अभिप्राय बाजार में किसी विशेष वस्तु का उत्पादन या पूर्ति करने वाली सभी फर्मों की पूर्ति के जोड़ से किसी वस्तु का उत्पादन करने वाली सभी फर्मों के जोड़ को उद्योग कहते हैं। अत: बाजार पूर्ति तालिका समस्त उद्योग की पूर्ति तालिका में है। इसके द्वारा बाजार में विभिन्न कीमतों पर सभी फर्मों द्वारा किसी विशेष वस्तु की की गई पूर्ति प्रकट होती है।

इसे निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए किसी बाजार में ए व बी दो फर्में हैं जो एक्स वस्तु का उत्पादन करती हैं। इन फर्मों की व्यक्तिगत पूर्ति तालिकाओं को जोड़कर बाजार पूर्ति तालिका बनाई गई है :

बाजार पूर्ति तालिका

कीमत	**ए की पूर्ति**	**बी की पूर्ति**	**बाजार पूर्ति**
5	`	`	`
1`	1`	5	15
15	2`	1`	3`
2`	3`	2`	5`

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि जब आइसक्रीम की कीमत 5 रुपये है तो फर्में आइसक्रीम की पूर्ति नहीं करेंगी। परन्तु जब कीमत 1 रुपये हो जाती है तो फर्म ए आइसक्रीम की 1 इकाइयों तथा फर्म बी 5 इकाइयों की पूर्ति करती है। अत: 1 रुपये कीमत पर बाजार पूर्ति 15 इकाइयां हो जाती हैं। जैसे-जैसे कीमत बढ़ती जाती है, बाजार पूर्ति भी बढ़ती जाती है।

१०.२.३ पूर्ति वक्र :

पूर्ति वक्र पूर्ति तालिका को ग्राफ के रूप में प्रकट करता है। इसके द्वारा किसी वस्तु की कीमत तथा उसकी पूर्ति में धनात्मक संबंध प्रकट होता है। तालिका की तरह यह भी दो प्रकार की होती है :

क. व्यक्तिगत पूर्ति वक्र

ख. बाजार पूर्ति वक्र

क. व्यक्तिगत पूर्ति वक्र : व्यक्तिगत पूर्ति वक्र बाजार में एक फर्म की पूर्ति तालिका को ग्राफ के रूप में प्रकट करती है। इस वक्र के नीचे से ऊपर की ओर ढलान से ज्ञात होता है कि वस्तु की कीमत तथा उसकी पूर्ति में धनात्मक संबंध है। पूर्ति वक्र के धनात्मक ढलान से ज्ञात होता है कि यदि कीमत 5 रुपये या इससे कम होगी तो विक्रेता वस्तु बेचने को तैयार नहीं होगा। जिस कीमत से नीचे विक्रेता वस्तु बेचने को तैयार नहीं होता उसे सुरक्षित कीमत कहते हैं।

ख. बाजार पूर्ति वक्र :

बाजार पूर्ति वक्र बाजार में किसी विशेष वस्तु का उत्पादन करने वाली सभी फर्मों की पूर्ति तालिका को ग्राफ के रूप में प्रकट करती है। यह संपूर्ण उद्योग का पूर्ति वक्र है।

5. पूर्ति फलन या पूर्ति को प्रभावित करने वाले तत्व : पूर्ति फलन किसी वस्तु की पूर्ति तथा उसके निर्धारक तत्वों के संबंध को प्रकट करता है। इससे प्रकट होता है कि किसी वस्तु की पूर्ति मुख्य रूप से फर्म के उद्देश्य, वस्तु की कीमत, फर्मों की संख्या, उत्पादन के साधनों की कीमतों, तकनीक की स्थिति तथा वस्तु की कीमतों पर निर्भर करती है। पूर्ति के फलन को निम्न समीकरण के रूप में भी स्पष्ट किया जा सकता है :

S=f(P, Pu, Pr, N1,G, P1, T, Ex, Gp)I यहां S= पूर्ति, f फलन, P वस्तु की कीमत, Pu अन्य वस्तुओं की कीमत, Pr संबंधित वस्तु की कीमत, N1वस्तुओं की संख्या, G फर्मों का उद्देश्य, P1उत्पादन के साधनों की कीमतें, T तकनीक, Ex भविष्य में कीमत संभावना तथा Gp सरकारी नीतियां हैं।

1. वस्तु की कीमत : किसी वस्तु की पूर्ति तथा कीमत में प्रत्यक्ष संबंध है। सामान्यत: वस्तु की कीमत बढ़ने पर पूर्ति बढ़ती है तथा कीमत कम होने पर पूर्ति कम होती है।

2. अन्य सभी वस्तुओं की कीमतें : किसी वस्तु की पूर्ति अन्य सभी वस्तुओं की कीमतों पर निर्भर करती है। अन्य सभी वस्तुओं की कीमत में होने वाली वृद्धि के फलस्वरूप वे फर्मों के लिए अधिक लाभदायी हो जाएंगी। फलस्वरूप फर्में उनकी अधिक पूर्ति करेंगी। इसके विपरीत जिस वस्तु की कीमत में वृद्धि नहीं होती, वह अपेक्षाकृत कम लाभदायक होगी। इसलिए फर्म उसकी कम आपूर्ति करेगी।

3. संबंधित वस्तुओं की कीमत : संबंधित वस्तुएं स्थानापन्न वस्तुएं जैसे चाय तथा कॉफी या पूर्ति वाली वस्तुएं जैसे कपास तथा बिनोला हो सकती हैं। यदि स्थानापन्न वस्तु की कीमत बढ़ती है तो उसकी पूर्ति में भी वृद्धि होगी। इसी तरह संयुक्त पूर्ति वाली वस्तु अर्थात कपास की कीमत बढ़ती है तो बिनौला की पूर्ति भी बढ़ेगी।

4. फर्मों की संख्या : किसी वस्तु की बाजार पूर्ति फर्मों की संख्या पर भी निर्भर करती है। फर्मों की संख्या अधिक होने पर पूर्ति अधिक होती है। इसके विपरीत फर्मों की संख्या कम होने पर पूर्ति कम हो जाती है।

5. फर्म के उद्देश्य : यदि फर्म का उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना है तो केवल अधिक कीमत पर ही एक पूर्ति की जाएगी। इसके विपरीत यदि फर्म का उद्देश्य बिक्री या उत्पादन या रोजगार को अधिकतम करना है तो वर्तमान कीमत पर भी एक पूर्ति की जाएगी।

6. उत्पादन के साधनों की कीमत : वस्तुओं की पूर्ति पर उत्पादन के उन साधनों की कीमतों का भी प्रभाव पड़ता है जिनका प्रयोग उनके उत्पादन के लिए किया जाता है। उत्पादन के साधनों की कीमत कम होने पर उत्पादन की लागत कम हो जाती है तथा पूर्ति में वृद्धि होती है। इसके विपरीत उत्पादन के साधनों की कीमत में वृद्धि होने पर उत्पादन लागत बढ़ जाती है तथा पूर्ति में कमी आ जाती है।

7. तकनीक में परिवर्तन : उत्पादन की तकनीक में परिवर्तन होने पर भी पूर्ति पर प्रभाव पड़ता है। उत्पादन तकनीक में सुधार होने के फलस्वरूप प्रति इकाई उत्पादन लागत में कमी होती है तथा लाभ में वृद्धि होती है। इसके फलस्वरूप पूर्ति में वृद्धि होती है।

8. भविष्य में संभावित कीमत : भविष्य में वस्तु की कीमत में होने वाले परिवर्तन की संभावना का पूर्ति पर प्रभाव पड़ता है। यदि भविष्य में वस्तु की कीमत बढ़ने की संभावना हो तो वर्तमान पूर्ति घट जाती है। इसके विपरीत यदि भविष्य में कीमत घटने की संभावना हो तो वर्तमान पूर्ति बढ़ जाती है।

9. सरकारी नीति : सरकार की कर तथा अनुदान संबंधी नीतियों का वस्तु की बाजार पूर्ति पर प्रभाव पड़ता है। अप्रत्यक्ष करों में वृद्धि हाने के फलस्वरूप सामान्यत: पूर्ति कम होती है। इसके विपरीत यदि भविष्य में कीमत घटने की संभावना हो तो वर्तमान पूर्ति बढ़ जाती है।

पूर्ति का नियम : पूर्ति के नियम से ज्ञात होता है कि अन्य बातें समान रहने पर किसी वस्तु की कीमत तथा उसकी पूर्ति में धनात्मक संबंध है। यह बताता है कि अन्य बातें समान रहने पर वस्तु की कीमत बढ़ने पर पूर्ति बढ़ जाती है तथा कीमत कम होने पर पूर्ति कम हो जाती है।

परिभाषा : डूली के अनुसार, 'पूर्ति का नियम यह बतलाता है कि अन्य बातें समान रहने पर जितनी कीमत अधिक होती है उतनी ही पूर्ति अधिक होती है या जितनी कीमत कम होती है, उतनी ही पूर्ति कम होती है।' अर्थात वस्तु की कीमत तथा उसकी पूर्ति में धनात्मक संबंध होता है।

पूर्ति के नियम की व्याख्या : इस नियम की व्याख्या निम्न तालिका तथा चित्र की सहायता से की जा सकती है :

पूर्ति तालिका

कीमत (रुपये)	**पूर्ति**
1`	1``
11	2``
12	3``

पूर्ति तालिका से ज्ञात होता है कि जब कीमत 1 रुपये से बढ़कर 11 रुपये हो जाती है तो पूर्ति 1 से बढ़कर 2 इकाई हो जाती है।

पूर्ति के नियम की मान्यताएं : पूर्ति के नियम की मुख्य मान्यताएं निम्नलिखित हैं :

1. उत्पादन के साधनों की पूर्ति तथा कीमत में कोई परिवर्तन नहीं होता।
2. उत्पादन की तकनीक में कोई परिवर्तन नहीं होता।
3. उद्देश्य में कोई परिवर्तन नहीं होता।
4. अन्य वस्तुओं की कीमतों में कोई परिवर्तन नहीं होता।
5. भविष्य में वस्तु की कीमत में परिवर्तन की संभावना नहीं होती।

कीमत अधिक होने पर पूर्ति अधिक क्यों की जाती है ?

कीमत के अधिक होने पर अधिक पूर्ति इसलिए की जाती है, क्योंकि अन्य बातें समान रहने पर अधिक कीमत के फलस्वरूप लाभ प्राप्त होते हैं। परन्तु किसी वस्तु की कीमत तथा उसकी पूर्ति में सदैव धनात्मक संबंध होना आवश्यक नहीं है। अत: पूर्ति के कई अपवाद हैं।

१०.२. ४ पूर्ति के नियम के अपवाद :

मांग के नियम की भांति पूर्ति के नियम के भी कुछ अपवाद हैं :

1. प्राकृतिक तत्वों पर आधारित कृषि उत्पादित वस्तुओं पर यह नियम दृढता से लागू नहीं होता। गेहूं की कीमत बढने पर भी उसकी पूर्ति कम रह सकती है यदि प्राकृतिक प्रकोपों के कारण गेहूं का उत्पादन ही सीमित हुआ हो।
2. कुछ सामाजिक प्रतिष्ठा की वस्तुओं की अधिक कीमत मिलने पर भी उनकी सीमित मात्रा में ही पूर्ति की जाती है।

3. नाशवान वस्तुओं की कीमतें कम होने पर भी विक्रेता उनकी अधिक मात्रा बेचने का प्रयत्न करते हैं।

पूर्ति में परिवर्तन : पूर्ति में परिवर्तन मुख्य रूप से दो कारणों से होता है एक तो अन्य बातों के समान रहने पर कीमत में होने वाले परिवर्तन के कारण तथा दूसरे कीमत के समान रहने पर अन्य तत्वों में होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप।

1. पूर्ति वक्र पर संचलन : अन्य बातें समान रहने पर केवल कीमत में होने वाले परिवर्तन पूर्ति वक्र पर संचलन या पूर्ति की मात्रा में होने वाले परिवर्तन को प्रकट करता है। यह केवल कीमत में परिवर्तन होने के कारण होता है जब पूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य तत्व स्थिर रहते हैं। इस प्रकार के परिवर्तनों को पूर्ति का विस्तार तथा संकुचन कहा जाता है।

2. पूर्ति वक्र का खिसकाव : इस स्थिति में नया पूर्ति वक्र प्रारंभिक पूर्ति वक्र के बाईं ऊपर या दाईं ओर नीचे खिसक जाता है। पूर्ति वक्र का खिसकाव किसी वस्तु की कीमत स्थिर रहने पर उसकी पूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य तत्वों में परिवर्तन होने के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। यह परिवर्तन पूर्ति परिवर्तन कहलाता है। इसके फलस्वरूप पूर्ति वक्र बाईं या दाईं ओर खिसक जाता है। इस प्रकार के परिवर्तनों को पूर्ति में वृद्धि या पूर्ति में कमी कहा जाता है। यह कीमत के अतिरिक्त अन्य तत्वों में परिवर्तन के कारण होता है।

१०.२. ५ पूर्ति का विस्तार तथा संकुचन :

जब किसी वस्तु की केवल कीमत में परिवर्तन होने पर उसकी पूर्ति में परिवर्तन होता है तो उसे पूर्ति का विस्तार या संकुचन कहते हैं।

क. पूर्ति का विस्तार : अन्य बातें समान रहने पर जब किसी वस्तु की कीमत बढ़ने के फलस्वरूप उसकी पूर्ति अधिक हो जाती है तो इस बढ़ी हुई पूर्ति को पूर्ति का विस्तार कहा जाता है। पूर्ति के विस्तार को तालिका तथा रेखाचित्र की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है :

पूर्ति का विस्तार

कीमत (रुपये)	**मात्रा**	**वर्णन**
1	1	कीमत में वृद्धि
5	5	पूर्ति की मात्रा का विस्तार

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि जब आइसक्रीम की कीमत एक रुपया है तो एक आइसक्रीम की पूर्ति की जाती है। यदि कीमत बढकर 5 रुपये हो जाती है तो पूर्ति का विस्तार होकर 5 हो जाता है। अत: पूर्ति वक्र के नीचे बिन्दु से ऊंचे बिन्दु पर पहुंचना पूर्ति के विस्तार को प्रकट करता है।

ख. पूर्ति का संकुचन : अन्य बातें समान रहने पर जब किसी वस्तु की कीमत के कम होने के फलस्वरूप उसकी पूर्ति कम हो जाती है तो पूर्ति में होने वाली कमी को पूर्ति का संकुचन कहते हैं।

पूर्ति का विस्तार

कीमत	**मात्रा**	**वर्णन**
5	5	कीमत में कमी
1	1	पूर्ति का संकुचन

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि जब आइसक्रीम की कीमत 5 रुपये है तो पूर्ति भी 5 है। जब आइसक्रीम की कीमत कम होकर 1 रुपया रह जाती है तो उसकी पूर्ति भी एक पर आ जाती है। अत: एक पूर्ति वक्र के ऊंचे बिन्दु से नीचे बिन्दु पर पहुंचना पूर्ति के संकुचन को प्रकट करता है।

१०.२.६ पूर्ति में वृद्धि तथा पूर्ति में कमी :

जब किसी वस्तु की कीमत के अतिरिक्त दूसरे तत्वों में परिवर्तन होने के कारण उसकी पूर्ति में परिवर्तन होता है तो उसे पूर्ति में वृद्धि या कमी कहते हैं। पूर्ति में वृद्धि या कमी पूर्ति वक्र के नीचे या ऊपर की ओर खिसकाव के द्वारा प्रकट की जाती है।

क. पूर्ति में वृद्धि : वस्तु की कीमत समान रहने पर यदि किसी वस्तु की पूर्ति बढ़ जाती है तो कीमत कम होने पर पूर्ति समान रहती है तो इस परिवर्तन को पूर्ति में वृद्धि कहा जाता है।

पूर्ति में वृद्धि :

कीमत	**पूर्ति**	**कारण**
समान	अधिक पूर्ति	तकनीकी प्रगति
3	3	उत्पादन साधनों की कीमतों में कमी
3	4	संबंधित वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि
कम कीमत	समान पूर्ति	बाजार में फर्मों की संख्या अधिक
3	3	भविष्य में कीमतों के कम होने की संभावना
2	3	जब फर्म का उद्देश्य लाभ को अधिकतम करने के स्थान पर बिक्री को अधिकतम करना हो।
		अनुदानों या आर्थिक सहायता में वृद्धितथा अप्रत्यक्ष करों में कमी।

1. समान कीमत अधिक पूर्ति : मान लीजिए जब आइसक्रीम की कीमत तीन रुपये है तो आइसक्रीम की पूर्ति 3 है। यदि आइसक्रीम की कीमत 3 रुपये ही रहे और पूर्ति बढकर चार हो जाए तो इसे पूर्ति में वृद्धि कहा जाएगा।

2. कम कीमत पर समान पूर्ति : जब आइसक्रीम की कीमत तीन रुपये है तो पूर्ति तीन है। यदि ये 2 रुपये हो जाए, पर पूर्ति में कोई कमी न आए अर्थात वह 3 ही रहे तो इसे भी पूर्ति में वृद्धि कहा जाएगा। आइसक्रीम की कीमत कम होकर 2 रुपये रह जाती है परन्तु पूर्ति पहले जितनी ही रहती है। नया पूर्ति वक्र पूर्ति में वृद्धि को प्रकट कर रहा है।

ख. पूर्ति में कमी : वस्तु की कीमत समान रहने पर यदि किसी वस्तु की पूर्ति कम हो जाती है अथवा कीमत बढने पर भी पूर्ति समान रहती है तो इस परिवर्तन को पूर्ति में कमी का जाएगा।

अत: पूर्ति में कमी दो प्रकार से हो सकती है :

पूर्ति में कमी :

कीमत	**पूर्ति**	**कारण**
समान	कम पूर्ति	तकनीक पुरानी पड़ जाने से लागत में वृद्धि
3	3	उत्पादन साधनों की कीमतों में वृद्धि

3		2	संबंधित वस्तुओं की कीमतों में कमी
अधिक कीमत		समान पूर्ति	बाजार में फर्मों की संख्या में कमी
3	3		भविष्य में कीमतों के अधिक होने की संभावना
4	3		जब फर्म का उद्देश्य बिक्री को अधिकतम करने के स्थान पर लाभ को अधिकतम करना हो।
			अनुदानों या आर्थिक सहायता में कमी तथा अप्रत्यक्ष करों में वृद्धि।

1. समान कीमत कम पूति : मान लीजिए जब आइसक्रीम की कीमत तीन रुपये है तो आइसक्रीम की पूर्ति भी तीन ही है। यदि कीमत तीन रुपये ही रहे और पूर्ति कम होकर 2 हो जाए तो इसे पूर्ति में कमी कहा जाएगा।

2. अधिक कीमत – समान पूर्ति : जब आइसक्रीम की कीमत 3 रुपये है तो पूर्ति की कीमत बढ़कर 4 रुपये हो जाए परन्तु पूर्ति पहले जितनी ही रहे तो इसे पृर्ति में कमी कहा जाएगा।

१०.२. ७ पूर्ति की लोच : पूर्ति की लोच किसी वस्तु की कीमत में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप उसकी पूर्ति में होने वाले परिवर्तन है। पूर्ति के नियम से यह ज्ञात होता है कि कीमत में परिवर्तन की वजह से पूर्ति में किस दिशा में परिवर्तन होगा। अर्थात कीमत घटने या बढने से पूर्ति घटेगी या बढ़ेगी। परन्तु जानना चाहें कि कीमत के १ प्रतिशत बढ़ने पर पूर्ति कितने प्रतिशत बढ़ेगी अर्थात पूर्ति में परिवर्तन किस अनुपात में होगा तो हमें पूर्ति का अध्ययन करना पड़ेगा।

पूर्ति की लोच किसी वस्तु की कीमत में प्रतिशत परिवर्तन के कारण पूर्ति में होने वाले प्रतिशत का अनुपात है।

परिभाषाएं :

1. सैम्युअलसन के अनुसार, 'पूर्ति की लोच कीमत में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप पूर्ति में होने वाले परिवर्तन की रूप की मात्रा है।'

2. प्रो. बिलास के अनुसार, 'पूर्ति की लोच से अभिप्राय वस्तु की पूर्ति में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन को कीमत में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन से भाग देने से है।'

पूर्ति की लोच के प्रकार :

पूर्ति की लोच को निम्न भागों में बांटा जा सकता है :

1. पूर्णतया लोचदार पूर्ति : जब मूल्य में थोड़ा परिवर्तन होने पर पूर्ति में अनन्त परिवर्तन है तब वस्तु की पूर्ति पूर्णतया लोचदार कही जाती है। इस अवस्था में पूर्ति की लोच अनन्त होती है।

अर्थात

$$ES = \infty$$

पूर्णतया लोचदार पूर्ति वक्र उन उद्योगों का वक्र हो सकता है जो स्थिर लागतों पर उत्पादन करते हैं।

2. पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति : जब कीमत में काफी परिवर्तन आने पर भी पूर्ति में कोई परिवर्तन न आए तो पूर्ति पूर्णतया बेलोचदार कहलाती है। इस प्रकार की पूर्ति की लोच उस दशा में होगी जब नष्ट होने वाली वस्तुओं में अल्पकाल में अन्य परिस्थितियां स्थिर रहती हैं।

3. इकाई लोच : जब किसी वस्तु की पूर्ति में परिवर्तन उसी अनुपात में होता है जिस अनुपात में उसकी कीमत में हुआ है तो उस वस्तु की पूर्ति को इकाई लोच का उदाहरण कहते हैं। मान लो यदि कीमत में 5 प्रतिशत वृद्धि

होती है तो पूर्ति भी ऽ प्रतिशत बढ़ती है।

Es =50% / 50% = 1 (Unity)

4. इकाई से अधिक लोच या लोचदार पूर्ति : जब किसी वस्तु की पूर्ति का प्रतिशत परिवर्तन उसकी कीमत में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन से अधिक हो तो इस दशा में पूर्ति की लोच इकाई से अधिक होती है। अर्थात पूर्ति लोचदार होती है। उदाहरण के लिए यदि कीमत में ऽ प्रतिशत वृद्धि होने पर पूर्ति में 1 प्रतिशत की वृद्धि होती है तो पूर्ति की लोच इकाई से अधिक होती है।

Es =100% / 50% = 2 (Es > 1)

5. इकाई से कम लोच या बेलोचदार पूर्ति : जब किसी वस्तु की पूर्ति में होने वाला प्रतिशत परिवर्तन कीमत में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन से कम होता है तो इसे प्रति की इकाई से कम लोच कहते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि कीमत में ऽ प्रतिशत की वृद्धि होने पर पूर्ति में केवल 25 प्रतिशत की वृद्धि हो तो इस दशा को इकाई से कम लोचदार पूर्ति या बेलोचदार पूर्ति कहते हैं।

Es =25% / 50% = 1/2 (Es < 1)

१०.३ सारांश :

वस्तुओं की पूर्ति वह मात्रा है जो एक बाजार में किसी निश्चित समय पर विभिन्न कीमतों पर बिकने के लिए प्रस्तुत की जाती है। आम बोलचाल की भाषा में पूर्ति तथा स्टॉक शब्द का प्रयोग एक ही अर्थ में लिया जाता है, लेकिन अर्थशास्त्र में इन शब्दों के विभिन्न अर्थ होते हैं। किसी वस्तु का स्टॉक उस वस्तु की कुल मात्रा को बतलाता है जो किसी समय में बाजार में विक्रेता के पास मौजूद होती है, जबकि पूर्ति स्टॉक का वह भाग है जो कि विक्रेता एक निश्चित समय तथा निश्चित कीमत पर बेचने को तैयार है।

पूर्ति तालिका वह तालिका है जो किसी वस्तु की विभिन्न संभव कीमतों पर बिक्री के लिए प्रस्तुत की जाने वाली पूर्ति की मात्राओं को प्रकट करती है।

पूर्ति के नियम से ज्ञात होता है कि अन्य बातें समान रहने पर किसी वस्तु की कीमत तथा उसकी पूर्ति में धनात्मक संबंध है। यह बताता है कि अन्य बातें समान रहने पर वस्तु की कीमत बढ़ने पर पूर्ति बढ़ जाती है तथा कीमत कम होने पर पूर्ति कम हो जाती है। पूर्ति में परिवर्तन मुख्य रूप से दो कारणों से होता है एक तो अन्य बातों के समान रहने पर कीमत में होने वाले परिवर्तन के कारण तथा दूसरे कीमत के समान रहने पर अन्य तत्वों में होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप।

जब किसी वस्तु की कीमत के अतिरिक्त दूसरे तत्वों में परिवर्तन होने के कारण उसकी पूर्ति में परिवर्तन होता है तो उसे पूर्ति में वृद्धि या कमी कहते हैं। पूर्ति में वृद्धि या कमी पूर्ति वक्र के नीचे या ऊपर की ओर खिसकाव के द्वारा प्रकट की जाती है।

पूर्ति की लोच किसी वस्तु की कीमत में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप उसकी पूर्ति में होने वाले परिवर्तन है। पूर्ति के नियम से यह ज्ञात होता है कि कीमत में परिवर्तन की वजह से पूर्ति में किस दिशा में परिवर्तन होगा। अर्थात कीमत घटने या बढने से पूर्ति घटेगी या बढ़ेगी।

१०.४ सूचक शब्द :

पूर्ति : वस्तुओं की पूर्ति वह मात्रा है जो एक बाजार में किसी निश्चित समय पर विभिन्न कीमतों पर बिकने के लिए प्रस्तुत की जाती है।'

पूर्ति तथा स्टॉक : किसी वस्तु का स्टॉक उस वस्तु की कुल मात्रा को बतलाता है जो किसी समय में बाजार में विक्रेता के पास मौजूद होती है, जबकि पूर्ति स्टॉक का वह भाग है जो कि विक्रेता एक निश्चित समय तथा निश्चित कीमत पर बेचने को तैयार है।

पूर्ति तालिका : पूर्ति तालिका वह तालिका है जो किसी वस्तु की विभिन्न संभव कीमतों पर बिक्री के लिए प्रस्तुत की जाने वाली पूर्ति की मात्राओं को प्रकट करती है।

व्यक्तिगत पूर्ति वक्र : व्यक्तिगत पूर्ति वक्र बाजार में एक फर्म की पूर्ति तालिका को ग्राफ के रूप में प्रकट करती है। इस वक्र के नीचे से ऊपर की ओर ढलान से ज्ञात होता है कि वस्तु की कीमत तथा उसकी पूर्ति में धनात्मक संबंध है। पूर्ति वक्र के धनात्मक ढलान से ज्ञात होता है।

बाजार पूर्ति वक्र : बाजार पूर्ति वक्र बाजार में किसी विशेष वस्तु का उत्पादन करने वाली सभी फर्मों की पूर्ति तालिका को ग्राफ के रूप में प्रकट करती है। यह संपूर्ण उद्योग का पूर्ति वक्र है।

पूर्ति का नियम : पूर्ति के नियम से ज्ञात होता है कि अन्य बातें समान रहने पर किसी वस्तु की कीमत तथा उसकी पूर्ति में धनात्मक संबंध है। यह बताता है कि अन्य बातें समान रहने पर वस्तु की कीमत बढ़ने पर पूर्ति बढ़ जाती है तथा कीमत कम होने पर पूर्ति कम हो जाती है।

पूर्ति में परिवर्तन : पूर्ति में परिवर्तन मुख्य रूप से दो कारणों से होता है एक तो अन्य बातों के समान रहने पर कीमत में होने वाले परिवर्तन के कारण तथा दूसरे कीमत के समान रहने पर अन्य तत्वों में होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप।

पूर्ति में वृद्धि व पूर्ति में कमी : जब किसी वस्तु की कीमत के अतिरिक्त दूसरे तत्वों में परिवर्तन होने के कारण उसकी पूर्ति में परिवर्तन होता है तो उसे पूर्ति में वृद्धि या कमी कहते हैं। पूर्ति में वृद्धि या कमी पूर्ति वक्र के नीचे या ऊपर की ओर खिसकाव के द्वारा प्रकट की जाती है।

पूर्ति की लोच : पूर्ति की लोच किसी वस्तु की कीमत में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप उसकी पूर्ति में होने वाले परिवर्तन है। पूर्ति के नियम से यह ज्ञात होता है कि कीमत में परिवर्तन की वजह से पूर्ति में किस दिशा में परिवर्तन होगा।

पूर्णतया लोचदार पूर्ति : जब मूल्य में थोड़ा परिवर्तन होने पर पूर्ति में अनन्त परिवर्तन है तब वस्तु की पूर्ति पूर्णतया लोचदार कही जाती है। इस अवस्था में पूर्ति की लोच अनन्त होती है। पूर्णतया लोचदार पूर्ति वक्र उन उद्योगों का वक्र हो सकता है जो स्थिर लागतों पर उत्पादन करते हैं।

पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति : जब कीमत में काफी परिवर्तन आने पर भी पूर्ति में कोई परिवर्तन न आए तो पूर्ति पूर्णतया बेलोचदार कहलाती है। इस प्रकार की पूर्ति की लोच उस दशा में होगी जब नष्ट होने वाली वस्तुओं में अल्पकाल में अन्य परिस्थितियां स्थिर रहती हैं।

इकाई लोच : जब किसी वस्तु की पूर्ति में परिवर्तन उसी अनुपात में होता है जिस अनुपात में उसकी कीमत में हुआ है तो उस वस्तु की पूर्ति को इकाई लोच का उदाहरण कहते हैं।

१०.५ स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न :

- पूर्ति से आप क्या समझते हैं? उदाहरण सहित वर्णन करें।
- पूर्ति के नियम के बारे में विस्तार से बताएं।
- पूर्ति तालिका व पूर्ति वक्र का वर्णन करें।
- पूर्ति के नियम के अपवाद कौन-कौन से हैं? व्याख्या करें।
- पूर्ति विस्तार व पूर्ति में वृद्धि तथा पूर्ति में संकुचन व पूर्ति में कमी अंतर का वर्णन करें।

१०.६ संदर्भित पुस्तकें :

बिजनेस इकॉनोमिक्स : आर. के. लेखी, एस.एल. अग्रवाल।

दी इंडियन इकॉनोमी : रे।

प्लानिंग ग्रोथ एंड दी इकॉनोमी : रे।

आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था : डा. एससी गुप्ता।

अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र : आर. डी. शर्मा।

अंतरराष्ट्रीय व्यापार : दालचंद्र बागडी।

आर्थिक अवधारणाएं व पद्धतियां : एम. सी. गुप्ता।

भारतीय राजनीतिक अर्थशास्त्र : गिरीश नंदन शर्मा।

बीए मास कम्यूनिकेशन – द्वितीय वर्ष *बीएमसी –१०७* **अर्थशास्त्र**
खंड–ई इकाई – दो अध्याय – ग्यारह

उदारीकरण और वैश्वीकरण

लेखक : डा. वीना शर्मा
एस. आई. एम. शैली में परिवर्तन :

अध्याय संरचना :

इस अध्याय में उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की अवधारणा से परिचित होंगे। इस अध्याय में हम उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की आवश्यकता, उदारीकरण का अर्थ, उदारीकरण के उपाय, वैश्वीकरण, उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के पक्ष में तर्क, उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की आलोचना आदि विषयों की चर्चा करेंगे। अध्याय की संरचना इस प्रकार होगी:

११.० उद्देश्य
११.१ परिचय
११.२ विषय वस्तु की प्रस्तुति
११.२.१ उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की अवधारणा
११.२.२ उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की आवश्यकता
११.२.३ उदारीकरण का अर्थ
११.२.४ उदारीकरण के उपाय
११.२.५ वैश्वीकरण
११.२.६ उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के पक्ष में तर्क
११.२.७ उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की आलोचना
११.३ सारांश
११.४ सूचक शब्द
११.५ स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
११.६ संदर्भित पुस्तकें

११.० उद्देश्य :

इस अध्याय के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

- उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की अवधारणा से परिचित होना
- उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की आवश्यकता जानना
- उदारीकरण का अर्थ समझना
- उदारीकरण के उपाय जानना

वैश्वीकरण से परिचित होना
उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के पक्ष में तर्क जानना
उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की आलोचना के बारे में जानना

११.१ परिचय :

उदारीकरण एवं वैश्वीकरण से अभिप्राय ऐसी नीतियों से है जिनमें किसी राष्ट्र में आयात-निर्यात पर प्रतिबंध कम से कम कर दिए जाते हैं तथा ऐसी नीतियां बनाई जाती हैं कि दूसरे देशों की फर्में उस देश में तथा उस देश की फर्में दूसरे देश में निवेश, उत्पादन तथा विक्रय आदि कर सकती हैं। इसके अलावा सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की बजाय निजी क्षेत्र के उद्यमों को प्रोत्साहन दिया जाता है। भारत में अर्थव्यस्था को मंदी व गरीबी के कुचक्र से निकालने के लिए १९९१ में नई आर्थिक नीतियां अपनाई गई। इन नीतियों के अनुसार एक निर्धारित समय में नियंत्रित व्यस्था को उदार में बदलना, विदेशी निवेश को प्रोत्साहन, सार्वजनिक क्षेत्र को संकुचित कर निजी क्षेत्र को बढावा, उत्पादन की उन्नत तकनीक, कृषि के आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन्न, व्यापार, नीति, राजस्व में व्यापक परिवर्तन तथा राजकोषिय घाटे को नियंत्रित करना मुख्य मकसद रखा गया। भारत सरकार के अनुसार इन नीतियों को विकास के लिए अपनाया गया, जबकि आलोचकों का कहना है कि इन नीतियों को विश्व बैंक व अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष व विकसित राष्ट्रों के दबाव में अपनाया गया है।

११.२ विषय वस्तु की प्रस्तुति :

इस अध्याय में हम उदारीकरण तथा वैश्वीकरण, इनके पक्ष में तर्क तथा इनकी आलोचना के बारे में चर्चा करेंगे। अध्याय में विषय वस्तु की प्रस्तुति निम्न प्रकार से होगी :

उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की अवधारणा
उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की आवश्यकता
उदारीकरण का अर्थ
उदारीकरण के उपाय
वैश्वीकरण
उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के पक्ष में तर्क
उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की आलोचना

११.२.१ उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की अवधारणा :

भारत सरकार ने जुलाई 1991 के बाद से देश को आर्थिक संकट से निकालने तथा विकास की गति को तीव्र करने के लिए भिन्न-भिन्न आर्थिक सुधार अपनाए हैं। इनमें मुख्य सुधार हैं :

1. नियंत्रित व्यवस्था के स्थान पर उदारता की नीति।
2. सार्वजनिक क्षेत्र को संकुचित कर, निजी क्षेत्र को प्रोत्साहन।
3. विदेशी निवेश को प्रोत्साहन।
4. उत्पादन की उन्नत तकनीक लागू करना।

5. कृषि के आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन।

6. व्यापार नीति, मौद्रिक नीति तथा राजस्व नीति में व्यापक परिवर्तन।

7. राजकोषीय घाटे पर नियंत्रण।

इन सभी सुधारों को नई आर्थिक नीति कहा जाता है। अत: आर्थिक सुधारों या नई आर्थिक या विकास नीति से अभिप्राय 1991 के बाद से किए गए विभिन्न आर्थिक सुधारों अर्थात नीतिगत उपायों और परिवर्तनों से है जिनका उद्देश्य अर्थव्यवस्था में प्रतियोगी वातावरण तैयार करके उत्पादकता और कुशलता में वृद्धि करना है।

११.२.२ उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की आवश्यकता :

भारत ने आज से लगभग पांच दशक पूर्व समाजवादी समाज एवं मिश्रित अर्थव्यवस्था के मार्ग पर अपनी आर्थिक विकास की यात्रा शुरू की थी। अभी तक १ पंचवर्षीय योजनाएं तथा पांच एकवर्षीय योजनाएं पूरी हो चुकी हैं। इन पांच दशकों में यद्यपि कुछ सफलताएं मिली हैं, परन्तु हमारी विफलताएं भी बहुत अधिक हैं। योजनाओं की इस अवधि में सार्वजनिक क्षेत्र को अत्यंत महत्व दिया गया। निजी क्षेत्र काफी सीमा तक सरकार द्वारा नियंत्रित किया गया। उद्योग तथा व्यापार पर अनेक प्रतिबंध थे। नौकरशाही तथा लाल फीताशाही अर्थव्यवस्था की सामान्य स्थिति थी। इन सबका परिणाम यह हुआ कि जून 1991 के अंत में देश में अभूतपूर्व आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया। विदेशी मुद्रा के भंडार केवल दो सप्ताह के आयात के लिए पर्याप्त थे। नए ऋण मिल नहीं रहे थे। अनिवासी भारतीयों के खातों से बड़ी-बड़ी राशियां निकाली जा रही थीं। भारतीय अर्थव्यवस्था में अंतरराष्ट्रीय विश्वास डगमगा रहा था। औद्योगिक प्रगति उल्टी दिशा में चल रही थी और महंगाई तेजी से बढ़ रही थी। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे। रूस का विघटन हो चुका था। समाजवादी अर्थव्यवस्थाएं प्रतियोगिता तथा निजीकरण की ओर अग्रसर हो रही थीं। इसके कई तत्कालीन कारण थे जैसे व्यापक राजनीतिक अस्थिरता, खाड़ी संकट, मुद्रा स्फीति, राजकोषीय घाटे में बहुत आर्थिक वृद्धि, भुगतान संतुलन घाटे में वृद्धि तथा विदेशी मुद्रा के भंडार में बहुत अधिक कमी। अर्थव्यवस्था को आर्थिक संकट से निकालने तथा उसे तेजी से निरंतर विकास के मार्ग पर पुन: लाने के लिए, वित्तीय असंतुलन को दूर करने के लिए, महंगाई को नियंत्रित करने और भुगतान संतुलन को संतुलित करने तथा विदेशी मुद्रा के भंडारों में वृद्धि करने के लिए आर्थिक सुधार करने अर्थात एक उचित नीति को लागू करना अत्यंत आवश्यक था।

आर्थिक सुधारों या नई आर्थिक नीति की आवश्यकता मुख्य रूप से निम्न कारणों से अनुभव की गई :

1. राजकोषीय घाटे में वृद्धि : 1991 से पहले सरकार के गैर-विकासात्मक खर्चों में लगातार वृद्धि होने के कारण राजकोषीय घाटा बढता जा रहा थ। राजकोषीय घाटे से अभिप्राय है : सरकार के कुल व्यय और कुल प्राप्तियों का अंतर। यह सरकार द्वारा लाए गए कुल ऋण के बराबर होता है। 1981-82 में यह सकल घरेलू उत्पाद का 5.4 प्रतिशत था। 199१-91 में यह बढ़कर 8.4 प्रतिशत हो गया। राजकोषीय घाटे को पूरा करने के लिए सरकार को कर्ज लेना पड़ता है तथा उन पर ब्याज देना पड़ता है। इसलिए राजकोषीय घाटा बढ़ने के कारण सरकार के कर्जे तथा ब्याज में काफी वृद्धि हो गई। 198१-81 में केंद्रीय सरकार को अपने कुल व्यय का १ प्रतिशत ब्याज के रूप में खर्च करना पड़ता था। 199१-91 में ब्याज की रकम बढकर केंद्रीय सरकार के कुल खर्च का 36.4 प्रतिशत हो गई। इस बात की पूरी आशंका हो गई थी कि सरकार ऋण के जाल में फंस सकती थी।

अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं जैसे विश्व बैंक आदि का सरकार की वित्तीय स्थिति में विश्वास कम हो गया था। इसलिए

सरकार के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह राजकोषीय घाटे को कम करने के लिए गैर विकासात्मक खर्चों में काफी कमी करे।

2. प्रतिकूल भुगतान संतुलन में वृद्धि : भुगतान संतुलन से अभिप्राय किसी देश के कुल निर्यातों तथा आयातों के अंतर से है। जब कुल आयात, कुल निर्यात से अधिक हो जाते हैं तो भुगतान संतुलन प्रतिकूल हो जाता है। वस्तुओं तथा सेवाओं को आयात करने के लिए विदेशी विनिमय की आवश्यकता होती है। यह विदेशी विनिमय वस्तुओं तथा सेवाओं का निर्यात करके प्राप्त किया जाता है। इसे प्राप्त करने का दूसरा तरीका विदेशों में रहने वाले गैर निवासी भारतीयों द्वारा भेजा जाना वाला धन है। जब विदेशी विनिमय की प्राप्तियां उसे किए जाने वाले खर्च से कम हो जाती हैं अर्थात जब कुल आयातों का मूल्य कुल निर्यात मूल्य से अधिक हो जाता है तो भुगतान संतुलन की समस्या उत्पन्न हो जाती है। यद्यपि हमारे देश के निर्यातों में अधिक वृद्धि नहीं हो सकी। इसका मुख्य कारण यह था कि अंतरराष्ट्रीय बाजार में हमारे उत्पादन दूसरे देशों के उत्पादन से प्रतियोगिता नहीं कर पाते थे। उनकी क्वालिटी अपेक्षाकृत घटिया थी। यह सरकार की उद्योगों को संरक्षण देने की नीति का प्रत्यक्ष परिणाम था। निर्यातों में होने वाली धीमी वृद्धि की तुलना में आयातों में बड़ी तेजी से वृद्धि हुई। इसके फलस्वरूप भुगतान संतुलन का घाटा बहुत अधिक बढ़ गया। भारत का भुगतान संतुलन का घाटा 198-81 से बढ़ता जा रहा था। उस वर्ष भुगतान संतुलन के चालू खाते का घाटा 2214 करोड़ रुपये था। 199-91 में बढ़कर यह 17367 करोड़ रुपये हो गया। भुगतान संतुलन के चालू खाते के घाटे को पूरा करने के लिए विदेशी कर्जों को अधिक मात्रा में लिया गया। विदेशी कर्जे जो 198-81 में सकल घरेलू उत्पाद के 12 प्रतिशत थे वे 199-91 में बढ़कर सकल घरेलू उत्पाद के 23 प्रतिशत हो गए। इन कर्जों की किश्तों तथा ब्याज की रकम अर्थात विदेशी ऋण सेवा भार में बहुत अधिक वृद्धि हुई। 198-81 में विदेशी ऋण सेवा भार भारत की निर्यात प्राप्तियों का 15 प्रतिशत था जो 199-91 में बढ़कर 3 प्रतिशत हो गया। इसके फलस्वरूप भुगतान संतुलन के घाटे में बहुत अधिक वृद्धि हुई।

3. खाड़ी संकट : 199-91 में ईराक युद्ध के कारण पेट्रोल की कीमतों में बहुत बढ़ोतरी हुई। भारत को खाड़ी देशों से जो विदेशी विनिमय प्राप्त होता था, वह बंद हो गया। खाड़ी संकट का भारत के भुगतान संतुलन पर बहुत अधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इसके फलस्वरूप भुगतान संतुलन का घाटा बहुत अधिक बढ़ गया।

4. विदेशी विनिमय के भंडारों में कमी : 199-91 में भारत के विदेशी विनिमय कोष इतने कम हो गए थे कि वे 1 दिन के आयात के लिए भी काफी नहीं थे। विदेशी विनिमय कोष जो 1986-87 में 8151 करोड़ रुपये के हो गए थे, 1989-9 में कम होकर 6252 करोड़ रुपये के रह गए। चंद्रशेखर सरकार को विदेशी ऋण सेवा का भुगतान करने के लिए सोना गिरवी रखना पड़ा। सरकार को अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं से कर्जे लेने के लिए उनके द्वारा प्रस्तावित उदारवादी नीति को अपनाने के लिए मजबूर होना पड़ा।

5. कीमतों में वृद्धि : भारत में कीमतों में काफी वृद्धि हुई। मुद्रा स्फीति की औसत वार्षिक दर 6.7 प्रतिशत से बढ़कर 16.7 प्रतिशत हो गई। 1991 से पहले लगातार तीन वर्षों तक अच्छी मानसून के बावजूद खाद्य पदार्थों की कीमतों में काफी वृद्धि हुई। मुद्रा स्फीति के बढ़ते हुए दबाव के कारण देश की आर्थिक स्थिति काफी खराब हो गई।

मुद्रा स्फीति की दर अर्थात कीमतों में वृद्धि की वार्षिक दर बढ़ने का एक मुख्य कारण मुद्रा की पूर्ति में तेजी से होने वाली वृद्धि थी। मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि का मुख्य कारण सरकार द्वारा बढ़ती हुई घाटे की वित्त व्यवस्था थी। घाटे की वित्त व्यवस्था से अभिप्राय है सरकार द्वारा अपने घाटे को पूरा करने के लिए रिजर्व बैंक से कर्जा लेना।

रिजर्व बैंक यह कर्जा नए नोट छापकर देता है। मुद्रा स्फीति की ऊंची दर के कारण उत्पादन लागत बढ जाती है और हमारे उत्पादन की घरेलू और विदेशी मांग पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

6. सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की असफलता : भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के 1951 में केवल 5 उद्यम थे, परन्तु 21 में उनकी संख्या बढ़कर 232 हो गई। इनमें कई हजार रुपये का निवेश किया गया था। पहले 15 वर्ष होने तक इन उद्यमों का कार्यकरण संतोषजनक था, लेकिन इसके बाद इनमें से अधिकतर उद्योगों में हानि होने लगी। इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम अर्थव्यवस्था के लिए दायित्व बन गए। संक्षेप में, उपरोक्त कारणों से सरकार के लिए यह आवश्यक हो गया कि औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाने तथा विदेशी पूंजी को आकर्षित करने के लिए एक नई आर्थिक नीति अपनाई जाए।

११.२.३ उदारीकरण का अर्थ :

उदारीकरण का अर्थ है सरकार द्वारा लगाए गए प्रत्यक्ष या भौतिक नियंत्रणों से अर्थव्यवस्था को मुक्ति। 199-91 से पहले सरकार ने अर्थव्यस्था पर कई प्रकार के नियंत्रण लगाए हुए थे। जैसे औद्योगिक लाइसेंस व्यवस्था, वस्तुओं पर कीमत या वित्तीय नियंत्रण, आयात लाइसेंस, विदेशी मुद्रा नियंत्रण, बड़े व्यापारिक घरानों द्वारा निवेश पर प्रतिबंध आदि। सरकार ने यह अनुभव किया कि इन नियंत्रणों के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में कई कमियां उत्पन्न हो गई थीं। उद्यमियों द्वारा नए उद्योग स्थापित करने की प्रवृत्ति पर बुरा प्रभाव पड़ा। इन नियत्रणों के फलस्वरूप भ्रष्टाचार, देरी तथा अकुशलता में वृद्धि हुई। अर्थव्यवस्था की आर्थिक प्रगति की दर कम हो गई तथा ऊंची लागत वाली अकुशल आर्थिक प्रणाली का जन्म हुआ। इसलिए आर्थिक सुधारों में अर्थव्यवस्था पर लगाए गए प्रतिबंधों को कम करने का प्रयास किया गया। आर्थिक सुधार इस मान्यता पर आधारित है कि सरकारी नियंत्रण की बजाय बाजार शक्तियां अर्थव्यवस्था का उचित मार्गदर्शन कर सकती हैं। संसार के अन्य अल्पविकसित देशों जैसे कोरिया, थाइलैंड, सिंगापुर आदि ने भी उदारीकरण के फलस्वरूप तेजी से आर्थिक विकास किया है।

११.२.४ उदारीकरण के उपाय :

आर्थिक सुधारों के अंतर्गत अर्थव्यस्था के उदारीकरण के निम्नलिखित उपाय अपनाए गए हैं :

1. लाइसेंस तथा पंजीकरण की समाप्ति : नई औद्योगिक नीति की एक मुख्य विशेषता नियंत्रित अर्थव्यवस्था के स्थान पर उदारता वाली नीति अपनाने की है। अभी तक भारत का निजी क्षेत्र एक कठोर लाइसेंस व्यवस्था के अंतर्गत कार्य कर रहा है। नई आर्थिक नीति ने निजी क्षेत्र को काफी सीमा तक लाइसेंसों तथा अन्य प्रतिबंधों से मुक्त कर दिया है। इसके लिए जुलाई 1991 में नई औद्योगिक नीति की घोषणा की गई थी। इसके अनुसार अब केवल 6 उद्योगों को छोड़कर बाकी सभी उद्योगों के लाइसेंस को समाप्त कर दिया गया है। जिन उद्योगों के लिए लाइसेंस जरूरी है, वे हैं : शराब, सिगरेट, रक्षा उपकरण, औद्योगिक विस्फोटक, खतरनाक रसायन व औषधियां। अन्य उद्योगों के लिए लाइसेंस लेने की आवश्यकता नहीं है। कोई भी उद्यमी बिना किसी प्रतिबंध के नई कंपनी शुरू कर सकता है तथा उसके शेयर बेच सकता है।

2. एकाधिकारी कानून से छूट : एकाधिकार तथा प्रतिबंधात्मक व्यापार अधिनियम के अनुसार जिन कंपनियों की संपत्ति 1 करोड़ रुपये से अधिक थी, उन्हें एमआरटीपी फर्म घोषित कर दिया जाता था। अब एमआरटीपी की अवधारणा को समाप्त कर दिया गया है। इन फर्मों को निवेश संबंधी निर्णय लेते समय सरकार से पूर्व अनुमति

लेने की आवश्यकता नहीं है। उन्हें अपना विस्तार करने की स्वतंत्रता मिल गई है। एकाधिकारी कानून के अंतर्गत आने वाली कंपनियों को भारी छूट दी गई है। एकाधिकारी कानून लागू होने के लिए निर्धारित पूंजी निवेश सीमा ही समाप्त कर दी गई है। इसके फलस्वरूप बड़ी कंपनियों और औद्योगिक घरानों पर उद्योगों के विस्तार एवं नए उद्योग खोलने, कंपनियां खरीदने एवं विलय करने पर कोई पाबंदी नहीं होगी। नई नीति में उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करने के लिए अनुचित उद्योग एवं व्यापारिक प्रवृत्तियों को नियंत्रण में रखने पर ज्यादा महत्व दिया जाएगा। इसके अंतर्गत नए अधिकार प्राप्त एकाधिकार बोर्ड अपनी मर्जी से किसी भी मामले की जांच कर सकेगा। यह जांच किसी भी उपभोक्ता की जांच पर की जा सकती है।

3. उद्योगों को विस्तार तथा उत्पादन की स्वतंत्रता : उदारीकरण की नीति के अनुसार उद्योगों को अपना विस्तार तथा उत्पादन करने की स्वतंत्रता है। इसके लिए उन्हें किसी पूर्व सरकारी स्वीकृति की आवश्यकता नहीं है।

क. उदारीकरण से पहले पुरानी नीति के तहत लाइसेंस देते समय सरकार की ओर से उत्पादन क्षमता की उच्चतम सीमा निर्धारित कर दी जाती थी। कोई उद्योग उससे अधिक उत्पादन नहीं कर सकता था। अब सीमा को हटा दिया गया है ताकि उद्योग बड़े पैमाने पर लाभ प्राप्त कर सकें।

ख. उत्पादकों को इस बात की भी स्वतंत्रता मिल गई है कि बाजार में मांग के आधार पर यह निर्णय ले सकते हैं कि कौन सी वस्तुओं का उत्पादन करना है। पहले लाइसेंस में जिन वस्तुओं का उल्लेख होता था केवल उन्हीं का उत्पादन किया जा सकता था, अब ऐसा नहीं है।

4. लघु उद्योगों की निवेश सीमा में वृद्धि : लघु उद्योगों की निवेश सीमा को बढ़ाकर 1 करोड़ रुपये कर दिया गया है ताकि वह अपना आधुनिकीकरण कर सकें। अति लघु उद्योगों की निवेश सीमा को बढ़ाकर 25 लाख रुपये कर दिया गया है।

5. पूंजीगत पदार्थों के आयात की स्वतंत्रता : उदारीकरण की नीति के अनुसार भारतीय उद्योगों को अपना विस्तार तथा आधुनिकीकरण करने के लिए विदेशों से मशीनें तथा कच्चा माल खरीदने की स्वतंत्रता होगी। इस नीति के अनुसार कोई भी उद्योग बाजार से विदेशी मुद्रा खरीदकर मशीनों तथा कच्चे माल का आयात कर सकता है।

6. टेक्नोलॉजी आयात की छूट : नई आर्थिक नीति में आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन देने के लिए उच्च तकनीक के प्रयोग पर बल दिया गया है। इस नीति का उद्देश्य उदीयमान उद्योगों को नई तकनीक उपलब्ध कराने के उद्देश्य से नई औद्योगिक नीति में यह प्रावधान किया गया है कि उच्चतम प्राथमिकता वाले उद्योगों को तकनीकी समझौते करने के लिए कोई इजाजत नहीं है।

7. ब्याज दरों का स्वतंत्र निर्धारण : उदारीकरण की नीति के अनुसार देश की बैंकिंग प्रणाली की ब्याज दर रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित नहीं की जाएगी। देश के बैंकों को यह स्वतंत्रता दी गई है कि वह स्वयं ही ब्याज की दर का निर्धारण करें।

११.२.५ वैश्वीकरण :

वैश्वीकरण से अभिप्राय है देश की अर्थव्यस्था को संसार के अन्य देशों की अर्थव्यवस्थाओं से मुक्त व्यापार, पूंजी और श्रम की मुक्त गतिशीलता आदि के द्वारा संबंधित करना।

वैश्वीकरण से अभिप्राय विश्व अर्थव्यवस्था में आए खुलेपन, बढ़ती हुई परस्पर आर्थिक निर्भरता तथा आर्थिक एकीकरण के फैलाव से है।

आर्थिक सुधारों की यह मान्यता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्व अर्थव्यवस्था से निकटतम संबंध होना चाहिए। इसके फलस्वरूप वस्तुओं तथा सेवाओं, तकनीकी तथा अनुभव का संसार के विभिन्न देशों के साथ बिना रोक-टोक के साथ विनिमय हो सकेगा। वैश्वीकरण के फलस्वरूप संसार के विभिन्न देशों के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था के सहयोग में वृद्धि होगी। संसार के विकसित देशों से पूंजी तथा तकनीक का प्रवाह भारत की ओर हो सकेगा। भारतीय अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण के मुख्य घटक निम्न हैं :

1. विदेशी पंजी निवेश में वृद्धि : आर्थिक सुधारों के अनुसार विदेशी पूंजी निवेश की सीमा 4 प्रतिशत से बढ़ाकर 51 प्रतिशत कर दी गई है। उच्च प्राथमिकता वाले 47 उद्योगों में 51 प्रतिशत तक पूंजी निवेश की इजाजत बिना रोक-टोक और लालफीताशाही के दी जाएगी। निर्यात करने वाले व्यापारिक घरानों में भी 51 प्रतिशत तक विदेशी पूंजी निवेश की अनुमति दी जाएगी। इस संबंध में विदेशी मुद्रा प्रबंधन कानून लागू किया गया है। इस प्रकार की विदेशी पूंजी निवेश इकाइयों पर पुर्जे, कच्चे माल और तकनीकी जानकारी के आयात के मामले में सामान्य नियम लागू होंगे।

2. अवमूल्यन : आर्थिक सुधारों में अपनाई जाने वाली वैश्वीकरण की नीति के अनुसार निर्यातों को प्रोत्साहित करने के लिए रुपये का अवमूल्यन कर दिया गया। सरकार ने जुलाई 1991 में रुपये का औसतन 2 प्रतिशत अवमूल्यन किया था। इसका उद्देश्य निर्यात प्रोत्साहन, आयात प्रतिस्थापन तथा विदेशी पूंजी को आकर्षित करना था।

3. आंशिक परिवर्तनशीलता : वैश्वीकरण के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए आर्थिक सुधारों के अनुसार भारतीय रुपये की आंशिक परिवर्तनशीलता कर दी गई। रुपये की आंशिक परिवर्तनशीलता का अर्थ है, विदेशी सौदों के लिए बाजार द्वारा निर्धारित कीमत पर विदेशी मुद्रा जैसे डॉलर या पौंड को बाजार में खरीदना या बेचना। ये परिवर्तनशीलता केवल निम्नलिखित सौदे के लिए की जा सकती थी :

क. वस्तुओं और सेवाओं के आयात व निर्यात के लिए।

ख. ब्याज पर अन्य निवेश से आय का भुगतान करने के लिए।

ग. परिवार का खर्च चलाने के लिए भेजी जाने वाली राशि।

इस परिवर्तनशीलता को आंशिक परिवर्तनशीलता इसलिए कहा जाता है क्योंकि ये पूंजीगत सौदे पर लागू नहीं होती थीं।

4. दीर्घकालीन व्यापार नीति : आर्थिक सुधारों के अनुसार विदेशी व्यापार नीति को दीर्घकाल अर्थात पांच वर्ष की अवधि के लिए लागू किया गया। इस नीति की मुख्य विशेषता इसकी उदारता है। इस नीति में व्यापार में लगे सभी नियंत्रण और प्रतिबंधों को हटा दिया गया है। खुली प्रतियोगिता को प्रोत्साहन दिया गया है तथा इसके लिए सभी सुविधाएं प्रदान की गई हैं। अब कुछ विशिष्ट वस्तुओं को छोड़कर किसी भी वस्तु का आयात-निर्यात किया जा सकता है। सरकारी एजेंसियों द्वारा खरीदी या बेची जाने वाली वस्तुओं की संख्या भी सीमित करके अब सभी को व्यापार के समान अवसर दिए गए हैं। इस नीति की एक विशेषता यह है कि प्रशासनिक नियंत्रणों को न्यूनतम कर दिया गया है।

5. टैरिफ दरों में कमी : आर्थिक सुधारों के अनुसार भारतीय अर्थव्यवस्था को अंतरराष्ट्रीय रूप से उपयोगी

बनाने के लिए आयात तथा निर्यात पर लगाए जाने वाले सीमा शुल्क तथा टैरिफों को धीरे-धीरे कम किया जा रहा है।

6. भारतीय अर्थव्यवस्था के खुलेपन का विस्तार : भारतीय अर्थव्यवस्था के खुलेपन का विस्तार करने के लिए विदेशी निवेश तथा विदेशी आधुनिक तकनीक के प्रयोग को प्रोत्साहित किया गया है।

7. निर्यात प्रोत्साहन : विदेशी व्यापार के भुगतान संतुलन के घाटे को पूरा करने के लिए कई कदम उठाए गए हैं। निर्यातों को प्रोत्साहित किया गया है। संसार के विदेशी व्यापार में भारत के निर्यातों के भाग को बढ़ाने के लिए निर्यातकों को विशेष सुविधाएं दी गई हैं।

- **अन्य आर्थिक सुधार :** 1991 के बाद देश में उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण से संबंधित निम्नलिखित आर्थिक सुधार भी लागू किए गए हैं :

1. राजकोषीय सुधार : राजकोषीय सुधारों से अभिप्राय सरकार की आय में वृद्धि करना तथा व्यय को इस प्रकार कम करना है जिसका उत्पादक तथा आर्थिक कल्याण पर बुरा प्रभाव न पड़े। अत: इसका मुख्य उद्देश्य राजकोषीय घाटे जो कि 199-91 में सकल घरेलू उत्पाद का 8.5 प्रतिशत था को कम करके 4 प्रतिशत करना था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कई सुधार किए गए जैसे सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण, करों में वृद्धि, सार्वजनिक क्षेत्र में उद्यमों के शेयरों की बिक्री तथा सार्वजनिक क्षेत्र के उत्पादन की कीमतों में वृद्धि। राजा चैलैया समिति की रिपोर्ट के आधार पर दीर्घकालीन राजकोषीय नीति की घोषणा की गई थी। इस राजकोषीय नीति में कई सुधार किए गए। जैसे :

क. कर प्रणाली को अधिक वैज्ञानिक तथा युक्तिपूर्ण बना दिया गया है। आयकर की अधिकतम दर को 5 प्रतिशत से कम करके 3 प्रतिशत कर दिया गया है।

ख. विदेशी कंपनियों के लाभ को कम कर दिया गया है।

ग. आयात-निर्यात कर को 25 प्रतिशत से कम करके 5 प्रतिशत कर दिया गया है।

घ. कई वस्तुओं का उत्पादन कम कर दिया गया है।

ङ. आर्थिक सहायता को कम कर दिया गया है।

च. सरकार सार्वजनिक व्यय को कम करने के लिए विशेष प्रयत्नशील है।

छ. राज्य सरकारें अपने उद्यमों को विशेष रूप से विकसित करेगी। बिजली बोर्डों तथा यातायात निगमों के घाटे को कम किया जा रहा है।

2. वित्तीय सुधार : वित्तीय सुधारों से अभिप्राय देश की मौद्रिक तथा बैंकिंग नीतियों में सुधार करने से है। सरकार ने वित्तीय सुधारों के लिए नरसिंहम कमेटी की नियुक्ति की थी। इस कमेटी की सिफारिशों के आधार पर सरकार ने महत्वपूर्ण वित्तीय सुधार किए हैं :

क. तरलता अनुपात में कमी : इस समिति के अनुसार कानूनी चल निधि अनुपात को 38.5 प्रतिशत से घटाकर 25 प्रतिशत कर दिया गया है। इसी प्रकार आरक्षित नकदी को अपने वर्तमान उच्च स्तर से धीरे-धीरे कम किया जा रहा है। इसके फलस्वरूप बैंकों की उधार देने की क्षमता में वृद्धि हो गई है।

ख. ब्याज दरों का स्वतंत्र निर्धारण : ब्याज दरों का निर्धारण रिजर्व बैंक के स्थान पर बैंकों द्वारा सफलतापूर्वक किया जाने लगा है।

ग. बैंकिंग प्रणाली की पुनर्संरचना : बैंकिंग प्रणाली की पुनर्संरचना की गई है। नए निजी बैंकों की स्थापना को प्रोत्साहित किया गया है।

घ. बैकों का निरीक्षण आंतरिक निरीक्षणों की रिपोर्टों के आधार पर किया जा रहा है।

११.२.६ उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के पक्ष में तर्क :

आर्थिक सुधारों के पक्ष में निम्न तर्क दिए जाते हैं :

1. आर्थिक विकास की दर में वृद्धि : योजनाओं के पांच दशक में अरबों रुपये खर्च करने के बाद भारत के घरेलू उत्पादन की विकास दर 1951 से 81 तक 4.1 प्रतिशत तथा प्रति व्यक्ति आय की विकास दर 1.4 प्रतिशत थी। 1981 से 22 तक यह बढ़कर क्रमश: 6.5 प्रतिशत तथा 4.3 प्रतिशत हो गई। परन्तु एशिया के कई नए औद्योगिक देशों जैसे दक्षिणी कोरिया, ताइवान, हांगकांग, सिंगापुर तथा मलेशिया से भारत की विकास दर काफी कम है। भारत की प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर संसार के अधिकतर अल्पविकसित देशों से कम थी। इसलिए यह आवश्यक हो गया था कि देश में इस प्रकार के आर्थिक सुधार किए जाएं जिनके फलस्वरूप प्रति व्यक्ति आय की विकास दर को अन्य विकासशील देशों के समान बढ़ाया जा सके।

2. औद्योगिक क्षेत्र की प्रतियोगिता में वृद्धि : यद्यपि भारत के औद्योगिक क्षेत्र में काफी विविधीकरण किया जा चुका था, परन्तु अंतरराष्ट्रीय मानक की तुलना में भारतीय उद्योगों की प्रतियोगी शक्ति काफी कम थी। संरक्षण तथा प्रतियोगी विस्तृत घरेलू बाजार के कारण भारतीय उद्योग तकनीकी दृष्टि से काफी पिछड़े हुए थे। उनकी लागत अधिक थी। इसलिए वे निर्यात के क्षेत्र में भी प्रतियोगिता नहीं कर सकते थे। इसलिए विदेशी व्यापार में भारत का हिस्सा जो 195 में 2 प्रतिशत था वह 21 में कम होकर `.7 प्रतिशत रह गया था। नई आर्थिक नीतियां उद्योगों की उत्पादकता तथा कुशलता को बढ़ाकर उन्हें अधिक प्रतियोगी बना रही हैं। नई आर्थिक नीति के कारण देश में विदेशी निवेश बढ़ेगा तथा उसके साथ-साथ उच्च तकनीकी भी देश में आएगी। इसके फलस्वरूप कुशलता में और भी अधिक वृद्धि होगी।

3. निर्धनता व असमानता में कमी : योजनाओं की अवधि में लोगों की निर्धनता तथा असमानता में विशेष कमी नहीं हो सकी। नई आर्थिक नीति का उद्देश्य मानवीय संसाधनों का विकास करके, उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि करके लोगों की निर्धनता को कम करना है। व्यवसाय में उदारीकरण की नीति के फलस्वरूप लोगों को स्वरोजगार के अधिक अवसर मिलेंगे। इससे निर्धनता तथा असमानता को कम करने में सहायता मिलेगी।

4. सार्वजनिक क्षेत्र की कुशलता में वृद्धि : भारत की योजनाओं में सार्वजनिक क्षेत्र को बहुत अधिक महत्व दिया गया था। परन्तु यह क्षेत्र अकुशल तथा घाटे वाला सिद्ध हुआ। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में 3 हजार करोड़ रुपये से भी अधिक की पूंजी निवेश की गई है। परन्तु उन पर औसतन 3 प्रतिशत का लाभ प्राप्त हुआ है, जो बहुत कम है। नई आर्थिक नीतियों के कारण सार्वजनिक क्षेत्र के दोषों को दूर किया जा सकेगा तथा उसकी कुशलता में वृद्धि हो सकेगी।

5. राजकोषीय तथा बजटीय घाटे तथा मुद्रास्फीति में कमी : भारत में कई कारणों से राजकोषीय व बजटीय घाटे में निरंतर वृद्धि हो रही थी। इस घाटे को पूरा करने के लिए सरकार को आंतरिक तथा बाहरी ऋण लेने पड़ते हैं। इन ऋणों पर बहुत अधिक ब्याज देना पड़ता है। इसके फलस्वरूप सरकार की आय का अधिकतर भाग ब्याज पर ही खर्च हो जाता है तथा निवेश के लिए बहुत कम आय बचती है। बजट के घाटे को घाटे की वित्त व्यवस्था से पूरा करना पड़ता है। इसके फलस्वरूप कीमत में वृद्धि होती है। नई आर्थिक नीति के फलस्वरूप राजकोषीय घाटे तथा बजट का घाटा कम हो सकेगा।

6. कीमत वृद्धि पर नियंत्रण : नई आर्थिक नीति के फलस्वरूप घाटे की वित्त व्यवस्था में कमी आएगी। करों की दर कम की जाएगी, मुद्रा का संकुचन होगा, सरकारी व्यय कम होगा, उत्पादन में वृद्धि आएगी। इन सब कारणों से कीमत पर नियंत्रण लग सकेगा।

7. भुगतान संतुलन के घाटे में कमी : भारत के भुगतान संतुलन का घाटा बहुत अधिक बढ़ गया है। नई आर्थिक नीतियों के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था के प्रतियोगी हो जाने के फलस्वरूप निर्यातों में वृद्धि होगी। नई आर्थिक नीति के कारण विदेशियों का भारतीय अर्थव्यवस्था में विश्वास बढ़ेगा। इससे विदेशी मुद्रा के कोषों में वृद्धि होगी।

8. कुशलता में वृद्धि : वर्तमान समय में भारतीय अर्थव्यवस्था में कई कारणों से अकुशलता की वृद्धि हुई है। इसके कई कारण हैं जैसे : नियंत्रण को गलत ढंग से अमल में लाया जाना, बिना किसी रुकावट के आयात प्रतिस्थापन्न, भारी संरक्षण आदि की व्यवस्था। भारतीय अर्थव्यवस्था में अकुशलता के कई लक्षण हैं जैसे निम्न उत्पादकता, क्षमता से कम उत्पादन, बीमार इकाइयों की बड़ी संख्या आदि। नई आर्थिक नीति कई उपायों द्वारा अर्थव्यवस्था की कुशलता में वृद्धि कर सकेगी। ये उपाय हैं : अकुशल इकाइयों को बंद करना, वैज्ञानिक प्रबंध, तकनीक में सुधार, प्रतियोगिता, विदेशी सहयोग, नियंत्रण से मुक्ति आदि।

9. मध्यवर्ग को प्रोत्साहन : नई आर्थिक नीतियां मध्यवर्ग के बहुत पक्ष में हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था में मध्यवर्ग की संख्या बढ़कर १ करोड़ हो गई है। मध्यवर्ग में कमाने की क्षमता तथा अपनी बढ़ती हुई आय को खर्च करने की इच्छा होती है। प्रत्यक्ष करों के संबंध में दी गई रियायतों के कारण इस वर्ग की प्रयोज्य आय में भी वृद्धि हुई है। इस वर्ग के लोग अधिकतर आय को टिकाऊ, उपभोग वस्तुओं पर खर्च करना पसंद करते हैं। ये वस्तुएं हैं : रंगीन टीवी, फ्रिज, छोटी कार, वीसीआर आदि। इन वस्तुओं की मांग का लाभ उठाने के लिए निजी क्षेत्र को स्वतंत्र छोड़ने की आवश्यकता है। निजी क्षेत्र के विस्तार से मध्यवर्ग की आय तथा क्रय क्षमता बढ़ेगी। इस प्रकार उपभोग वस्तुओं के उद्योगों के विस्तार को प्रोत्साहन मिलेगा।

10. लघु उद्योगों का विकास : भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु स्तर के उद्योगों का महत्व बहुत बढ़ गया है। परन्तु यह क्षेत्र लाइसेंसी और नियंत्रणों के कारण पूर्ण कुशलता से कार्य नहीं कर पा रहा था। नई आर्थिक नीतियों के कारण इस क्षेत्र का विकास करने के लिए अनेक सुविधाएं तथा स्वतंत्र वातावरण मिलेगा। इसके फलस्वरूप यह क्षेत्र तीव्र गति से विकास कर सकेगा। इस क्षेत्र के विकास से रोजगार बढ़ेगा। निर्धनता कम होगी तथा आय की असमानता भी कम होगी।

संक्षेप में नई आर्थिक नीति के जरिये देश की विकास दर में तेजी आ सकेगी तथा पिछली भूलों में संशोधन किया जा सकेगा।

११.२.७ उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की आलोचना :

1. कृषि को कम महत्व : नई आर्थिक नीति में कृषि की उपेक्षा की गई है। यह नीति कृषि तथा उससे संबंधित क्रियाओं को विशेष महत्व नहीं देती। इस नीति का मुख्य संबंध उद्योगों के विकास तथा उनके आधुनिकीकरण तक ही सीमित है। भारतीय अर्थव्यवस्था का तब तक विकास नहीं हो सकता जब तक कृषि का उचित विकास नहीं होता। अत: यह एकपक्षीय नीति है।

2. अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व बैंक द्वारा प्रेरित : आलोचकों के अनुसार उदारीकरण तथा खुलेपन की नीति अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व बैंक के दबाव के कारण अपनाई गई है। इन वित्तीय संस्थाओं से कर्जे प्राप्त

करने के लिए सरकार को उनकी शर्तों को मानना पड़ता है। अत: नई आर्थिक नीति के मुख्य आधार सरकार के स्वतंत्र निर्णय नहीं हैं बल्कि विश्व वित्तीय संस्थाओं के दबाव का परिणाम हैं। इनका प्रभाव बहुराष्ट्रीय कंपनियों तथा देश के धनी वर्ग के लिए तो अच्छा होगा, लेकिन निर्धन वर्ग को इनसे कोई लाभ प्राप्त नहीं होगा।

3. विदेशी ऋण पर अधिक निर्भरता : नई आर्थिक नीति की इसलिए भी आलोचना की जाती है कि यह विदेशी ऋण पर अधिक निर्भर है तथा इससे आंतरिक साधनों के विकास को कोई विशेष महत्व नहीं दिया गया है। विकास के लिए कर्ज लेते-लेत अब हमारी ऋणग्रस्तता की मात्रा इतनी बढ़ गई है कि हम कर्जों के भंवरजाल में फंस जाने के कगार पर पहुंच गए हैं। आज भारत का प्रत्येक नागरिक 15 रुपये के लगभग विदेशी कर्जे से लदा हुआ है। नए ऋण का 85 प्रतिशत पुराने ऋण तथा ब्याज की अदायगी में जाने लगा है। विदेशी सहायता की निर्भरता की नीति हमारे लिए घातक है।

4. विदेशी तकनीक पर निर्भरता : नई आर्थिक नीति में स्वदेशी तकनीक के स्थान पर विदेशी तकनीक को अधिक महत्व दिया गया है। इस नीति के अंतर्गत भारतीय उद्योगों में तकनीक की गतिशीलता को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार ने उच्च तकनीक आयात करने के समझौतों को छूट प्रदान करने का निर्णय लिया है। उच्च तकनीक तो बहुराष्ट्रीय कंपनियों के पास उपलब्ध है और वे केवल अपने लाभ के लिए तकनीक का प्रयोग करती हैं। अत: इससे भारत को लाभ कम और हानि अधिक होगी।

5. उपभोक्तावाद में वृद्धि : नई आर्थिक नीति के फलस्वरूप देश में अनावश्यक विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन बढ़ेगा जो देश की अधिकतर जनता को उपभोक्तावाद के जाल में फंसा देगा। विलासिता की वस्तुओं के प्रदर्शन प्रभाव के नतीजों के तौर पर निर्धन वर्ग भी स्थाई वस्तुओं को प्राप्त करने की होड़ में जुट जाते हैं। इसके कारण साधनों का उचित वितरण नहीं हो पाता। विलासिता की वस्तुओं का अधिक उत्पादन होने के कारण वस्तुओं और सामाजिक कल्याण के लिए आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन के लिए कम साधन उपलब्ध होंगे और इनकी कमी हो जाएगी।

6. निजीकरण को अधिक महत्व : नई आर्थिक नीति में सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार न करने तथा निजी क्षेत्र को प्रोत्साहन देने की नीति स्वीकार की गई है। इसका मुख्य कारण यह दिया जाता है कि सार्वजनिक क्षेत्र की तुलना में निजी क्षेत्र अधिक कार्यकुशल है। उसकी उत्पादकता तथा लाभ भी अधिक है परन्तु सार्वजनिक क्षेत्र की स्थापना का एकमात्र उद्देश्य लाभ प्राप्त करना ही नहीं है। जनउपयोगी वस्तुएं सस्ते मूल्य पर उपलब्ध करवाना, पिछड़े तथा अविकसित क्षेत्रों का विकास करना, रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना, बुनियादी तथा पूंजीगत उद्योगों का विकास करना, निर्यात संवर्द्धन, राष्ट्रीय आय में योगदान करना, लघु तथा सहायक उद्योगों के विकास में सहायता देना, आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में सहयोग करना आदि सार्वजनिक उद्यमों के उद्देश्य रहे हैं। यद्यपि निजी क्षेत्र के उद्यमों की तुलना में सार्वजनिक उद्यमों की लाभदायकता कम है, लेकिन निजी क्षेत्र को बढ़ावा देना या निजीकरण इसका उपचार तथा विकल्प नहीं हो सकता।

7. बेरोजगारी की समस्या : नई आर्थिक नीति के फलस्वरूप बेरोजगारी में वृद्धि होगी। इसके फलस्वरूप काफी श्रमिकों को नौकरी से हटाया जाएगा। राष्ट्रीय टैक्सटाइल निगम ने ही लगभग 5 हजार श्रमिकों को निकाल दिया है। निजी क्षेत्र अपना लाभ बढाने के लिए पूंजी प्रधान तकनीकों का प्रयोग करेगा जिस कारण बेरोजगारी और बढ़ेगी। पूंजीपति तथा श्रमिकों में संघर्ष बढेगा तथा इसका उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

संक्षेप में, भारत में आर्थिक सुधारों की शुरुआत जुलाई 1991 में की गई। देश में आर्थिक सुधारों की दस वर्षीय

अवधि संपन्न हो चुकी है। परन्तु ये सुधार निर्धनता तथा बेरोजगारी को कम करने में सफल नहीं हो सके। अत: इस बात की आवश्यकता है कि इन सुधारों से संबंधित नीतियों में इस प्रकार के परिवर्तन किए जाएं जिनके फलस्वरूप निर्धनता एवं बेरोजगारों को कम किया जा सके।

११.३ सारांश :

भारत में अर्थव्यस्था को मंदी व गरीबी के कुचक्र से निकालने के लिए १९९१ में नई आर्थिक नीतियां अपनाई गई। इन नीतियों के अनुसार एक निर्धारित समय में नियंत्रित व्यस्था को उदार में बदलना, विदेशी निवेश को प्रोत्साहन, सार्वजनिक क्षेत्र को संकुचित कर निजी क्षेत्र को बढावा, उत्पादन की उन्नत तकनीक, कृषि के आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन्न, व्यापार, नीति, राजस्व में व्यापक परिवर्तन तथा राजकोषिय घाटे को नियंत्रित करना मुख्य मकसद रखा गया। भारत सरकार के अनुसार इन नीतियों को विकास के लिए अपनाया गया, जबकि आलोचकों का कहना है कि इन नीतियों को विश्व बैंक व अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष व विकसित राष्ट्रों के दबाव में अपनाया गया है।

जून 1991 के अंत में देश में अभूतपूर्व आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया। विदेशी मुद्रा के भंडार केवल दो सप्ताह के आयात के लिए पर्याप्त थे। नए ऋण मिल नहीं रहे थे। अनिवासी भारतीयों के खातों से बड़ी-बड़ी राशियां निकाली जा रही थीं। भारतीय अर्थव्यवस्था में अंतरराष्ट्रीय विश्वास डगमगा रहा था। अर्थव्यवस्था को आर्थिक संकट से निकालने तथा उसे तेजी से निरंतर विकास के मार्ग पर पुन: लाने के लिए, वित्तीय असंतुलन को दूर करने के लिए, महंगाई को नियंत्रित करने और भुगतान संतुलन को संतुलित करने तथा विदेशी मुद्रा के भंडारों में वृद्धि करने के लिए आर्थिक सुधार करने अर्थात एक उचित नीति को लागू करना अत्यंत आवश्यक था।

उदारीकरण का अर्थ है सरकार द्वारा लगाए गए प्रत्यक्ष या भौतिक नियंत्रणों से अर्थव्यवस्था को मुक्ति। 199-91 से पहले सरकार ने अर्थव्यस्था पर कई प्रकार के नियंत्रण लगाए हुए थे। इन नियत्रणों के फलस्वरूप भ्रष्टाचार, देरी तथा अकुशलता में वृद्धि हुई। अर्थव्यवस्था की आर्थिक प्रगति की दर कम हो गई तथा ऊंची लागत वाली अकुशल आर्थिक प्रणाली का जन्म हुआ। इसलिए आर्थिक सुधारों में अर्थव्यवस्था पर लगाए गए प्रतिबंधों को कम करने का प्रयास किया गया।

वैश्वीकरण से अभिप्राय विश्व अर्थव्यवस्था में आए खुलेपन, बढ़ती हुई परस्पर आर्थिक निर्भरता तथा आर्थिक एकीकरण के फैलाव से है। आर्थिक सुधारों की यह मान्यता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्व अर्थव्यवस्था से निकटतम संबंध होना चाहिए। इसके फलस्वरूप वस्तुओं तथा सेवाओं, तकनीकी तथा अनुभव का संसार के विभिन्न देशों के साथ बिना रोक-टोक के साथ विनिमय हो सकेगा। वैश्वीकरण के फलस्वरूप संसार के विभिन्न देशों के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था के सहयोग में वृद्धि होगी। संसार के विकसित देशों से पूंजी तथा तकनीक का प्रवाह भारत की ओर हो सकेगा।

११.४ सूचक शब्द :

उदारीकरण : उदारीकरण का अर्थ है सरकार द्वारा लगाए गए प्रत्यक्ष या भौतिक नियंत्रणों से अर्थव्यवस्था को मुक्ति। 199-91 से पहले सरकार ने अर्थव्यस्था पर कई प्रकार के नियंत्रण लगाए हुए थे। इन नियत्रणों के फलस्वरूप भ्रष्टाचार, देरी तथा अकुशलता में वृद्धि हुई। अर्थव्यवस्था की आर्थिक प्रगति की दर कम हो गई तथा

ऊंची लागत वाली अकुशल आर्थिक प्रणाली का जन्म हुआ। इसलिए आर्थिक सुधारों में अर्थव्यवस्था पर लगाए गए प्रतिबंधों को कम करने का प्रयास किया गया। आर्थिक सुधार इस मान्यता पर आधारित है कि सरकारी नियंत्रण की बजाय बाजार शक्तियां अर्थव्यवस्था का उचित मार्गदर्शन कर सकती हैं।

वैश्वीकरण : वैश्वीकरण से अभिप्राय है देश की अर्थव्यस्था को संसार के अन्य देशों की अर्थव्यवस्थाओं से मुक्त व्यापार, पूंजी और श्रम की मुक्त गतिशीलता आदि के द्वारा संबंधित करना। वैश्वीकरण से अभिप्राय विश्व अर्थव्यवस्था में आए खुलेपन, बढ़ती हुई परस्पर आर्थिक निर्भरता तथा आर्थिक एकीकरण के फैलाव से है। वैश्वीकरण के फलस्वरूप संसार के विभिन्न देशों के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था के सहयोग में वृद्धि होगी। संसार के विकसित देशों से पूंजी तथा तकनीक का प्रवाह भारत की ओर हो सकेगा।

११.५ स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न :

१ उदारीकरण के बारे में विस्तार से लिखो।
२ वैश्वीकरण के बारे में विस्तार से लिखो।
३ भारत में आर्थिक सुधारों के बारे में लिखें।
४ वैश्वीकरण प्रक्रिया में भारत की भूमिका के बारे में विस्तार से चर्चा करें।
५ उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की आवश्कता पर टिप्पणी करें।
६ उदारीकरण तथा वैश्वीकरण में अंतर्संबंध पर टिप्पणी करें।

११.६ संदर्भित पुस्तकें :

बिजनेस इकॉनोमिक्स : आर. के. लेखी, एस.एल. अग्रवाल।
दी इंडियन इकॉनोमी : रे।
प्लानिंग ग्रोथ एंड दी इकॉनोमी : रे।
आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था : डा. एससी गुप्ता।
अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र : आर. डी. शर्मा।
अंतरराष्ट्रीय व्यापार : दालचंद्र बागडी।
आर्थिक अवधारणाएं व पद्धतियां : एम. सी. गुप्ता।
भारतीय राजनीतिक अर्थशास्त्र : गिरीश नंदन शर्मा।